हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका २४ वाँ ग्रन्थ।

मानव-जीवन।

लेखक—

श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा।

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, गिरगाँव,

बम्बई।

आश्विन, १९८५ वि०।

अक्टूबर, सन् १९२८।

द्वितीयावृत्ति] [मूल्य १॥ रु०

कपड़ेकी जिल्दका मू० दो रुपया।

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

मुद्रक—
विनायक बाळकृष्ण परांजपे,
नेटिव ओपिनियन प्रेस,
आंग्रेवाड़ी, गिरगांव–बम्बई ।

भूमिका।

(पहली आवृत्तिसे।)

प्रायः सवा दो वर्ष हुए जब मैंने 'सफलता और उसकी साधनाके उपाय' नामक पुस्तक लिखी थी। उस पुस्तककी भूमिकामें मैंने लिखा था—"जो मनुष्य शारीरिक, साम्पत्तिक और आर्थिक दृष्टिसे सुखी न हो, जो विद्या और कलासे हीन हो, जो समाजका आवश्यक अंग और देशका पूरा सेवक न हो, जिसकी विद्यमानता किसीको वांछित न हो और जिसमें किसी मानवोचित गुणका अभाव हो, उसका जीवन ठीक ठीक अर्थमें कभी सफलतापूर्ण नहीं कहा जा सकता। इस दृष्टिसे देखते हुए संसारमें ऐसे बहुत ही कम मनुष्य मिलेंगे जिनका जीवन वास्तवमें मानव-जीवन कहा जा सके। यह पुस्तक (सफलता) बहुतसे अंशोंमें इसी उद्देश्यसे लिखी गई है कि जिसमें इससे लोगोंको वास्तविक मानव-जीवनके एक साधारण आदर्शका अनुमान करनेमें सहायता मिले। पर साधारणतः सफलता शब्दका जो अर्थ प्रचलित है उसका ध्यान रखते हुए और कई विशिष्ट कारणोंसे इस पुस्तकका विषयाधिकार कुछ संकुचित रक्खा गया है और इसी लिए उक्त उद्देश्यकी भली भाँति पूर्ति भी नहीं हो सकी है। पर तो भी जो कुछ हो सका है उसीसे यदि पाठकोंका थोड़ा बहुत उपकार या कल्याण हुआ और यह पुस्तक पाठकोंको रुची, तो मैं अपने आपको कृतकृत्य समझूँगा और शीघ्र ही इस पुस्तककी पूर्ति-स्वरूप 'मानव-जीवन' नामकी एक और पुस्तक पाठकोंकी सेवामें भेंट करूँगा।"

यह तो मैं नहीं कह सकता कि मेरी उस पुस्तकसे पाठकोंका कुछ उपकार या कल्याण हुआ या नहीं, पर हाँ वह पुस्तक हिन्दी पाठकोंकी रुची अवश्य,

और हिन्दी-संसारमें उसका आदर हुआ * । उस पुस्तककी विज्ञ पत्र-सम्पादकोंने आलोचना करते हुए तथा साधारण पाठकोंने पढ़कर प्रशंसा की जिससे मेरा उत्साह बढ़ा और उसीके फल-स्वरूप अपनी वह प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिए सवा दो वर्ष बाद आज मैं 'मानव-जीवन' नामकी यह दूसरी पुस्तक लेकर पाठकोंकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ।

मनुष्यको वास्तवमें 'मनुष्य' बननेके लिए बहुतसे गुणों तथा श्रेष्ठ बातोंकी आवश्यकता होती है। जिनमेंसे सदाचार, सत्यनिष्ठा, दृढ़-निश्चय, बुद्धिकी विचक्षणता, व्यवहार-चातुर्य्यसम्पन्नता, उदारता, कर्त्तव्यपरायणता, अध्यवसाय, आत्मनिर्भरता, उद्योग, विनय, धैर्य्य, संतोष, परोपकारिता, कृतज्ञता, निष्कपटता, साहित्य-प्रेम, देश-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, धर्म्म-भाव आदि मुख्य हैं। इन सब गुणोंके एकत्र हुए बिना मनुष्यको वास्तवमें और पूर्ण मनुष्य नहीं कह सकते। साधारणतः बहुतसे लोग तो अपने कारबारमें इतने फँसे रहते हैं और साथ ही साथ शिक्षा आदिके अभावके कारण इतने अज्ञान रहते हैं कि न तो उन्हें इन सब गुणोंका महत्त्व ही मालूम होता है और न उनकी आवश्यकता ही प्रतीत होती है। और इसी कारण वे संसारमें न तो विशेष उन्नति कर सकते हैं और न जीवन अथवा संसारका ठीक ठीक सुख ही भोग सकते हैं। ऐसी दशामें यदि यह कहा जाय कि उनका जीवन बहुतसे अंशोंमें निरर्थक होता है, अथवा उसका पूरा पूरा सदुपयोग नहीं होता, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। बल्कि यदि सच पूछिए तो मनुष्य जबतक अपने आचार-विचारको शुद्ध और श्रेष्ठ न बनावे, अपने तथा औरोंके ज्ञान और सुख आदिकी वृद्धि न करे, जीवनको ईश्वरकी देन समझकर उसका उपयोग न करे, अपने कर्त्तव्योंका ज्ञान प्राप्त करके सदा उनका पालन न करता रहे, अपनी आत्मा, मन शरीर और शक्ति आदिकी उन्नति न करे और उसके द्वारा श्रेष्ठ तथा कल्याणकारक कार्य्य न हो तबतक वह जीवन-निर्वाह करनेके योग्य ही नहीं हो सकता।

यदि जीवनका सदुपयोग करना और उसे सार्थक बनाना आवश्यक और अभीष्ट हो, तो उक्त गुणोंके संबंधमें सब बातोंका जानना और समझना भी

* 'सफलता और उसकी साधनाके उपाय' की दूसरी आवृत्ति समाप्तप्राय है और तीसरी आवृत्ति शीघ्र ही प्रकाशित होगी। इसका मूल्य बारह आने है।

—प्रकाशक।

अवश्य और अभीष्ट होगा । यह पुस्तक इसी अभिप्रायसे लिखी गई है कि जिसमें लोगोंको जीवनका वास्तविक महत्त्व मालूम हो और उसके आवश्यक गुणोंको प्राप्त करके वे यथासाध्य अपनी शक्तियोंको परिमार्जित और उन्नत करके ऐसे श्रेष्ठ कार्य्य करें जिसमें उनकी कीर्ति, शक्ति, सम्पन्नता और योग्यता आदि बढ़े और संसारमें सुखकी वृद्धि हो, और यथासाध्य सफलतापूर्वक परम उत्कृष्ट रीतिसे जीवन-निर्वाह करें । पुस्तक लिखनेमें मेरा यह अभिप्राय कहाँतक सिद्ध हुआ है इसका विचार विज्ञ पाठक स्वयं कर लें । पर साथ ही साथ यह भी निवेदन कर देना चाहता हूँ कि ऊपर कहे हुए सब गुणोंका पूरा पूरा विवेचन न तो इतनी छोटी पुस्तकमें हो ही सकता है और न इतनी मेरी शक्ति ही है । तो भी अपने अल्प ज्ञानकी सहायतासे मैं जो कुछ कर सकता था वह मैंने जैसे तैसे पर सच्चे हृदयसे कर दिया । अब उसका आदर उसके गुणों तथा पाठकोंकी गुण-ग्राहकतापर निर्भर है । इसीके साथ मैं यह भी निवेदन कर देना चाहता हूँ कि अनेक अनिवार्य्य कारणों तथा सांसारिक संघर्षोंके कारण इस पुस्तकके लिखनेमें कई बार रुकावटें पड़ीं और बीचबीचमें अन्तर पड़ता गया जिससे सम्भव है कि इसकी रचनामें कुछ शिथिलता आ-गई हो । साथ ही विस्तार हो जानेकी आशंका तथा अन्य अनेक कारणोंसे स्वास्थ्य तथा धैर्य्य-सम्बन्धी बातोंका विवेचन छोड़ देना पड़ा । इसके लिए मैं उदार पाठकोंसे क्षमा माँगता हूँ । यदि सम्भव हुआ तो दूसरे संस्करणमें इन सब त्रुटियोंका सुधार हो जायगा ।

इस प्रकारकी नीतिसंबंधी पुस्तकोंपर कुछ लोग यह आक्षेप करते हैं कि इनमें बतलाई हुई सब बातें कार्य्य-रूपमें परिणत नहीं हो सकतीं, इसलिए ये व्यर्थ होती हैं और इनका कोई उपयोग नहीं हो सकता है । यह बात तो बहुतसे अंशोंमें मैं भी माननेके लिए तैयार हूँ कि ऐसी पुस्तकोंमें दिये हुए उपदेशोंका अक्षरशः और सर्वांशमें पालन नहीं हो सकता । पर केवल इसी लिए ऐसी पुस्तकें निरर्थक नहीं हो सकतीं, क्योंकि अक्षरशः और सर्वांशमें नहीं तो भी इनके अनुसार बहुत कुछ आचरण अवश्य किया जा सकता है और लोगोंके ज्ञानकी भी बहुत कुछ वृद्धि हो सकती है । हाँ यदि यह कहा जाय कि पुस्तकोंमें केवल विचारोंका ही संग्रह होता है और उनसे विचार ही सुधर सकते हैं—सांसारिक व्यवहारोंमें उनका कार्य्यतः उपयोग करना और

उनके अनुसार आचरण करना केवल पुस्तके पढ़नेसे ही संभव नहीं, तो यह आक्षेप बहुत कुछ मान्य हो सकता है । पर उस दशामे भी ऐसी पुस्तकोंकी निरर्थकता सिद्ध नहीं हो सकती । इनसे विचार भी परिमार्जित होते हैं और कार्यक्षेत्रमें आचरण करनेमें भी बहुत कुछ सुविधा तथा सहायता होती है ।

यह पुस्तक बहुतसे ग्रन्थोंको पढ़कर लिखी गई है, जिनमेंसे मुख्यके नाम दे देना और उनके लेखकोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट कर देना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूं। उन पुस्तकोंके नाम ये हैं—

Character	Be Good to Yourself
Duty	सद्वर्तन (मराठी)
Self-Help	मानव-चरित्र (बंगला)
Thrift	चारित्र (गुजराती)
Plain Living and High Thinking	संसार-शास्त्र (मराठी)
	मधुमक्षिका (मराठी)
Secret of Success	शीलसूत्र (हिन्दी)
Map of life	दुःख और सुख (हिन्दी)
Use of Life	

काशी,
२५-७-१७ ।

विनीत—
रामचन्द्र वर्म्मा ।

प्रकरण-सूची ।

पृष्ठांक

१ सदाचार	१
२ गार्हस्थ्य जीवन	२९
३ सांसारिक जीवन	६५
४ परिश्रम और कार्य	१००
५ उपयोगी परामर्श	११६
६ उपयोगी परामर्श (क्रमागत)	१४३
७ सुजनता और सुस्वभाव	१७४
८ ग्रन्थावलोकन और विद्याप्रेम	२००
९ धन	२१३
१० सुख और शान्ति	२२९

मानव-जीवन।

पहला प्रकरण।

सदाचार।

[सदाचारका महत्त्व—सदाचारीका सम्मान—सदाचारी होना सहज है—सदाचारकी कुंजी—कर्त्तव्यपालन—मनोदेवता और मनोबल—मानव-प्रकृतिकी सात्त्विकता—रुचिकी विभिन्नता—परिस्थिति और संगति—सदाचारका आरम्भ बाल्यावस्थासे होना चाहिए—सदाचार और विद्या-बुद्धि—मनुष्यकी वास्तविक योग्यता—दुराचारी विद्वान्—सदाचार और सम्पत्ति—दुराचारी धनी—महात्मा दरिद्र होते हैं—दरिद्रता और सदाचार—सच्ची और झूठी प्रतिष्ठा—सत्यता—साहस, धैर्य और संतोष—आत्म-संयम—व्यवहार—आस्तिकता—आदर्श पुरुषोंका प्रभाव—सदाचार और देशोन्नति।]

> या साधूंश्च खलान्करोति विदुषो मूर्खान्हिताद्द्वेषिणः
> प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात्।
> तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाञ्छितं
> हे साधो व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा मा कृथाः॥
>
> —भर्तृहरि।

मानव-जीवनका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण, उपयोगी और आवश्यक अंग सदाचार है। जीवनकी शोभा सदाचारसे ही बढ़ती है और यही उसकी महत्ता तथा श्रेष्ठताका परिचायक है। बल्कि यों कहना चाहिए *कि सदाचार ही संसारका व्यवस्थापक नियम है।* संसारका सारा सुख, समस्त उत्तम बातें, सदाचारके आधारपर ही स्थित हैं। ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकारके सुखोंका सबसे अच्छा और बड़ा साधन

सदाचार ही है। ईश्वरने मनुष्यको जितने बल दिये हैं, चरित्रबल उन सबमें श्रेष्ठ है और सबसे अधिक शुभ कृत्य वह इसीकी सहायतासे कर सकता है। सदाचारी मनुष्य अपनी प्रामाणिकताके कारण लोगोंपर एक प्रकारका वशीकरणसा डाल देता है और उनके मनमें उसके प्रति आपसे आप पूज्यभाव उत्पन्न हो जाते हैं। सब लोग उसकी बातोंपर दृढ़ विश्वास रखते हैं, उसके व्यवहारों और कार्य्योंको आदर्श तथा अनुकरणीय मानते हैं और सदा बड़ी ही श्रद्धा-भक्तिसे उसका स्मरण करते हैं। सदाचारी मनुष्यको लोग मनुष्य नहीं समझते, बल्कि देवता-तुल्य मानते हैं। अर्थात् सदाचार एक ऐसा गुण है जो मनुष्यको संसारमें देवताके स्वरूपमें प्रकट करता है, मर्त्यलोकमें स्वर्गीय भावोंका संचार करता है। उसके दर्शन और गुण-गानसे ही लोगोंमें बहुतसे सद्भावोंकी जागृति होने लगती है और वे सत्पथपर लग जाते हैं। इसी लिए विद्वानोंने कहा है कि संसारमें जितनी बातें श्रेष्ठ, सुन्दर और मानव जातिके लिए परम कल्याणकारक हैं, उन सबके कर्त्ता और रक्षक सदाचारी ही हैं। यदि संसारमें सदाचारी मनुष्य न होते तो उसमें रहना नरकवाससे कम न होता। इस कथनकी सत्यता एक बहुत ही छोटेसे उदाहरणसे प्रमाणित की जा सकती है। आप असंख्य सदाचारियों और सच्चरित्रोंको किसी एक ही स्थानमें बसा दीजिए, वे सबके सब केवल शान्तिपूर्वक ही नहीं रहेंगे बल्कि परस्पर एक दूसरेके सुख और कल्याणकी वृद्धिमें भी बहुत कुछ सहायक होंगे। उनका समाज सदा परम सुखी, सम्पन्न और उन्नतिशील रहेगा और किसी प्रकारका दुःख, क्लेश या कुभाव वहाँ फटकने भी न पावेगा। उनकी सन्तान भी सदाचारिणी ही होगी और सब प्रकारसे अपने पूर्वजोंके दिखलाये हुए पथपर चलेगी। ऐसा साधुसमाज सदा बढ़ता और फलता–फूलता ही रहेगा, उसमें किसी प्रकारकी बुराई उत्पन्न न हो सकेगी। पर अधिक नहीं केवल सौ पचास लुच्चों, बदमाशों, चोरों, जुआरियों, शराबियों और इसी प्रकारके दूसरे दुराचारियोंको एक स्थानपर बसा दीजिए, फिर

देखिए रोज कितनोंके सिर फूटते हैं, कितनी लड़ाइयाँ होती हैं, कितना असन्तोष फैलता है और कितना दुःख बढ़ता है। ऐसा समाज पचीस पचास वर्ष तक भी न चल सकेगा और शीघ्र ही उसका सर्वनाश हो जायगा। तात्पर्य यह कि संसारको स्वर्ग बनानेकी शक्ति सदाचारमें और नरक बनानेकी शक्ति दुराचारमें ही है।

यही कारण है कि सदाचारियोंके प्रति मनुष्यके मनमें अपने आप ही श्रद्धा और पूज्य-बुद्धि उत्पन्न होती है। किसी एक सदाचारी और एक विद्वान् अथवा बुद्धिमानको लीजिए और देखिए कि दोनोंमेंसे किसके प्रति आपके मनमें सबसे अधिक पूज्यभावोंकी जागृति होती है। स्वभावतः आपका मन सदाचारीकी ओर ही अधिक खिंचेगा। विद्वान् या बुद्धिमान्को देखकर हमारे मनमें एक प्रकारका कुतूहल और आह्लाद ही होगा, इससे अधिक और कुछ होनेकी सम्भावना नहीं। पर सदाचारी हमारे आदर, सम्मान और भक्तिका पात्र होगा। राम और रावण, कृष्ण और कंस, युधिष्ठिर और दुर्योधन, प्रह्लाद और हिरण्यकश्यपु आदिके संबंधमें लोगोंके मनमें जो स्वाभाविक श्रद्धा और घृणा होती है, उसका कारण सदाचार और कदाचार ही है। बुद्धि या विचार-कौशलसे अच्छे और बुरे दोनों प्रकारके भावों तथा कार्योंकी सृष्टि हो सकती है। विद्याकी भी यही दशा है। बुद्धि और विद्या ये दोनों ऐसे बल हैं जिनका श्रेष्ठ उपयोग भी हो सकता है और निकृष्ट भी। यदि कोई बी० ए० पास मनुष्य झूठ बोलने अथवा चोरी करनेपर उतारू हो जाय, तो वह ऐसी ऐसी झूठी बातें बनाकर कहेगा और चोरीकी ऐसी ऐसी युक्तियाँ निकालेगा कि लोग दाँतों उँगली दबावेंगे। उससे शहरके लोग भी आजिज आ जायँगे और पुलिसके कर्मचारी भी। पर सदाचार-बलसे आप स्वप्नमें भी इस बातकी आशा नहीं कर सकते कि उससे समाजका किसी प्रकारका अनिष्ट होगा अथवा वह लोगोंको किसी प्रकारका कष्ट पहुँचानेका कारण होगा। इसके अतिरिक्त विद्या या बुद्धिकी अपेक्षा सदाचारमें एक विशेषता और है। विद्या

और बुद्धिको पहले लोग ईश्वरीय 'देन' ही मानते हैं और उस दशामें प्रत्येक मनुष्यके लिए उसका साधन प्रायः असम्भव हो जाता है । पर यदि आजकलके उद्योग-वादियोंका मत भी मान लिया जाय, तो भी उसकी कष्ट-साध्यता बनी ही है। हम यदि यह बात मान भी लें कि परिश्रम और उद्योगकी सहायतासे मनुष्य सब कुछ कर सकता है, तो भी हम इस बातसे इनकार नहीं कर सकते कि कार्य-सिद्धिके लिए वह उद्योग और वह परिश्रम घोर होना चाहिए। पर सदाचारमें ये बातें नहीं हैं। न तो हम सदाचरणको केवल ईश्वरीय देन ही कह सकते हैं और न उसका साधन उतना कष्ट-साध्य ही है । अपना चरित्र सुधारने या बिगाड़नेकी शक्ति स्वयं मनुष्यमें ही होती है। चरित्र बिगड़ता भी सहजमें ही है और बनता भी सहजमें ही है । बल्कि कुछ विद्वानोंका तो यहाँ तक मत है कि प्रत्येक मनुष्य स्वभावतः सदाचारी और सुकर्मी ही होता है; दुराचारी और कुकर्मी होनेके लिए उसे अपनी आत्मा और प्रवृत्तिपर बुरी तरह जोर डालना पड़ता है, उनके साथ बल-प्रयोग करना पड़ता है और बड़े कष्ट तथा परिश्रमसे उन्हें कुमार्गकी ओर प्रवृत्त करना पड़ता है । अर्थात् सदाचारी होनेकी अपेक्षा दुराचारी होनेमें ही अधिक प्रयत्नकी आवश्यकता होती है। यदि मनुष्य जानबूझकर और बलपूर्वक दुराचारी न बने, तो बहुधा वह सदाचारी ही हो जायगा। इस अवसरपर हम उन कतिपय आधुनिक वैज्ञानिकोंको भूल नहीं जाते हैं जिन्होंने बड़े बड़े चोरों, बदमाशों और दुराचारियोंकी परीक्षा करके यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि उनके मस्तिष्ककी बनावट ही उन्हें घोर अपराधोंकी ओर प्रवृत्त करती है और उनकी इस विवशताके विचारसे उन्हें कठिन दंड देना ठीक नहीं । पर साथ ही यह बात भी भूल न जानी चाहिए कि यह बात केवल बड़े बड़े विकट अपराधियों और दुराचारियोंके लिए ही है जिनकी संख्या बहुत ही कम होती है, सर्व साधारणके लिए नहीं । अधिकांश लोग तो दूसरोंकी देखादेखी और बुरी संगतिमें पड़कर ही जबरदस्ती

दुराचारी बनते हैं, मानों दुराचार भी आजकलके फैशनका एक अंग ही है । उक्त विकट अपराधियोंके सम्बन्धमें ध्यान रखने योग्य बात यह भी है कि उन्हीं वैज्ञानिकोंके कथनानुसार मस्तिष्ककी शस्त्रचिकित्सा करके अपराधों और अनाचारोंमें कमी की जा सकती है । लेकिन मामूली तौरपर बाजारोंमें घूमनेवाले बाँके-तिरछे, आचारहीन, बातबातमें झूठ बोलनेवाले, हर एकसे लड़नेवाले, किसीपर श्रद्धा-भक्ति न रखने और किसीकी आज्ञा न माननेवाले तथा इसी प्रकारके और दूसरे पढ़े लिखे नव-युवकोंके लिए किसी प्रकारकी शस्त्र-चिकित्साकी आवश्यकता नहीं है । वे लोग तो बहुत ही सहजमें थोड़ेसे प्रयत्न और अभ्याससे ही अपना चरित्र भली भाँति सुधार सकते हैं ।

प्रकृतिने ऐसी योजना कर दी है कि यदि हम अपनी संसार-यात्राके लिए सन्मार्ग निकालना चाहें, तो वह बहुत ही थोड़े परिश्रमसे, अपने मन और विचारपर थोड़ासा अधिकार रखनेसे ही, निकल आता है । प्रत्येक मनुष्य बहुत ही सहजमें अपने छोटे परिवारसे प्रारम्भ करके सारे जगतमें सद्भावोंका प्रचार कर सकता है और लोगोंके सामने आदर्श सत्कर्म उपस्थित कर सकता है । सत्य-भाषण, दयापूर्ण और कोमल व्यवहार, शुभसंकल्प, कर्तव्यनिष्ठा, दृढ प्रतिज्ञा, इन्द्रिय-दमन, परोपकार-बुद्धि, अध्यवसाय, सत्यप्रियता, सुस्वभाव, उदारता, प्रामाणिकता आदि अनेक ऐसे छोटी छोटी बातें हैं जो मनुष्यके जीवनको वास्तवमें स्वर्गीय जीवन बना सकती हैं और उसे सब प्रकारसे सुखी, सम्पन्न और प्रतिष्ठित बना सकती हैं । ईश्वरने हमें जो शक्तियाँ दी हैं, उनका सदुपयोग करना कभी कठिन नहीं हो सकता । संसारमें अब तक महापुरुष बहुत ही कम हुए हैं । इससे सिद्ध होता है कि महत्ता सब लोगोंको प्राप्त नहीं हो सकती । पर तो भी अपने विवेककी सहायतासे शुभाशुभ और कर्त्तव्यका विचार करके सदाचारी सब लोग बन सकते हैं । हमें जिस स्थितिमें ईश्वरने उत्पन्न किया है उस स्थितिका सर्वोत्तम उपयोग करना पूर्णरूपसे हमारे अधिकारमें है । संसारके सभी छोटे मोटे कामोंमें और

साधारण अवसरोंपर हम अपने सद्गुणोंका परिचय दे सकते हैं। इस प्रकार धीरे धीरे हमारे सद्गुणोंका विकास होता जायगा और हम सहजमें एक आदर्श सदाचारी पुरुष बन जायँगे।

संसारमें मनुष्यको जितने काम करने पड़ते हैं, अपना आचरण सुधारना उन सबमेंसे अधिक आवश्यक, उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। लेकीका मत है कि इस कामके लिए प्रत्येक मनुष्यको बहुत ही शान्ति और ध्यानपूर्वक अपने स्वभाव और मनोवृत्तियोंका निरीक्षण करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्यमें अपने आपको उन्नत करनेकी एक ईश्वरदत्त शक्ति हुआ करती है। पर साधारणतः लोगोंको अपनी उस शक्तिका पता ही नहीं होता, अथवा कमसे कम वे उसकी ओर ध्यान ही नहीं देते, और इसीलिए वे सदा अपने आपको अयोग्य और असमर्थ समझकर निराशापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। लेकिन इस प्रकारका विचार बहुत ही हानिकर और घातक है। कभी किसी मनुष्यको यह न समझना चाहिए कि मैं अपने स्वभावमें परिवर्त्तन नहीं कर सकता, अथवा बुरे कामोंको छोड़कर अन्य कामोंमें नहीं लग सकता। मनुष्यका जीवन शतरंजके खेलकी तरह है। स्वभाव, परिस्थिति और मानसिक, शारीरिक तथा नैतिक शक्तियाँ उसके मोहरे हैं जो प्रत्येक मनुष्यको प्रायः समानरूपसे मिले हैं, अथवा यदि किसीको समान रूपसे नहीं मिले हैं और उसमें कोई त्रुटि है तो किसी विशिष्ट उपाय और नियमसे उस त्रुटिकी पूर्त्ति की जा सकती है। अगर खिलाड़ी योग्य और कुशल होगा तो इन्हीं मोहरोंकी सहायतासे बाजी जीत लेगा और यदि अयोग्य या मूर्ख होगा तो हार जायगा।

अपना जीवन सुधारने और सदाचारी बननेकी प्रधान कुंजी कर्त्तव्यपालन है। एक विद्वान्का मत है कि जो मनुष्य अपने कर्त्तव्यका पालन करता है वह न तो कभी दुःखी रहता है और न कभी जमानेकी शिकायत करता है। जो मनुष्य अपने कर्त्तव्यका ध्यान छोड़ देता है अथवा जान बूझकर उसका पालन नहीं करता, वह कभी सुमार्गपर नहीं चल

सकता। सदाचार और कर्त्तव्यपालनका इतना घनिष्ट सम्बंध है कि हम उन दोनोंको एक दूसरेसे पृथक् ही नहीं कर सकते। यदि हम सदाचारी बनना चाहें तो हमें कर्त्तव्यपालनकी आवश्यकता होती है और यदि हम अपने कर्त्तव्योंका पालन करते रहें तो आपसे आप सदाचारी हो जाते हैं। अपने कर्त्तव्योंके ज्ञान और पालनका आरम्भ सदाचारका मानों बीजारोपण ही है। मनुष्य अपने कर्त्तव्यके पालनमें लगा और सदाचारी बन चला। जिस प्रकार सदाचारकी कुंजी कर्त्तव्योंका ज्ञान और पालन है, उसी प्रकार कर्त्तव्योंके ज्ञानकी कुंजी हमारा अंतःकरण, मनोदेवता अथवा विवेक है। विकटसे विकट प्रसंगोंपर भी अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्यका ज्ञान हमारा मनोदेवता ही कराता है,—वही सदा हमें यह बतलाता है कि हमें कौनसा काम करना चाहिए और किस पथपर चलना चाहिए। अंतःकरण अथवा मनोदेवतामें लोग ईश्वरका वास मानते हैं और यह बात है भी ठीक। इस प्रकार ईश्वर सदा हमारे साथ रहता है और हमें उचित मार्ग दिखलाता है। पर प्रायः हम जानबूझकर और बलपूर्वक उसके दिखलाये हुए मार्गपर चलनेसे आनाकानी करते हैं और अपना कर्त्तव्य छोड़ बैठते हैं। मानों प्रकारान्तरसे हम ईश्वरकी आज्ञाका उल्लंघन करते हैं और ऐसा करना हमारे लिए कभी लाभदायक अथवा श्रेयस्कर नहीं हो सकता। जो लोग अपने मनोदेवताकी आज्ञा नहीं मानते और अपने कर्त्तव्योंका पालन नहीं करते, उनका दुराचारी और कुमार्गी हो जाना अनिवार्य है। क्यों कि एक बड़े विद्वान्का मत है कि जो ऊपरकी ओर नहीं देखता—शुभ और श्रेष्ठ कार्य्योंकी ओर ध्यान नहीं रखता—वह अवश्य नीचेकी ओर देखने लगता है—बुरे और निकृष्ट कामोंमें लग जाता है।

हम ऊपर कह आये हैं कि स्वभावतः मनुष्यकी प्रकृति शुभ और सात्विक होती है और कुमार्गमें लगनेके लिए उसे अपनी प्रवृत्ति और अन्तःकरणपर बल-प्रयोग करना पड़ता है। सदाचारका कर्त्तव्यके साथ और कर्त्तव्यका मनोदेवताके साथ जो अनिवार्य संबंध है, वह भी हमारे

इस कथनका दृढ़ प्रमाण है। वास्तवमें ईश्वरने मनुष्यकी सृष्टि शुभ और पुण्य-कर्मोंके लिए ही की है, अशुभ और पाप-कर्मोंके लिए उसे इतना प्रपंच रचनेकी आवश्यकता नहीं थी। जिस उद्देश्यसे ईश्वरने मनुष्यको सिरजा, उस उद्देश्यकी पूर्त्तिका पूरा पूरा साधन भी उसने साथ ही उसे दे दिया। तब भला उस साधन और शक्तिका दुरुपयोग करके, उसकी आज्ञाका उल्लंघन करके, कर्त्तव्योंका परित्याग करके और अपने आपको कुमार्गमें प्रवृत्त करके हम दुराचारी और पापी क्यों बनें और बैठे-बैठाये संसारमें दुःखों और कष्टोंकी वृद्धि क्यों करें? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसपर विचार करना मनुष्य-मात्रका धर्म्म है।

मनोदेवताकी आज्ञा मानने और कर्त्तव्योंका पालन करनेमें बहुत बड़ी बहादुरीकी जरूरत नहीं है। बहुत ही साधारण साहससे हमारा सब काम चल सकता है। यदि हम एक बार अपने किसी कर्त्तव्यका पालन कर लें, तो उससे हमारे अंतःकरणको बहुत संतोष होगा और हममें मानों एक नये बलका संचार हो जायगा। यही संतोष और यही बल हमें दूसरे बड़े कर्त्तव्यके पालनके लिए प्रेरित और उत्साहित करेगा और यह क्रम बराबर बढ़ता जायगा; और फिर शीघ्र ही एक ऐसा समय आवेगा जब कि हम न्याय और सत्यके इतने पक्षपाती बन जायँगे कि मनोदेवताकी आज्ञाका उल्लंघन करना हमारे लिए असंभव हो जायगा। उस समय संसारकी कोई शक्ति हमें सन्मार्गसे न हटा सकेगी। और यदि हम अपने विवेकके विरुद्ध कोई काम कर बैठेंगे और उसके मना करने पर भी न मानेंगे, तो धीरे धीरे हमारा विवेक कुंठित होने लगेगा और एक समय वह आ जायगा जब कि हम बुरेसे बुरे कार्यको भी बहुत अच्छा समझने लगेंगे। पुण्यात्मा और पापी, महात्मा और नीच, समझदार और मूर्ख, साहूकार और चोर, प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित, अच्छे और बुरे बननेके ये ही दोनों मार्ग हैं। और इन दोनों मार्गोंमेंसे किसी एक मार्गका अवलंबन करना प्रत्येक मनुष्यके अधिकारमें है।

इस अवसरपर आगे बढ़नेसे पहले एक बातका विचार कर लेना बहुत आवश्यक जान पड़ता है। संस्कृतकी एक कहावत है—" भिन्न-रुचिर्हि लोकः " अर्थात् मनुष्योंकी रुचि एक दूसरेसे भिन्न होती है। संसार विलक्षणताओं और विभिन्नताओंका आगार है। इसमें जितने जीव और पदार्थ हैं, उन सबके आकार-प्रकार आदिमें एक दूसरेसे बहुत भेद है। जिस प्रकार एक मनुष्यकी आकृति दूसरे मनुष्यकी आकृतिसे भिन्न हुआ करती है, उसी प्रकार उसकी रुचि भी भिन्न हुआ करती है। रुचिकी विभिन्नता स्वाभाविक होती है। ऐसी दशामें यह कहा जा सकता है कि हमें अपनी रुचि और वासना आदिपर अधिकार नहीं है। लेकिन कई अंशोंमें यह बात भी ठीक नहीं है। रुचिकी विभिन्नता स्वाभाविक होने पर भी बहुतसे दूसरे कारणोंसे भी होती है। परिस्थिति, अभ्यास और संस्कार आदिका भी उसपर, बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। संसारमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे जिनमें देशाटन और सत्संग आदिके कारण लोगोंकी रुचि और स्वभावमें विलक्षण परिवर्तन हो गया हो। परिस्थिति, अभ्यास और संस्कारका मनुष्यके स्वभाव और आचरणपर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। जिस परिवारमें सभी लोग शराबी या जुआरी हों, उसमें जन्म लेनेवाले बालक भी प्रायः वैसे ही होंगे। वेश्याओंके घरमें पलनेवाली लड़कियाँ बड़ी होने पर वेश्यावृत्तिके अतिरिक्त कदाचित् और कुछ भी न कर सकेंगी। राजनीतिज्ञोंकी मंडलीमें बाल्यावस्थासे रहनेवाला बालक बड़ा होनेपर बहुधा बड़ा भारी राजनीतिज्ञ ही होगा और संतसमाजमें रह कर शिक्षा पानेवाला बड़ा भारी महात्मा होगा। ये सब बातें प्रायः संस्कार और संगति आदिके कारण ही होंगी। अतः सदाचारका बीजारोपण बाल्यावस्थामें ही होना चाहिए। वयस्क लोग भी यदि चाहें तो अपनी प्रवृत्ति और रुचि सहजमें ही बदल सकते हैं। पर हाँ, उसके लिए दृढ़ आत्मबल आवश्यक होता है। हममें जितनी बातें और शक्तियाँ हैं उन सबसे प्रबल इच्छाशक्ति या मनोबल है। यदि इस शक्तिसे हम किसी

प्रकार पूरा पूरा कार्य ले सकें,—उसका यथेष्ट उपयोग कर सकें तो बुरी संगति और कुसंस्कार आदिके दुष्परिणामोंसे हम बहुत कुछ बच सकते हैं। जिस प्रकार हमारे शरीरके सब अंगोंमें हमारा विवेक या मनोदेवता प्रधान है, उसी प्रकार हमारी सब शक्तियोंमें इच्छा-शक्ति या मनोबल प्रबल और प्रधान है। केवल मनोबलकी सहायतासे मनुष्य जो चाहे सो बन सकता है। जो मनुष्य अपने मनोदेवताकी आज्ञाका पालन करता है और उसके पालनमें किसी प्रकार असमर्थ होनेपर अपने मनोबलकी सहायता लेता है, वह संसारमें बड़ेसे बड़ा और अच्छेसे अच्छा काम कर सकता है।

किसी मनुष्यकी वास्तविक योग्यताका ठीक पता उसके लिखे हुए बड़े बड़े ग्रन्थों, दिये हुए बड़े बड़े भाषणों अथवा उच्च पदपर रहकर किये हुए बड़े बड़े कार्य्योंसे कभी नहीं लग सकता। यदि उसकी वास्तविक योग्यताका पता लगाना हो, तो हमें यह देखना चाहिए कि वह अपने मनोदेवताका कहाँ तक आज्ञाकारी है, उसमें मनोबल कितना है, उसमें सहिष्णुता कहाँ तक है, अपने संबंधियों और मित्रों आदिसे उसका व्यवहार कैसा है और अपने नित्यप्रतिके साधारण कार्य्य वह किस प्रकार करता है। बड़े बड़े देशभक्त, वक्ता, लेखक और वकील—बैरिस्टर, व्यभिचारी, मद्यपी, झूठे, खुशामदी और दगाबाज़ पाये जाते हैं और अच्छे अच्छे पंडित अपने स्वार्थके लिए न्यायका बुरी तरह गला घोंटते हुए देखे जाते हैं। इँग्लैण्डके प्रसिद्ध विद्वान् लार्ड बेकन अर्वाचीन तत्त्वज्ञानके जनक कहे जाते हैं। उन्होंने नीति-संबंधी बहुत ही अच्छे अच्छे निबंध लिखे हैं। पर अनेक अवसरोंपर उनके कार्य बहुत ही लज्जास्पद और नीच हुआ करते थे; यहाँ तक कि न्यायाधीशकी अवस्थामें वे घूस खाते थे! भारतवर्षमें एक महात्माने विधवाओंका कष्ट दूर करनेमें बड़ी ख्याति पाई है। पर सुनते हैं, उनके गाँव और आसपासकी कदाचित् ही कोई विधवा उनके कृपा-कटाक्षसे बची हो! उर्दू, फारसी और अरबीके प्रसिद्ध विद्वान् तथा कवि मिरजा गालिबका " ऋणं कृत्वा

सुरां पिबेत् " ही मुख्य सिद्धांत था। काशीके एक पंडित संस्कृतके दिग्गज विद्वान् और बड़े अच्छे कवि थे, पर बिना मद्य पिये और गालियाँ दिये वे बात ही नहीं कर सकते थे। एक और पंडित इस समय वर्तमान हैं जो दिनरात अपनी नीतिमत्ताकी डींगें हाँका करते हैं और सदा लोगोंको नीतिके ही उपदेश देते रहते हैं। उन्होंने अपनी तीस चालीस रुपये मासिककी एक अतिरिक्त आय बनाये रखनेके लिए ही एक परिवारमें भीषण भेद-भाव उत्पन्न किया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि उस परिवारकी लाखों रुपयोंकी सम्पत्ति नष्ट हो गई। सामाजिक सुधारोंके एक कट्टर पक्षपातीने एक बार एक बड़े आदमीके यहाँ विवाहके अवसरपर पूछनेपर बहुत ही निष्ठापूर्वक सिर हिलाकर कह दिया था—" हाँ, हाँ, नाच अवश्य होना चाहिए। " एक मद्य-प्रचार-निवारिणी सभाके सभापति और परम वैष्णव, सुरादेवीके भी परम भक्त थे। आर्य-सिद्धान्तोंके एक जबरदस्त प्रचारक और आर्य्य-समाजके प्रधान महाशयने एक मुसलमानिनको घरमें डाल रक्खा था। अपने ही नगरमें और आसपास ध्यानपूर्वक देखिए, आपको बहुतसे ऐसे लोग मिलेंगे जो वास्तवमें बड़े दुराचारी और दुष्ट होंगे, और उस दुराचार और दुष्टताको छिपानेके लिए जिन्होंने सभ्यता; सुजनता, धर्म्म, देशसेवा, लोकोपकार आदिके ढोंग रच रक्खे होंगे। जब एक बार एक व्यक्तिने सर वॉल्टर स्कॉटको लिखा कि संसारमें विद्याका ही सबसे आदर आधिक होता है, तब इसी लिए स्कॉटको उत्तरमें लिखना पड़ा था,—"ईश्वर न करे कि ऐसा हो, नहीं तो संसारकी बड़ी ही दुर्दशा होगी। मैंने बहुतसे ग्रन्थ पढ़े हैं और बड़े बड़े विद्वानोंसे भेंट की है। लेकिन मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि मैंने दरिद्रों और अशिक्षितोंमें उदारता, विचारोंकी गंभीरता, सत्य और न्यायके प्रति निष्ठा और सदाचारिता आदि ऐसी अनेक बातें देखी हैं जो अच्छे अच्छे विद्वानों और पंडितोंमें ढूँढ़े नहीं मिलतीं।" मिलें कहाँसे? लोग अपने दूषित अन्तःकरणका वास्तविक स्वरूप छिपानेके लिए उसके ऊपर विद्या, बुद्धि, धन आदिका मुलम्मा चढ़ा

लेते हैं। पर फिर भी वह मुलम्मा नहीं ठहरता। कभी न कभी कलुषित अंतःकरण प्रकट हो ही जाता है।

जिस प्रकार विद्या और बुद्धि आदिका सदाचारके साथ कोई आवश्यक और अनिवार्य्य सम्बन्ध नहीं है, उसी प्रकार धन-सम्पत्तिका भी सदाचारके साथ कोई लगाव नहीं है। जो लोग यह समझते हैं कि सदाचारी बननेके लिए धनी होनेकी आवश्यकता है, वे बड़ी भूल करते हैं। अँगरेजीकी एक कहावतका अभिप्राय है कि खाली थैला सीधा नहीं खड़ा रह सकता। अर्थात् जिस मनुष्यके पास धन नहीं है वह कभी ईमानदार और सच्चा नहीं रह सकता। मानों ईमानदारी और सच्चाईकी जननी सम्पत्ति ही है। पर इस कथनमें कोई वास्तविक सत्यता नहीं है। गरीबोंमें ऐसे ऐसे सच्चे, ईमानदार और विश्वसनीय लोग होते हैं, जैसे सम्पन्न-वर्गमें कठिनतासे मिलेंगे। बड़े बड़े लखपति और करोड़पति सेठ साहूकार अपने शौकीन और बराबरीवाले सम्बंधियोंका एक पैसेका विश्वास नहीं करते और अपना सर्वस्व पाँच या सात रुपये मासिक वेतन पानेवाले दरबानों और खिदमतगारोंपर छोड़ देते हैं। केवल रुपया पैसा ही नहीं बल्कि जोरू-बच्चे तक उनके सपुर्द कर दिये जाते हैं और मालिक बेखटके पड़े सोते हैं। बेचारा निर्धन स्वामिभक्त सेवक भी प्राण रहते कभी अपने स्वामीका अनिष्ट नहीं होने देता। तब भला यह क्यों कर कहा जा सकता है कि निर्धन मनुष्य कभी ईमानदार नहीं हो सकता? यह ठीक है कि प्रायः लोग धनके लिए बड़े बड़े अनर्थ कर बैठते हैं, बहुतसे गरीब दस पाँच रुपयेके गहनोंके लिए छोटे छोटे निरपराध बालकोंकी हत्या कर बैठते हैं; पर बड़े बड़े सेठ और धनी क्या गरीबोंके गलेपर बेतरह छुरी नहीं फेरते और क्या वे दूसरोंका धन हड़प करनेके लिए अनेक प्रकारके छल कपट नहीं करते? हमारे इसी प्रान्तमें एक ऐसे महापुरुष रहते हैं जो पहले सरकारी न्यायविभागमें एक बहुत ही उच्च पदपर थे और जिन्हें अब पेन्शन मिलती है। उनकी सारी सम्पत्ति कई लाख रुपयोंकी है और विद्वता

भी कम नहीं है। ईश्वरकृपासे उनकी सम्पत्तिका भोग करनेवाले प्रायः सभी एक एक करके सुर-पुर सिधार चुके हैं; पर तो भी वे देवता नित्य-प्रति दो चार आदमियोंको रुपये देकर उनसे तिगुनी और चौगुनी रकमका कागज लिखवा लेते हैं, डिग्रियाँ और नीलाम कराके दो चारका नित्य सर्वनाश करते हैं और सालमें सैकड़ों गृहस्थोंको चौपट कर देते हैं। एक बार जो किसी प्रकार उनके चंगुलमें फँसकर उनसे थोड़ासा ऋण ले लेता है, उसकी सम्पत्तिकी रक्षा ईश्वरके अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता। किसी वृद्ध और मरणोन्मुख धनीके लड़कोंको दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त करनेके लिए धन देने और चिकनी चुपड़ी बातें करके उनका सर्वस्व हरण करनेमें आप उतने ही सिद्ध-हस्त हैं, जितने किसी समय खूनके मुकद्दमोंमें फैसले देनेमें थे। दूसरोंकी सम्पत्ति दबा बैठनेकी नीयतसे आप कभी कभी लोगोंको गीता और वेदान्त तकके उपदेश देनेमें भी नहीं चूकते। जहाँ आपने संसारकी असारता दिखलाई और तीर्थ-यात्रासे होनेवाले शुभ फलोंका स्मरण दिलाया, वहाँ आपका बाकी मतलब आपसे आप सिद्ध हो जाता है! एक बार आपने एक बहुत ही सीधे, सच्चे और साक्षर ब्राह्मणकी सारी जायदाद अन्यायपूर्वक नीलाम कराके हस्तगत कर ली और फिर भी कुछ रुपये उसके जिम्मे बाकी निकाले! उन रुपयोंको वसूल करनेके लिए आपने उसे जेल भेजनेकी आयोजना की। बेचारा दरिद्र ब्राह्मण शहर छोड़कर भागने लगा। जब उसके मित्रोंने उसकी थोड़ी थोड़ी सहायता करके वे रुपये चुकाये तब कहीं जाकर उस ब्राह्मणकी जान बची। इतने कुकर्म करनेवाले कौन सज्जन थे? वही जो बड़े धनवान, बड़े प्रतिष्ठित थे। और गरीब ब्राह्मणकी सहायता और रक्षा करनेवाले कौन लोग थे? बहुत ही साधारण विद्या, बुद्धि, वित्त और स्थितिके लोग। उलटे धन, विद्या और प्रतिष्ठासे उक्त महानुभावको दुष्कर्म और अत्याचार करनेमें सहायता ही मिलती थी और सौभाग्यवश अभीतक उन्हें अपने ही समान किसी नीचसे काम भी नहीं पड़ा।

संसारमें इसी प्रकारके और भी अनेक उदाहरण मिलते हैं जिन्हें देखते हुए यही कहना पड़ता है कि बहुधा सम्पत्ति मनुष्यको दुराचारकी ओर ही प्रवृत्त करती है। जालिये, जुआरी, शराबी और रंडीबाज़ प्रायः धनी ही हुआ करते हैं। गरीबोंको तो ऐसे कामोंके लिए पैसा ही नहीं मिलता, वे दिनरात अपने पेटकी चिन्तामें ही लगे रहते हैं; पर धनी मनुष्य यथेच्छ अनाचार कर सकता है और अपने धनके कारण वह उसके दुष्परिणामोंसे भी नहीं डरता। धनी मनुष्य दुष्कर्म करता है और जब उसके परिणामस्वरूप उसपर कोई आपत्ति आने लगती है, तब वह रुपयोंको पानीकी तरह बहा चलता है और बहुधा उस आपत्तिसे बच भी जाता है। छोटी स्थितिके लोग लड़ाई-झगड़े और थाना फौजदारी करनेमें उसके सामने ठहर ही नहीं सकते और वह मनमाना अत्याचार करता रहता है। सम्पत्ति मनुष्यको प्रायः अविवेकी, अविचारी और अन्धा बना देती है और सम्पन्न मनुष्य अपने साथ साथ दूसरोंका भी नाश करते हुए देखे जाते हैं। संसारमें अब तक जितने श्रेष्ठ और महात्मा पुरुष हो गये हैं, प्रायः वे सभी दरिद्र ही थे। उद्योग, धैर्य्य, परोप-कार-वृत्ति, सुजनता आदि ही उनकी वास्तविक सम्पत्ति थी। ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलेंगे जिनमें महात्माओंने बड़ी बड़ी रकमें लेनेसे साफ इनकार कर दिया हो और बड़े बड़े राजाओंकी भेंटें लौटा दी हों। जिस मनुष्यकी वृत्ति सात्विक होती है उसमें आत्मबल होता है और जो समाज, देश और मानव-जातिका सच्चा सेवक होता है उसे धन-सम्पत्तिकी कभी परवा नहीं होती। वह अपने सद्गुणोंसे ही मालामाल रहता है और धनको सदा अनाचार और दुष्कर्म्मोंका मूल समझता है; और आवश्य-कता पड़नेपर ऐसे ही पुण्यात्माओंके चरणोंपर सारे देशकी सम्पत्ति भी आ गिरती है।

हाँ, यदि यह कहा जाय कि दरिद्रताका सदाचारके साथ कुछ संबंध है, तो ऐसा कथन कुछ अंशोंमें ठीक हो सकता है। महात्मा तो सदा दरिद्र होते ही हैं और यदि संयोगवश उनका जन्म किसी सम्पन्न कुलमें

हो जाय तो वे अपनी सम्पत्तिका त्याग भी कर देते हैं। उदाहरणके लिए महात्मा बुद्ध, भगवान् महावीर, राजा भरथरी, रानी मीराबाई और काऊंट टालस्टाय आदि ही यथेष्ट हैं। पर जो लोग दरिद्र होते अथवा दरिद्रघरमें जन्म लेते हैं, उनमेंसे अधिकांश प्रायः सीधे, सच्चे और सदाचारी ही होते हैं। बल्कि उनका यही सीधापन और सदाचार ही बहुतसे अंशोंमें उन्हें आजन्म दरिद्र बनाये रखनेका कारण होता है। वे अपनी सिधाई और सच्चाईके कारण कभी झूठ नहीं बोलते, बेईमानीसे किसीका धन नहीं लेते और न किसी तरहका छल कपट करते हैं। वे चाहे नौकरी करें और चाहे व्यापार, उनकी आर्थिक दशा सदा प्रायः एकसी ही रहती है। ऐसे ही लोगोंके लिए कहा है,—"हमारे प्रभु निर्धनके धन राम।" जिन लोगोंका ऐसा सिद्धान्त होता है वे कभी अनीति या अधर्म्मके पथपर नहीं जा सकते। उनका हृदय सदा संतुष्ट और बलिष्ठ रहता है और उनका सदाचार एक बादशाहतसे बढ़कर होता है। मृच्छकटिक नाटकमें दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त अपनी कर्त्तव्यबुद्धिके कारण कैसी उदारता, सत्यता, सहृदयता और निष्ठा दिखलाता है। उस महात्माको अपने धन या वैभवके नाशकी चिन्ता नहीं होती, बल्कि इस बातकी चिन्ता होती है कि—"क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति।" मैं दरिद्र हूँ, और इसी लिए मेरे घर अतिथि भी नहीं आते। ईसाई धर्म्मका संस्कार करनेवाले प्रसिद्ध मार्टिन लूथर इतने दरिद्र थे कि कभी कभी उन्हें अपने निर्वाहके लिए मेहनत-मजदूरी तक करनी पड़ती थी। लेकिन तो भी उनका चरित्र ही उनका सबसे बड़ा धन था।

निष्ठा और दृढ़तापूर्वक जो काम किया जाता है, उससे बहुधा सफलता ही होती है; पर साथ ही उसके लिए अपनी शक्तिका अनुमान और सत्य तथा न्यायका अनुसरण भी होना चाहिए। इससे मनुष्यके सब सांसारिक काम हो जाते हैं और उसके उत्साहमें अतुल वृद्धि होती है। सत्य केवल हमारे धर्म्म, कर्म्म और कर्त्तव्य आदिका ही नहीं बल्कि समस्त विश्वका आधार माना जाता है। प्रायः लोग कहा करते हैं कि सत्यपर

ही दुनिया खड़ी है, और यह बात बहुत ठीक है । धनवान् या विद्वान् होना किसी मनुष्यका परम कर्त्तव्य नहीं है, पर सत्यनिष्ठ और न्यायशील रहना उसका अनिवार्य्य और परम कर्त्तव्य है । प्रत्येक कार्य्य आरम्भ करते समय हमें तत्सम्बन्धी सत्यता और न्यायके स्वरूपका ध्यान कर-लेना चाहिए, तदनुसार कुछ नियम बना लेने चाहिए और सदा उन्हीं नियमोंका अनुसरण करना चाहिए । कर्त्तव्य और सत्य दोनों एक ही सूत्रमें बँधे होते हैं । जो मनुष्य कर्त्तव्यपरायण होता है वह अपनी सभी बातों और सभी कामोंमें सत्यताका समान रूपसे आदर और रक्षा करता है और जो मनुष्य सत्यनिष्ठ होता है वह सदा अपने कर्त्तव्योंका पालन करता है । महाराज हरिश्चन्द्र सत्यनिष्ठ थे, इसी लिए उन्होंने अपना राज्य छोड़ा, परिवार और चांडालका दासत्व स्वीकार किया, पर सत्यकी रक्षाके लिए उन्हें जो कुछ कर्त्तव्य-कर्म जान पड़ा उससे उन्होंने कभी मुँह न मोड़ा । यदि कर्त्तव्यको शरीर मान लें तो सत्यपरायणताको अस्थि-मज्जा, साधुताको उसका रक्त और सरलताको उसका सौन्दर्य्य मानना पड़ेगा । घर, समाज, देश और संसारमेंसे किसी एकका भी काम सत्यके विना नहीं चल सकता । वास्तविक प्रतिष्ठा मनुष्यका बड़ा भारी ऐश्वर्य है। इसके समान और कोई सम्पत्ति नहीं है । यह तो नहीं कहा जा सकता कि इसकी सहायतासे संसारके सब पदार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इसकी सहायतासे जो कुछ मिल सकता है, उसका तथा स्वयं प्रतिष्ठाका मूल्य और महत्त्व बहुत अधिक है। और यह वास्तविक प्रतिष्ठा भी केवल सत्यताकी सहायतासे ही प्राप्त की जा सकती है । सदाचरणसे मनुष्यको सबसे बड़ा लाभ यही होता है कि समाजमें उसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ जाती है और लोगोंके हृदयमें उसके लिए बहुत अधिक आदर और स्थान हो जाता है । यदि बेईमानीसे प्राप्त किये हुए धन अथवा खुशामदसे प्राप्त किये हुए पदके कारण ही किसी मनुष्यकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई हो तो वह प्रतिष्ठा कौड़ी कामकी नहीं है, उसे हम कभी वास्तविक प्रतिष्ठा नहीं कह सकते । वास्तविक प्रतिष्ठा वही है जिसका

कारण अनीतियुक्त न हो और जो सत्य तथा न्यायके आधारपर स्थित हो।

एक बात और है। हमें सदाचारी बननेके लिए केवल सत्यनिष्ठा और न्यायपरायणता ही यथेष्ट नहीं है। हममें केवल सत्य और न्यायके प्रति निष्ठा ही नहीं होनी चाहिए बल्कि तदनुसार कार्य्य करनेका साहस और बल भी होना चाहिए। हमें ऐसा आचरण करना चाहिए जिसमें सद्भाव हो। हमारे हृदयमें सदा कोई सत्कार्य्य करनेकी इच्छा होनी चाहिए और उस सत्कार्य्यको अपना लक्ष्य और उद्देश्य बनाकर हमें कर्त्तव्य-क्षेत्रमें उतर पड़ना चाहिए। बहुतसे लोग परम सत्यनिष्ठ हुआ करते हैं पर तो भी उद्देश्य और कर्त्तव्यके अभावके कारण वे संसारमें कोई ऐसा काम नहीं करते जिसे हम आदर्श कह सकें और जिसके कारण लोगोंको अनुकरण करनेकी उत्तेजना मिले। सत्यनिष्ठ होकर हम केवल इतना ही कर सकते हैं कि कोई बुरा काम न करें; लेकिन अच्छा काम करनेके लिए कर्त्तव्यपरायण होनेकी आवश्यकता होती है। जब तक मनुष्य सदा सत्कार्य्य न करता रहे तब तक उसका सदाचार स्थिर नहीं रह सकता। जो लोग संसार और मानव-जातिका कल्याण करना चाहते हों उन्हें सदा सत्कार्य्य करते रहना चाहिए।

आजकल लोगोंमें प्रायः विद्वत्ता या बुद्धिमत्ताकी कमी नहीं होती। पर क्या केवल इन्हीं बातोंसे मनुष्य संसारमें महत्त्व अथवा आदर प्राप्त कर सकता है? हमारी समझमें तो वही बुद्धिमान्, विद्वान् या श्रेष्ठ कहलानेके योग्य है जिसमें सत्यनिष्ठाके साथ साथ सत्कार्य्य करनेकी प्रबल इच्छा भी हो और यथासाध्य वह अपनी इस इच्छाकी पूर्त्तिका प्रयत्न भी करता हो। गोसाईं तुलसीदास, महाराज शिवाजी, जस्टिस महादेव गोविन्द रानडे आदि क्या कभी केवल अपनी विद्वत्ता या बुद्धिमत्ताके कारण ही इतनी अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते थे? कभी नहीं। उनकी प्रतिष्ठाका मुख्य कारण यही था कि वे लोगोंके उपकारके लिए सत्कार्य्य करते थे। मार्टिन लूथरका जर्मनीके समस्त राजाओंसे

अधिक आदर केवल उनके सत्कार्य्यके कारण ही हुआ था। सत्य, न्याय और परोपकारका ध्यान रखकर जो मनुष्य कर्म्म-क्षेत्रमें उतर पड़ता है वही महात्मा कहलाता और संसारका पूज्य होता है। सब लोग उसपर विश्वास रखते हैं और उसीके दिखलाये हुए पथका अनुसरण करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि वह जो कुछ करेगा वह उचित और न्याय्य ही करेगा। संसारमें सदाचार और सत्कार्य्यका जितना आदर होता है उतना विद्या और बुद्धिका कमी नहीं होता। सत्कर्म्म करनेवाला और सदाचारी मनुष्य ही सबसे अधिक बुद्धिमान् समझा जाता है। दुराचारी और कुकर्म्मीकी बुद्धि चाहे कितनी ही तीव्र क्यों न हो, कोई उसे बुद्धिमान् नहीं कहता। आर्थिक दृष्टिसे सदाचारी मनुष्यकी चाहे उतनी अधिक उन्नति न हो जितनी एक विद्वान्की होती है, पर तो भी इसमें सन्देह नहीं कि उसके गुणोंका विकास हुए बिना नहीं रहता। सम्भव है कि कुछ समय तक लोग उसकी दरिद्रता और हीनावस्था आदिके कारण उसकी वास्तविक योग्यता न समझें, पर तो भी कभी न कभी उसके गुणोंका विकास अवश्य होगा। और गुणोंका यही विकास स्वयं उसका धन भी है और लोगोंको सदाचारी बनानेका साधन भी।

सदाचारी मनुष्य अपने सदाचारको दूसरोंकी विद्या, बुद्धि और झूठी प्रतिष्ठा आदिसे कहीं बढ़कर समझता है। और वास्तवमें उसका ऐसा समझना बहुत ही ठीक है। एक बार एक वकीलने एपिक्टेटस नामक प्रसिद्ध विद्वान्के पास जाकर उसके सिद्धान्तकी कुछ बातें जाननी चाही थीं। एपिक्टेटसने समझ लिया कि यह मुझसे सद्भावसे नहीं पूछ रहा है, इस लिए उसने कहा,—"तुम मेरे सिद्धान्तोंपर केवल टीका-टिप्पणियाँ करोगे; उनका वास्तविक तात्पर्य्य जानना तुम्हारा अभिप्राय नहीं है। इस लिए तुम्हें अपने सिद्धान्त न बतलाना ही अच्छा है।" इसपर वकीलने कहा—"यदि मैं आपके सिद्धान्तोंपर चलने लगूँ तो मैं भी आपकी तरह दरिद्र न हो जाऊँ? तब फिर मुझे

इतना ठाठ-बाट, धन-दौलत और गाड़ी-घोड़ा कहाँसे प्राप्त हो?" एपिक्टेट्सने उत्तर दिया,—"लेकिन मुझे तो इन सब चीजोंकी जरूरत ही नहीं है। यदि सच पूछो तो मुझसे अधिक दरिद्र तुम ही हो। तुम्हें दूसरोंकी चिन्ता रहती है, पर मैं किसीकी परवा नहीं करता। इस लिए मैं तुमसे अधिक सम्पन्न हूँ। मुझे इस बातकी चिंता नहीं रहती कि राजे-महाराजे मेरे विषयमें क्या सोचते, समझते या कहते होंगे। और न मैं कभी किसीकी खुशामद करता हूँ। यही मेरी सम्पत्ति है। तुम्हारे पास सम्पत्ति अवश्य है, पर तुम्हारे लोभके कारण उसका होना और न होना दोनों बराबर हैं। अपना मन ही मेरा राज्य है। तुम्हारी झंझटोंकी अपेक्षा तत्त्वविचारमें मेरा समय बहुत अच्छी तरह बीतता है। तुम्हें अपना ऐश्वर्य कम और मुझे अपना ऐश्वर्य अधिक जान पड़ता है। तुम असंतुष्ट रहते हो और मैं संतुष्ट रहता हूँ।" *

इँग्लैण्डके प्रसिद्ध वक्ता शेरिडेनकी भी एक बात सुनने योग्य है। वह बहुत ही व्यसनी और अव्यवस्थित था, इस लिए उसकी योग्यता और प्रतिष्ठा अधिक न बढ़ सकी थी। एक दिन उसका एक नौकर अपनी तनख्वाह माँगने लगा। इसपर शेरिडेनने बिगड़ कर कहा,—"क्या तनख्वाह कहीं भागी जाती है? अपनी हैसियत देखकर बातें किया करो।" इसपर नौकरने उत्तर दिया,—"साहब, मैं अपनी हैसियत देखकर ही बातें करता हूँ। आपमें और मुझमें जो अन्तर है वह मैं बहुत अच्छी तरह समझता हूँ। कुल और विद्यामें आप मुझसे श्रेष्ठ हैं, पर व्यवहार, लेन-देन और स्वभाव आदिमें मैं आपसे श्रेष्ठ हूँ।" नौकरका कहना बहुत

---

* भर्तृहरिने कहा है—

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः,
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः।
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि हि परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः॥

यथार्थ था। मालिकको तो समयपर लोगोंका रुपया चुकानेकी चिन्ता ही न थी और न उसे अपनी बातका ही ध्यान रहता था; पर नौकरमें ये बातें नहीं थीं। वह सच्चा और अपनी बातका पक्का था।

अनेक छोटी मोटी ऐसी बातें हैं जिनके संयोगसे मनुष्यके सदाचारका संगठन होता है। बड़े भारी धनी या पराक्रमी बनकर वाहवाही लूटना तो हमारे अधिकारमें नहीं है, पर अपने सद्भावों और सद्वासनाओंकी सृष्टि करके उनके अनुसार चलना हमारे हाथमें है। इन बातोंके लिए किसी बाहरी साधनकी आवश्यकता नहीं है, अतः ये अपने ही अधीन हैं। यद्यपि मनुष्यकी वृत्तियाँ और व्यवहार आदिपर बाहरी या ऊपरी साधनों और प्रसंगोंका थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ता है, पर तो भी आत्मनिष्ठ मनुष्यके लिए उस प्रभावसे बचकर ठिकाने आ जाना सहज है। जितने छोटे बड़े कार्य या विचार आदि होते हैं; हमारी वृत्तिपर उन सबकी कुछ न कुछ छाया पड़ती है और उसी छायाके अनुसार मनुष्यका भविष्य बनता या बिगड़ता है। यदि हम बराबर भले आदमियोंके साथ रहें और अच्छे कार्य करें तो हम सदाचारी बन जायँगे। इसका विपरीत आचरण हमें दुराचारी बना देगा। इन दोनोंमेंसे किसी एक मार्गका अवलंबन करना स्वयं हमारे अधिकारमें है। इसी लिए गीतामें कहा है,—
"आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।"

अपनी वृत्तियोंपर अधिकार रखना एक बड़े साम्राज्यका प्रबन्ध करनेसे कहीं अधिक कठिन और साथ ही श्रेष्ठ है। दुर्व्यसनोंसे बचने और सन्मार्गमें लगनेके लिए आत्म-संयमनसे ही सबसे अधिक सहायता मिलती है। दुर्व्यसनी मनुष्यका दुर्व्यसन छुड़ाने, चिड़चिड़े और क्रोधी मनुष्यको शांत बनाने और मनोविकारोंको वशमें रखनेके लिए आत्मसंयमनकी आवश्यकता होती है। आत्म-संयमन करनेकी शक्ति सब लोगोंमें कुछ न कुछ हुआ करती है, और उसके अस्तित्वका समय समयपर प्रमाण भी मिला करता है। अन्य सभी शक्तियोंकी तरह अभ्याससे यह शक्ति भी बहुत कुछ बढ़ाई जा सकती है। पर इसके लिए थोड़े परि-

धर्मकी आवश्यकता होती है । प्रत्येक मनुष्यको सदा आत्मनिरीक्षण, आत्मशिक्षण और आत्मसंयमन करते रहना चाहिए। जो काम हम करते हैं वह ठीक और करने योग्य है या नहीं, इस बातका विचार करना आत्मनिरीक्षण करना कहलाता है । अपना कर्त्तव्य समझकर अपने आपको उसके पालनमें प्रवृत्त करना आत्मशिक्षण है और यदि हमारी प्रवृत्ति उसके विपरीत हो और हमें उचित करनेसे रोके अथवा बुरे कामोंकी ओर बढ़े तो उस दशामें उसे वशमें रखना आत्मसंयमन है। इन्हीं तीनों वृत्तियोंके कारण बहुतसे लोग महात्मा बन गये हैं।

मनको व्यवस्थित और वशमें रखनेके लिए बहुत कुछ दृढ़ निश्चयकी आवश्यकता होती है । हमारे मार्गमें समय समयपर बहुतसे विघ्न आकर उपस्थित हो जाते हैं और हम बहुतसी भूलें भी कर बैठते हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि शुतुर बे-मुहारकी (बिना नकेलके ऊँटकी) तरह हमारा मन दुष्कर्मोंकी ओर प्रवृत्त होने लगता है । उस समय उसे रोकना कठिन हो जाता है । पर तो भी यदि हममें दृढ़ निश्चय हो तो हम उसे बुरे मार्गमें जानेसे रोक सकते हैं । यदि हम शीघ्र ही पूर्ण सदाचारी न हो सकें तो भी हमारे सदाचारकी कुछ न कुछ वृद्धि बराबर होती जाती है । अब तक संसारमें जितने बड़े बड़े महात्मा हो गये हैं और बहुत समय बीत जानेपर भी जिनकी कीर्त्ति अभी तक बनी हुई है, हमें सदा उन्हींका अनुकरण करनेका प्रयत्न करना चाहिए । हम दूसरोंकी देखादेखी सम्पन्न या पराक्रमी तो नहीं हो सकते, पर सदाचारी अवश्य हो सकते हैं।

सदाचारका शुद्ध स्वरूप मनुष्यके व्यवहारोंसे ही प्रकट होता है। जो मनुष्य अपने सब कार्य्य प्रामाणिकता, सत्यता और बुद्धिमत्तासे करता है उसे सब लोग सदाचारी समझते हैं। धार्मिकता, नीतिमत्ता, बुद्धिमत्ता, दृढ़ता आदि ही सदाचारके प्रमाण हैं। जो मनुष्य सदाचारी होता है वह पहले एक बार अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लेता है और तब वह दृढ़तापूर्वक उसके पालनमें लग जाता है । उस समय न तो उसे

कीर्तिकी चिन्ता रहती है और न लोगोंके कुछ कहने सुननेकी। दूसरोंके कहने सुननेपर ध्यान देनेकी अपेक्षा अपने मनोदेवताकी आज्ञाका पालन करना वह अधिक श्रेष्ठ समझता है। अपने अन्तःकरणका समाधान ही उसके लिए सबसे अधिक आनन्ददायक होता है। जो काम उसे अच्छा जान पड़ता है उसे करनेसे वह कभी नहीं डरता। वह समझता है कि यदि इस काममें मेरी निन्दा भी होगी तो वह क्षणिक ही होगी; आगे चलकर जब लोग मेरा वास्तविक अभिप्राय अथवा सुन्दर परिणाम देखेंगे तब आपसे आप उनकी जबान बन्द हो जायगी।

अन्तःकरणका दृढ़ निश्चय हमारे आचरणरूपी वृक्षका मूल है। यदि हम सत्कार्य्य करनेमें अपने दृढ़-निश्चयका उपयोग करेंगे तो उसमें अवश्य ही सुन्दर फल लगेंगे। यह दृढ़ निश्चय दुर्बलसे दुर्बल मनुष्यको भी बहुत सबल बना देता है। शंकराचार्य्य और गौतमबुद्धसे लेकर अब तक जितने बड़े बड़े धर्म्मप्रवर्त्तक और नीतिप्रवर्त्तक हुए हैं उन सबके पास अपनी कार्य्यसिद्धिके लिए केवल यही एक साधन था। जिस प्रकार सन्मार्गमें लगनेके लिए दृढ़ निश्चयसे हमें बहुत बड़ी सहायता मिलती है उसी प्रकार कुमार्गसे बचनेमें भी हम उससे बहुत मदद पाते हैं।

यदि हममें केवल दृढ़ निश्चय, उत्साह और साहस आदि गुण ही हों और परोपकार-बुद्धि तथा सत्यनिष्ठा आदि गुण न हों तो लाभके बदले हानि ही होती है। जिस मनुष्यकी प्रवृत्ति सन्मार्गमें न हो उसमें दृढ़ निश्चय, उत्साह और साहस आदिका न होना ही अच्छा है। नहीं तो केवल उसकी दुष्टता ही बढ़ेगी। जरासन्धने अपने दृढ़ निश्चय और साहस आदिके कारण श्रीकृष्णका वध करना ही विचारा था, किसी शुभ कार्यकी ओर उसका विचार नहीं गया था। दुर्योधनने बेचारे निरपराध पाण्डवोंका राज्य ही छीना था और रावणने केवल सीता-हरण किया था। तैमूरलंग, जूलियस सीज़र और नैपोलियनने केवल लाखों मनुष्योंके प्राण ही लिये थे; कोई ऐसा शुभ कार्य्य

मानव-जातिका कल्याण होता । असुरोंमें और देवताओंमें केवल यही अन्तर है कि असुरोंमें केवल साहस और बल ही होता है, पर देवताओंमें इन बातोंके अतिरिक्त सत्यनिष्ठा, धार्मिकता और दयालुता भी होती है । सद्गुणी मनुष्य भी देवताके तुल्य ही होता है । वह सदा सब लोगोंसे सत्यतापूर्ण व्यवहार करता है और उसके वचनों तथा कार्य्योंमें प्रामाणिकता होती है । वह अशक्तों और अनाथोंपर तो दया करता ही है, साथ ही वह अपने शत्रुओंके साथ भी उदारतापूर्वक व्यवहार करता है । संसारमें कीर्ति भी ऐसे ही मनुष्यकी फैलती है ।

सदाचारी मनुष्यके मनमें सदा ईश्वरका भय बना रहता है । उसकी सभी बातें और कार्य्य सत्यतापूर्ण होते हैं । प्रत्येक अच्छी बात, उत्तम कार्य्य और भले मनुष्यके लिए उसके हृदयमें सर्वोच्च स्थान होता है । जिस प्रकार ऐसे एक मनुष्यसे सारा कुटुंब सुखी होता है, उसी प्रकार ऐसे बहुतसे लोगोंसे सारा देश सुखी होता है । बिना ऐसे मनुष्योंकी अधिकताके न तो संसारका कोई कार्य्य शान्तिपूर्वक चल सकता है और न लोग सन्मार्गकी ओर प्रवृत्त हो सकते हैं । एक विद्वान्ने तो सदाचारको धर्म्म शब्दका पर्य्याय ही माना है, और वास्तवमें जो मनुष्य पूर्ण धार्मिक होगा वह परम सदाचारी भी होगा । ऐसे लोगोंके कारण परस्पर प्रेम और ईश्वरके प्रति भक्तिकी वृद्धि होती है ।

जब किसी देशमें कोई बड़ा महापुरुष, पराक्रमी या देशभक्त होता है तब उसकी देखादेखी और भी बहुतसे वैसे ही लोग उत्पन्न हो जाते हैं । भगवान् बुद्धके समयमें सारा देश प्रायः त्यागियों और महात्माओंसे इसी लिए भर गया था कि लोगोंके सामने त्याग और धर्म्मकी एक प्रत्यक्ष मूर्ति ही आ खड़ी हुई थी । महाराज शिवाजीके समय महाराष्ट्र प्रान्तमें इसी लिए असंख्य वीर निकल आये थे कि उस देशमें एक आदर्श वीर पराक्रमी पुरुष उपस्थित था । जस्टिस महादेव गोविन्द रानडेके समयसे जो अब तक निःस्वार्थ भावसे देशसेवा करनेवाले इतने लोग हुए हैं उसका भी यही कारण है । बात यह है कि बड़े लोग कुछ तो स्वयं

अपने उपदेश और सामीप्य आदिके कारण लोगोंको अपने समान बना लेते हैं और कुछ लोग केवल उन्हें आदर्श मानकर ही वैसे हो जाते हैं। बड़े लोगोंके कार्यों और आचरणों आदिका प्रभाव साधारण लोगोंपर अवश्य पड़ता है । इतिहासमें इस प्रकारके अनेक उदाहरण मिलेंगे जिनमें युद्ध आदिके अवसरपर एक पक्षके बिलकुल पराभव होनेके समय उसमें कोई बड़ा वीर या पराक्रमी निकल आया हो और उसने लोगोंको उत्साहित करके शत्रुपर तुरन्त विजय प्राप्त कर ली हो । बिलकुल निराश और थके हुए सैनिकोंमें भी ऐसे वीरोंके दर्शनमात्रसे नये बल और नये उत्साहका संचार हो आता है। नेपोलियन, वाशिंगटन और शिवाजी ऐसे ही वीर थे ।

बड़े लोग केवल अपने जीवन-कालमें ही लोगोंको शिक्षा नहीं देते; बल्कि उनकी मृत्युके उपरान्त उनके नामपर भी बहुत बड़े बड़े कार्य हो जाते हैं । उनका शरीर तो नहीं रहता, पर उनके आदर्श कृत्य अजर और अमर होते हैं । किसी ऊँचे स्थानपर रक्खे हुए दीपकके समान ऐसे महात्मा और उनके सत्कृत्य सर्व साधारणके लिए मार्ग-दर्शक हुआ करते हैं । समय समयपर महात्माओंके मुखसे जो वाक्य निकला करते हैं, वही वाक्य सैकड़ों और हजारों वर्षों तक लोगोंको नीति-पथपर चलाते रहते हैं । चाणक्य, भर्तृहरि, रामदास, नरसी मेहता, नानक और तुलसीदासके नीति-सम्बन्धी वाक्योंसे आज घर घर कर्तव्य निश्चित करनेमें सहायता ली जाती है । सुकरात, प्लेटो, अरस्तू और सिसरोके वाक्यरत्नोंसे यूरोपके आधुनिक साहित्यके ग्रन्थ भरे पड़े हैं । भारतीय साहित्यके बहुत थोड़े ऐसे ग्रन्थ होंगे जिनपर व्यास, वाल्मीकि और मनुके विचारोंकी छाया न पड़ी हो।

जिस देशमें सदाचारी, विद्वान्, शूर, उद्योगी और महात्मा पुरुष उत्पन्न होते हैं उस देशका इतिहास बहुत ही उज्ज्वल और महत्त्वपूर्ण हो जाता है । ऐसे पुरुषोंको इतिहासका कारण कहना चाहिए, क्यों कि इतिहासमें केवल मनुष्योंके कृत्योंका वर्णन ही होता है । भारतका प्राचीन

इतिहास, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, व्यास, पराशर आदि ऋषियों, भगीरथ, दिलीप, रघु, अज, राम और युधिष्ठिर आदि राजाओं और गार्गी, अनुसूया, सावित्री और जानकी आदि विदुषियोंका ही इतिहास है। भोज, विक्रम, कालिदास और भवभूतिके कारण भारतके इतिहासकी कितनी शोभा बढ़ी है। अहिल्याबाई, रानी भवानी, और लक्ष्मीबाईके कार्योंसे इतिहासके अंगकी कितनी उत्तम पूर्त्ति हुई है। यदि इन लोगोंके जीवन-वृत्तान्त निकाल दिये जायँ तो हमारे देशके इतिहासमें क्या बच रहे? यदि शिवाजी और गुरु गोविन्दसिंहने गौओं और ब्राह्मणोंकी रक्षा न की होती तो आज हम किसकी कीर्ति गाते? ऐसे ही लोग देशके वास्तविक जीवन और वैभव हुआ करते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि सदाचारी पुरुष देशके जीवन होते हैं, तथापि उनसे देशकी वास्तविक दशाका ठीक ठीक पता नहीं चलता। किसी देशकी वास्तविक अवस्थाका पता वहाँके साधारण निवासियोंके व्यवहारसे ही चलता है। मनुष्योंकी तरह देशको भी अपना व्यवहार बनाये रहना चाहिए। यदि देशका सदाचार नष्ट हो जाय तो उसकी बड़ी ही दुर्दशा होती है। विद्वान् लोग देशरूपी शरीरका मन और सर्वसाधारण हाथ-पैर आदि हैं। हमारे यहाँके ऋषियोंने ब्राह्मणोंको जो विराट् पुरुषका सिर, क्षत्रियोंको भुजा, वैश्योंको जानु और शूद्रोंको पैर माना है उसका यही अभिप्राय है। जब तक ये सभी अंग दृढ़ न रहें तबतक शरीर (या देश) की स्थिति अच्छी नहीं रह सकती। जिस देशमें विद्वान्, पराक्रमी और कार्य्यकुशल लोग नहीं होते, संसारके अन्य देशोंमें उसका मान भी नहीं होता।

नीतिके केवल बड़े बड़े ग्रन्थों और विद्यालयों आदिसे ही जनसाधारणका आचरण नहीं सुधारा जा सकता। सर्वसाधारणको सदाचारी बनानेके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी है कि देशमें बड़े बड़े सदाचारी पुरुष हों। बड़े लोगों और नेताओंको लोग जिस प्रकार आचरण करते हुए देखते हैं, ठीक उसी प्रकार वे स्वयं भी

करने लग जाते हैं। यदि कोई बड़ा अफ़सर घूस खाता हो तो उसके मातहतोंके लिए एक अच्छा आदर्श खड़ा हो जाता है और फिर उनकी घूसखोरीका ठिकाना नहीं रह जाता। यदि स्वामी सत्यनिष्ठ और परोपकारी होता है तो उसके सेवक भी प्रायः आप ही आप प्रामाणिक और दयालु हो जाते हैं। जिस ओर राजाकी प्रवृत्ति होती है प्रजा भी उसी ओर चल पड़ती है। अतः यह बात बहुत आवश्यक है कि जो लोग समाजमें अग्रगण्य, प्रधान या नेता हों, वे अपना आचरण सदा आदर्श-रूप बनाये रखनेका प्रयत्न करें।

अपने प्राचीन इतिहास, कुलके बड़प्पन और पूर्वजों आदिकी कीर्त्तिसे आचरण सुधारनेमें बहुत बड़ी सहायता मिल सकती है। यदि हम इस बातका स्मरण करें कि हमारे पूर्वजोंने विद्याका प्रचार अथवा दुष्टोंका दमन करनेमें कितना प्रयत्न किया था और कैसी कैसी कठिनाइयाँ सहकर सफलता प्राप्त की थी तो हमारी सन्तान कभी मूर्ख या पीड़ित नहीं रह सकती। जिस प्रकार अपने पूर्वजोंके कृत्योंका स्मरण करनेसे मनुष्योंको संसारमें उन्नति करनेमें सहायता मिलती है, उसी प्रकार अपने देशके प्राचीन इतिहासके अध्ययनसे आगेकी पीढ़ियोंको अपने देशका मुख उज्ज्वल करनेमें सहायता मिलती है। यही कारण है कि जेता लोग जब किसी विजितदेशका इतिहास लिखने बैठते हैं, तब जहाँ तक हो सकता है उसे बुरा और हेय बनानेका ही प्रयत्न करते हैं। अतः प्रत्येक जाति और प्रत्येक देशको अपना प्राचीन इतिहास सदा उज्ज्वल बनाये रखनेका प्रयत्न करना चाहिए और अपना भविष्य सुधारनेके लिए समय-पर उससे सहायता लेनी चाहिए। अपने पूर्वजोंके पराक्रम और सत्कृत्योंका स्मरण हमें धीर और साहसी बनाता है। इसके अतिरिक्त उनका संगृहीत अनुभव-भांडार बहुतसी विपत्तियों और कठिनाइयोंसे हमारी रक्षा भी करता है।

लेकिन केवल अपने पूर्वजोंकी कीर्त्तिका आल्हा गानेसे ही हमारा काम नहीं चल सकता। हमें उनका अनुकरण करते हुए कर्त्तव्य-क्षेत्रमें उतरना

चाहिए। अपने नष्ट वैभवका रोना रोनेसे कुछ नहीं होता और न कोरे व्याख्यानों अथवा लेखोंका ही कोई फल होता है। वास्तविक देशाभिमान कुछ और ही है । वह जिस मनुष्यमें होता है वह सच्चे हृदयसे अपने कर्त्तव्यके पालनमें लग जाता है और कोई नया काम करके लोगोंमें धैर्य्य और उत्साह उत्पन्न करता है। वह अनेक प्रकारके कष्ट भोगता है, पर तो भी सत्पथ नहीं छोड़ता। किसी देश या जातिके बड़े होनेके लिए इस बातकी आवश्यकता नहीं है कि उसका विस्तार बहुत अधिक हो अथवा उसमें बहुतसे लोग हों। आवश्यकता केवल इस बातकी है कि उस देश या जातिके लोग आचरणकी दृष्टिसे बड़े हों। ग्रीस देश बहुत ही छोटा था, पर तो भी वहाँके वीरों, विद्वानों और स्वदेशाभिमानियोंके कारण उसकी कीर्त्ति अमर हो गई। रोमन साम्राज्य बहुत अधिक विस्तृत था; पर वहाँके लोग दुर्व्यसनी, आलसी और अभिमानी थे, इस लिए आज उसका कोई नाम भी नहीं लेता।

फ्रांसके राजा चौदहवें लूई बड़े बुद्धिमान् और राजकार्य्यमें बड़े कुशल थे। उन्होंने हालेण्ड देशपर विजय प्राप्त करनेके लिए निरन्तर अनेक वर्षोंतक प्रयत्न किया, पर उन्हें सफलता नहीं हुई। एक बार उन्होंने अपने प्रधान अमात्यसे कहा कि कैसे आश्चर्यकी बात है कि मैं इतने बड़े फ्रांस देशका राजा होकर भी हालैण्ड सरीखे छोटे देशपर विजय प्राप्त न कर सका । इसपर अमात्यने उत्तर दिया—"बात यह है कि राज्यके केवल अधिक विस्तारसे ही देश बड़ा नहीं हो जाता। जिस देशकी प्रजा अच्छी होती है वही देश अच्छा होता है । उद्योग, मितव्यय और उत्साह आदि गुण हालैण्डवालोंमें अधिक हैं, इसी लिए आप उनपर विजय नहीं प्राप्त कर सके हैं।"

किसी देशके सुधार और निरन्तर उन्नतिका मुख्य कारण वहाँके लोगोंका सदाचार ही है। लोगोंमें धैर्य्य, पराक्रम और एकता आदि गुण बिना सदाचारके आ ही नहीं सकते। और जब तक लोगोंमें ये गुण न हों तब तक देशमें राष्ट्रीयता नहीं आती। जिस देशके निवासी स्वार्थी

और दुर्व्यसनी हों, वह देश यदि उन्नतिके शिखरपर भी पहुँच चुका हो, तो भी उसका अवःपतन अवश्य और बहुत ही शीघ्र हो जायगा। दुराचारका प्रारम्भ मानों नाशका बीजारोपण है। जो देश अधःपतित होकर हीनावस्थाको पहुँच गया हो, उसमें यदि दैव-योग और ईश्वर-कृपासे सच्चे देशभक्त और स्वदेशाभिमानी पुरुष उत्पन्न हों तो उन्हें उचित है कि वे अपने देशके निवासियोंको सबसे पहले सदाचारी बनानेका प्रयत्न करें। क्योंकि विना सदाचारके कभी किसी देशका अभ्युदय नहीं हो सकता।

दूसरा प्रकरण ।

गार्हस्थ्य जीवन ।

[गृह-शिक्षाका महत्त्व—बाल्यावस्थाकी शिक्षा—शिक्षा आरम्भ करनेका समय—घरके लोगोंका बालकपर प्रभाव—पाठशालाकी अपेक्षा गृहशिक्षा अधिक महत्त्वकी है—घरके लोगोंका कर्त्तव्य—स्त्री-जातिकी प्रधानता—स्त्रियोंका उत्तर-दायित्व—राष्ट्रोन्नतिमें स्त्रियोंकी सहायता—माताका पुत्रपर प्रभाव—माताकी प्रेरणासे पुत्रके कर्त्तव्यपरायण होनेके उदाहरण—पौराणिक और ऐतिहासिक—आदर्श राजमाता जिजाबाई—महाराष्ट्र साम्राज्यकी स्थापनामें जिजाबाईका कार्य्य—स्त्रियोंका कर्त्तव्य—दाम्पत्य धर्म्म—विवाहपर कुछ विचार—स्त्री और पुरुषके अधिकार और कर्त्तव्य—विवाहका महत्त्व—आदर्श पति और पत्नी—स्त्रियाँ संकटसे पतिकी रक्षा करती हैं—कुछ ऐतिहासिक उदाहरण—प्रेमका महत्त्व—अच्छी स्त्री अपने पतिको सच्चरित्र बनाती है—गार्हस्थ्य जीवनका महत्त्व—घरके लोगोंका कर्त्तव्य—रानडे और रमाबाई ।]

मानव-जीवनका प्रारम्भ गृहस्थीसे ही होता है, इस लिए सब प्रकारके गुणों आदिके सीखनेका सबसे प्रधान और अच्छा स्थान घर ही है । सब प्रकारकी अच्छी या बुरी आदतें पहले पहल घरमें ही सीखी जाती हैं और यही आदतें जन्म भर बनी रहती हैं; फिर उनमें किसी प्रकारका परिवर्त्तन नहीं होता । यदि बाल्यावस्थामें किसीको अच्छी शिक्षा मिलती है तो वह सदा भला आदमी बना रहता है और यदि उसे बुरी शिक्षा मिलती है तो उसका बाकी जीवन भी बिगड़कर नष्ट हो जाता है । सद्गुणोंकी ओर प्रवृत्ति और दुर्गुणोंके प्रति घृणा—सदाचारकी ओर प्रवृत्ति और दुराचारके प्रति घृणा—बाल्यावस्थामें घरमें ही उत्पन्न होती है । युवावस्था और संसारमें तो उसका विकास मात्र होता है ।

यदि यह कहा जाय कि इस समय संसारमें जितनी अच्छी और बुरी प्रथायें चली हुई हैं, उनका मूल कारण लोगोंको बाल्यावस्थामें मिली हुई गृहशिक्षा ही है तो कुछ अनुचित न होगा । एक विद्वान्‌का

तो यहाँ तक मत है कि देशमें अच्छे या बुरे कायदे कानूनोंके बननेका मूल भी यही आरम्भिक गृहशिक्षा है । बड़े बड़े राजनीतिज्ञों और नेताओं आदिको घरमें जैसे शिक्षा मिलती है, वैसे ही कार्य्य वे लोग आगे चल कर करते हैं; इस लिए बालकोंको शिक्षा देनेवाले लोग ऐसे होने चाहिए जो राज्यका परिचालन करनेवालोंसे भी अच्छे हों। ऐसी दशामें जब कि एक ही प्रकारके लोग स्वदेशमें कुछ और तथा विदेशमें कुछ और तरहके कायदे-कानून बनाते हों, तब उक्त कथनके पहले अंश-पर तो किसीको थोड़ा बहुत वक्तव्य हो सकता है; पर अंतिम अंश अवश्य ही बिना किसी प्रकारके विवादके स्वीकार करने योग्य है। बालकोंको शिक्षा देना अवश्य ही राज्य-परिचालनसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और कठिन है, क्यों कि प्रत्येक देश और उसके राजकार्य्यका सारा भविष्य उस देशके बालकोंपर ही निर्भर करता है।

मानव-जीवनका आरम्भ बाल्यावस्थासे होता है इस लिए पहले इसी सम्बन्धमें कुछ बातें कही जायँगी । प्रत्येक बालकको संसारके और लोगोंसे मिलने जुलने या व्यवहार करनेसे पहले अपने घरके लोगोंसे ही व्यवहार आरम्भ करना पड़ता है, यही सृष्टिका क्रम है । यदि बाल्या-वस्थामें घरमें बालकने अपने भाइयों, बहनों, माता पिता और नौकर मजदूरनियों आदिसे उत्तम और सभ्यता-पूर्ण व्यवहार करना सीख लिया तो फिर यह निश्चय समझिए कि आगे चलकर संसारमें वह सदा सबके साथ बहुत ही उत्तम व्यवहार करेगा। यदि घरमें ही बालकको सच बोलने, शान्त रहने, बड़ोंकी आज्ञा मानने तथा इसी प्रकारकी और दूसरी अच्छी बातोंका अभ्यास पड़ जायगा तो फिर आगे चलकर उसके झूठे, उद्दण्ड या कुमार्गी होनेकी कोई आशंका न रह जायगी । तात्पर्य्य यह कि घरमें जो बालक अच्छे निकलेंगे वे बड़े होनेपर जगत्में भी भले ही रहेंगे। इसी लिए विद्वानोंने गृह-शिक्षाको देश-सुधारका प्रधान आधार कहा है। घरोंमें बालकोंका जैसा संस्कार होता है, देशकी रीति-नीति विद्या-बुद्धि, महत्ता-सम्पन्नता आदि भी वैसी होती है।

बाल्यावस्थाका बुरा संस्कार अच्छे महात्माओंमें भी बना रहता है; इसी लिए बालकोंको सब प्रकारकी बुरी बातोंसे बचानेकी इतनी अधिक आवश्यकता होती है । न्यायसंगत तो यही सिद्धान्त जान पड़ता है कि बालकोंकी प्रवृत्ति जन्मसे सात्विक और सुरुचिपूर्ण होती है; और उसे तामसी या कुरुचिपूर्ण बनानेके लिए उसपर बलप्रयोग करना पड़ता है । पर तो भी कुछ विद्वानोंका मत है कि बालक जिस समय जन्म लेता है उस समय स्वयं उसमें कोई अच्छी या बुरी बात नहीं होती; उसमें सारे गुणों या दोषोंका आरोपण पीछेसे ही होता है । इस स्थानपर इस बातकी विवेचना करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि उक्त दोनों मतोंमेंसे कौनसा मत ठीक है । यदि पहला मत ठकि हो तब तो बहुत ही अच्छी बात है; और नहीं तो दूसरा मत भी हमारे कामके लिए बहुत उपयुक्त है । पर कमसे कम लेखकका यह विश्वास है कि स्वभावतः बालकोंकी प्रवृत्ति बुरे कामोंकी अपेक्षा अच्छे कामोंकी ओर ही अधिक होती है और उन्हें बुरा बनानेकी अपेक्षा अच्छा बनाना अधिक सहज है । बालकोंकी प्रवृत्ति चाहे सुरुचिपूर्ण न भी हो, पर तो भी उसका कुरुचिपूर्ण होना कभी सिद्ध नहीं किया जा सकता । हम या तो बलपूर्वक बालकोंकी सुरुचिका नाश करके उन्हें कुमार्गमें प्रवृत्त करते हैं अथवा किसी निर्दोष क्षेत्रमें दूषित बीज बोते हैं । चाहे जो हो, संसारके समस्त दोषों और अवगुणोंका उत्तरदायित्व माता-पिता आदिपर और गृहशिक्षापर ही है ।

जन्मके समय शिशु बिलकुल अबोध और अज्ञान हुआ करता है । उस समय उसकी आवश्यकतायें चाहे कितनी ही अधिक क्यों न हों, पर तो भी उसमें अभिलाषाओं या वासनाओं आदिका एकदम अभाव रहता है । जब वह छः सात महीनेका हो तब उसमें अभिलाषायें उत्पन्न होती हैं पर उन अभिलाषाओंको प्रकट करनेकी शक्ति उसमें नहीं होती । बालककी इच्छायें जानना और उचित रीतिसे उनकी पूर्ति करना ही मानों उसकी शिक्षाका आरम्भ है । यह शिक्षा बालकको

अनजानमें मिलती है। यद्यपि स्वयं बालकको इस शिक्षाका कुछ ज्ञान नहीं होता तथापि बालककी प्रवृत्ति और चरित्रके संगठनमें उससे बहुत अच्छी सहायता मिलती है। जब बालक डेढ़ वर्षका हो जाता है तब उसमें थोड़ी बहुत समझ आ जाती है। उस समयसे उसे जो शिक्षा मिलने लगती है, उसका मनपर दृढ़ संस्कार होता जाता है। उस समय बालकपर पड़नेवाला प्रभाव प्रायः स्थायी होता है। यदि उस अवस्थामें किसी प्रकार बालकपर कोई बुरा संस्कार या प्रभाव पड चुका हो तो प्रयत्न करनेपर बहुत अंशोंमें वह दूर भी किया जा सकता है। पर यह प्रयत्न जहाँ तक हो सके, शीघ्र करना चाहिए, क्यों कि ज्यों ज्यों समय बीतता जायगा त्यों त्यों वह संस्कार दृढ़ होता जायगा और अधिक दृढ़ होनेपर उसे दूर करना भी उतना ही कठिन होता जायगा। उस अवस्थामें बालकोंको उचित भोजन और वस्त्र आदि देकर उचित रूपसे उनकी इच्छायें पूरी करके, उन्हें सदा खुली हवामें रखकर और इसी प्रकारके दूसरे उपायोंसे हम उन्हें लालची, जिद्दी और रोगी होनेसे बचा सकते हैं। ऐसे बालकोंको रोनेका भी कभी अभ्यास नहीं पड़ेगा। उनके सब काम ठीक समयपर करके उन्हें वक्तका पाबन्द भी बनाया जा सकता है। दिनभर जिस बालकके मुँहमें माताका स्तन लगा रहेगा, जिस बालकको उसका भाई या बहन दिन भर रुलाती या मारती पीटती रहेगी, या जिस बालकसे अपना पीछा छुडानेके लिए उसकी माता उसे अफीम या पोस्त खिलाकर सुला देगी, वह बालक आगे चलकर कैसा होगा इसका अनुमान सब लोग स्वयं ही कर सकते हैं।

बालककी उक्त अवस्था प्रायः ढाई वर्षतक रहती है। इसके उपरान्त चार पाँच वर्ष तक ऐसा समय रहता है जब कि बालककी उठान होती है। वह समय बालककी सब शक्तियोंके विकसित होनेका है। यह बात प्रायः सभी लोग जानते हैं कि बालकोंकी प्रवृत्ति अनुकरणप्रिय होती है, वे दूसरोंको जो कुछ करते देखते हैं, वही वे स्वयं भी करने लग जाते हैं। उदाहरण ही उनका सबसे बड़ा गुरु और अनुकरण ही उनकी

सबसे बड़ी शिक्षा होती है। साथ ही बाल्यावस्थामें जो संस्कार हृदय पर दृढ हो जाते हैं, वे आजन्म नष्ट नहीं होते बल्कि उत्तरोत्तर बढ़ते रहते हैं। सद्गुण या दुर्गुणका बीजारोपण उसी समय होता है। इस लिए उनके सामने सदा उत्तम आदर्श और उदाहरण उपस्थित रहना चाहिए। बहुतसे लोग बालकोंको झुठलाया करते हैं और तरह तरहके झूठे बहाने करके उन्हें बहलाते हैं। बालकोंपर ऐसी बातोंका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। वे भी झूठ बोलना सीख जाते हैं। बहुतसे लोग अपने बालकोंसे दूसरोंको अपशब्द कहलवाते अथवा मार खिलवाते हैं और उन्हें ऐसे काम करते हुए देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं। पर वे यह नहीं जानते कि ऐसी बातोंसे बालकोंका जीवन नष्ट हो जाता है। उनमें लोगोंको गालियाँ देने और मारनेकी आदत सदा बनी रहती है और वे प्रायः बदमाश हो जाते हैं। बहुतसे लोग स्वयं तो तंबाकू पीते या सुरती खाते हैं, पर जब बालक भी उनका अनुकरण करते हुए सुरती या तंबाकूको हाथ लगाते हैं तो वे बेतरह बिगड़ते और उन्हें मारने पीटने तकके लिए तैयार होते हैं। बालकोंके जीवनपर ऐसी बातोंका बड़ा ही निकृष्ट प्रभाव पड़ता है और यही निकृष्ट प्रभाव बहुधा उन्हें आचार-भ्रष्ट कर देता है।

यदि गृहस्थीके सभी लोग—माता, पिता, भाई, बहन, नौकर, मजदूरनी आदि—सदाचारी हों तो कदापि किसी बालकका आचरण नहीं बिगड़ सकता। जब उसके सामने बुरे उदाहरण आवेंगे ही नहीं तब वह बुरी बातें सीखेगा कहाँसे ? उसकी शिक्षाका प्रधान आधार तो उदाहरण और अनुकरण ही है। बालक जब होश सँभालता है तब संसारके सभी विषय और सभी कार्य्य उसके लिए नये हुआ करते हैं और उन सब नवीनताओंको देख कर उसे बहुत कुतूहल हुआ करता है। वह लोगोंको जैसी भाषा बोलते देखता है वैसी ही भाषा बोलने लगता है और जैसे आचरण करते देखता है, स्वयं भी वैसे ही आचरण करने लगता है। उस समय उसका अंतःकरण शीशेकी तरह होता है। उसपर जैसा प्रकाश पड़ता है बड़ा होने पर उसमेंसे वैसा ही परावर्त्तन होता है।

किसीके कवि, किसीके गायक, किसीके गणितज्ञ और किसीके वैज्ञानिक होनेका मूल कारण यही है कि बाल्यावस्थामें जिसे जिस बातका शौक लग जाता है बड़े होने पर वह उसीका पण्डित होता है।

बहुतसे माता-पिता यह समझते हैं कि घरकी शिक्षासे बालकोंके आचरणका कोई सम्बन्ध नहीं है। वे जो कुछ सीखते हैं वह या तो पाठशालामें और या बड़े होनेपर अपने संगी साथियोंमें। पर ऐसा समझना बड़ी भारी भूल है। बालकोंकी प्रधान शिक्षा घरमें ही होती है, पाठशाला या संगतिमें मिलनेवाली शिक्षा तो गौण है। सदाचार और सद्व्यवहारकी शिक्षा प्रत्येक घरमें होनी चाहिए। प्रत्येक बालकको घरमें ही इस बातकी शिक्षा मिलनी चाहिए कि सुस्वभाव, उद्योगशीलता, सत्यप्रियता, प्रसन्नता और उत्तम अभ्यास आदि प्रत्येक मनुष्यके लिए परम आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हैं। यह विश्वास उनके हृदयपर बहुत ही दृढ़तापूर्वक अंकित कर देना चाहिए कि मानव-जीवनका मुख्य उद्देश्य सदाचारी और कर्त्तव्य-परायण बनना ही है। बालकोंके हृदयमें जमाये हुए विचारोंकी उपमा किसी छोटे वृक्षके तनेपर खोदे हुए अक्षरोंसे दी जाती है। जिस प्रकार उस वृक्षकी उत्तरोत्तर वृद्धिके साथ उसके तनेपर खोदे हुए अक्षर भी बड़े होते जाते हैं उसी प्रकार बालकोंके हृदयंगम विचार भी उत्तरोत्तर बढ़ते और पुष्ट होते जाते हैं।

बालकोंको सदाचारी, परिश्रमी, सहनशील, सत्यवादी और उदार बनाना घरके और लोगोंके ही हाथमें है, पर ये कार्य सबसे अधिक उत्तमतापूर्वक और सहजमें माता ही कर सकती है। अँगरेजीकी एक कहावतका अभिप्राय है कि अच्छी माता सौ गुरुओंसे भी बढ़कर है। माता और पुत्रका पारस्परिक स्नेह बहुत अधिक होता है; न तो माता कभी अपने पुत्रको अपने पाससे क्षणभर अलग करती है और न पुत्र कभी माताका साथ छोड़ता है। ऐसी अवस्थामें बालकपर माताके सभी कृत्योंका प्रभाव पड़ना बहुत ही स्वाभाविक और अनिवार्य्य है। बालक भी अपनी माताका जितना अधिक अनुकरण करते हैं उतना और

किसीका नहीं करते। दिनरात उनकी आँखोंके सामने माता ही रहती है और वे अधिकांश बातें उसीसे सीखते हैं। ऐसी दशामें बालकका चरित्र बनानेके लिए माताका सद्गुणी होना ही सबसे अधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। यह एक स्वाभाविक नियम है कि उपदेशोंकी अपेक्षा उदाहरणोंका ही लोगोंपर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। नीति-शास्त्रके ग्रन्थ संसारकी प्रायः सभी भाषओंमें भरे पड़े हैं जिनमें अनेक बहुमूल्य वचन और उपदेश हैं; पर उन सभी उपदेशोंके अनुसार कभी कोई आचरण करता हुआ नहीं देखा गया। पर एक दूसरेकी देखादेखी सभी लोग आचरण करते हैं। किसी मनुष्यपर केवल उपदेशकका उतना उत्तम और स्थायी प्रभाव नहीं पड़ सकता जितना एक अच्छे उदाहरणका पड़ता है। और बालकोंके लिए तो यह बात और भी जोर देकर कही जा सकती है। उपदेश समझनेकी शक्ति बालकमें बहुत ही कम हुआ करती है, पर प्रत्यक्ष आचरण और कार्य्य उनकी समझमें तुरन्त आ जाते हैं। यदि कृति और उपदेशमें एक दूसरेसे विरोध पड़े तो उसका परिणाम और भी भयंकर होता है। ढोंग रचने और लोगोंको ठगनेकी शिक्षाका आरम्भ यहींसे होता है। पर यदि बालकको मातासे सदा उपदेश भी अच्छे मिलते रहें और उसके सत्कार्य्योंके उदाहरण भी समय समयपर उसे मिला करें तो उसके सदाचारी और सद्गुणी होनेमें कोई सन्देह नहीं रह जाता।

यदि सच पूछिए तो गृहस्थीमें स्त्रीका ही राज्य होता है। घरकी बड़ी बूढ़ी स्त्री जिस प्रकार चाहती है गृहस्थीका प्रबन्ध करती है और जैसे चाहती है वैसे, दूसरोंको रखती है। छोटी बड़ी सभी बातोंमें लोगोंको उसका मुँह ताकना पड़ता है। विशेषतः बालकोंको तो और भी अधिक उसपर निर्भर रहना पड़ता है। जब उन्हें किसी बातकी आवश्यकता होती है अथवा उन्हें किसी प्रकारका कष्ट पहुँचता है तब वे तुरन्त माताकी ही शरण लेते हैं। माता भी तुरन्त स्नेहपूर्वक उनके कष्ट निवारण कर देती है। यदि यह गृह-प्रबन्ध या गृह-राज्य सरलता और उत्तमतापूर्वक

चलता रहे तो गृहस्थीके सब लोगोंको केवल स्वर्गसुखकी प्राप्ति ही न हो बल्कि समाज और देशकी बहुत कुछ उन्नति भी सहजमें ही हो जाय। भगवान् मनुने कहा है—" यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। " अर्थात् जहाँ स्त्रियोंकी पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं। इस कथनका मुख्य तात्पर्य्य यह है कि यदि स्त्रियोंका योग्य आदर किया जाय, गृहस्थीके प्रबन्धका उन्हें पूर्ण अधिकार दिया जाय और उन्हें किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचने दिया जाय तो परिवारके सुख और सम्पन्नताकी पूर्ण वृद्धि होती है। माताकी गोदमें खेलनेवाला छोटा बालक भावी प्रौढ प्रजाका मानों बीज होता है। जिस रूपमें वह बीज अंकुरित होकर बढ़ेगा या फूले फलेगा उसी रूपमें उस देशकी स्थितिमें भी परिवर्त्तन होगा और मनुष्यकी प्रवृत्ति और आचरण आदिका संगठन करनेमें स्त्री जितनी अधिक समर्थ होती है उतना समर्थ और कोई शिक्षक नहीं हो सकता। चरित्रकी उन्नति देशकी उन्नतिका मुख्य लक्षण है और चरित्रकी उन्नति सबसे अधिक स्त्रियोंके द्वारा ही हो सकती है। पुरुष जन-समुदायका बुद्धिस्थान या मन ही है, पर स्त्री उसका प्रेम-स्थान या हृदय है। पुरुष जन-समुदायका बल है, और स्त्री उसका सौन्दर्य्य, आभूषण और सुख है। स्त्रियोंमें प्रेमभाव बहुत ही स्वाभाविक होता है जिसके कारण मनका प्रभाव—बल बहुत बढ़ जाता है। अतः इस कथनमें तनिक भी सन्देह नहीं हो सकता है कि मानव-जीवनकी सारी उत्तमता या निकृष्टता केवल स्त्रीजातिपर ही निर्भर है।

मानव-चरित्रके संगठनमें और देशके भविष्यके निर्माणमें स्त्रियाँ सदा बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य्य करती हैं। उनका यह कार्य्य बहुत गुप्त रूपसे और स्वतः होता रहता है; लोगोंको उसका पता भी नहीं लगता। चाहे संसारमें उनके कार्य्योंका आदर न हुआ हो, पर तो भी उनके कार्य्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण और विशाल होते हैं। किसी स्त्रीने वेदपर भाष्य नहीं किया, महाभारत, रामायण या रघुवंशकी रचना नहीं की, समुद्र-पर पुल नहीं बाँधा, रावण, जरासंध या कंसको मारकर पृथ्वीका भार

नहीं उतारा, खगोल, भूगोल या रसायन-शास्त्रसम्बन्धी कोई नया आविष्कार नहीं किया, पर तो भी इन सब कार्य्योंसे कहीं अधिक उत्तम और महत्त्वपूर्ण कार्य्य स्त्रियोंने किये हैं। संसारके सभी बड़े बड़े कार्य्य करनेवालोंने स्त्रियोंसे ही बल प्राप्त किया है,—स्त्रियोंके ही प्रेमामृतसे वे लोग पुष्ट हुए हैं। संसारकी उन्नति और कल्याण करनेवालोंमें स्त्रीजातिका स्थान बहुत ऊँचा है। अमेरिकाको स्वतंत्र करनेवाले जार्ज वाशिंगटन, सारे यूरोपमें हलचल मचा देनेवाले नेपोलियन, इंग्लैण्डमें प्रजासत्ताक राज्य स्थापित करनेवाले क्रॉमवेल, पंडितवर लॉर्ड बेकन और कविवर स्कॉट आदि सबकी मातायें बड़ी ही विदुषी और सदाचारिणी थीं। उक्त महानुभावोंकी अधिकांश योग्यता उनकी माताका ही प्रसाद थी। जिस माताने अपने पुत्रको जैसा बनाना चाहा वह वैसा ही बन गया। क्राइस्टके पिताका कोई नाम भी नहीं जानता, पर उनकी माता मरियम जगद्विख्यात हैं। अकबरने सभी गुण अपनी मातासे ही सीखे थे।

यह बात सभी लोग स्वीकार करेंगे कि किसी राष्ट्रकी उन्नति बहुत अंशोंमें स्त्रियोंकी सदाचारसम्पन्नताके कारण ही होती है। माताके सद्गुण ही स्तनपानके साथ साथ पुत्रमें उतरते हैं। जिन महानुभावोंने संसारमें अपना नाम चिरस्मरणीय किया है, उनमेंसे अधिकांशके महत्त्व और यशका कारण उनकी मातृशिक्षा ही हुई है। सिकंदर, आल्फ्रेड दि ग्रेट और रूसके बादशाह पीटर दि ग्रेट इत्यादि सभीके गुणोंका उत्कर्ष उनकी बाल्यावस्थाकी मातृशिक्षाके कारण ही हुआ था, उनके गुणोंका बीजारोपण छोटी अवस्थामें उनकी माताने ही किया था। पर तो भी संसारमें ऐसी मातायें बहुत ही थोड़ी हुई हैं जिन्होंने परिस्थिति आदिका पूर्ण रूपसे ध्यान रखकर अपने पुत्रोंको संकटोंसे बचानेके लिए बड़े ही धैर्य्य और बुद्धिमत्तासे उन्हें कर्त्तव्य-पथ दिखलाया हो और अनुरोधपूर्वक उन्हें उस पथपर चलाकर उनके द्वारा महत्त्वपूर्ण कार्य्य कराये हों। पाण्डवोंकी माता कुंती ऐसी ही थी। पाण्डवोंके जन्मकालसे महाभारतके युद्धमें विजयी होकर राजकार्य्य चलानेके समय तक उनकी माता कुन्ती

जीवित रही। उसने अपने पाँचों पुत्रोंको बाल्यावस्थासे ही उत्तम और योग्य शिक्षा दी थी। बाल्यावस्थामें ही पाण्डवोंपर अनेक प्रकारके संकट आये, पर कुन्तीने बहुत ही धैर्य्य और बुद्धिमतापूर्वक उन संकटोंसे उनकी रक्षा की। कठिनसे कठिन अवसरोंपर भी उसने अपने पुत्रोंको हताश या पराङ्मुख नहीं होने दिया। यादवोंको अपनी और मिलानेमें उसने बहुत अच्छी राजनीतिज्ञताका परिचय दिया था। यहाँ तक कि महाभारतके युद्धमें पाण्डवोंके विजयी होनेमें भी बहुतसे अंशोंमें कुन्ती ही सहायक हुई थी।

जिस समय राम-रावण युद्धमें लक्ष्मणको शक्ति लगी उस समय हनुमानजी संजीवनी बूटी लेने गये थे। बूटी लेकर लौटते समय उन्होंने लक्ष्मणकी शक्ति लगनेका समाचार अवधवासियोंको भी सुना दिया था। वह दुःखद समाचार सुनते ही सुमित्रासे न रहा गया और उसने तुरन्त शत्रुघ्नको अपने पास बुलाया और उन्हें सेना-सहित लंका जाकर युद्ध करनेकी आज्ञा दी। एक तो माताकी आज्ञा और वह भी उत्साहवर्द्धक तथा आवेश पूर्णशब्दोंमें। उस समय शत्रुघ्न क्या यदि कोई भारी कायर भी होता तो सुमित्राके वचन सुनकर रणक्षेत्रमें पहुँच जाता। शत्रुघ्नने तुरन्त युद्धकी सब तैयारियाँ कर लीं। यदि ठीक प्रस्थानके समय गुरुराज वसिष्ठ उन्हें आकर न समझाते तो अवश्य ही शत्रुघ्न लंका पहुँच कर भीषण युद्ध आरम्भ कर देते। जिस समय युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ करनेके विचारसे घोड़ा छोड़ा और उसके साथकी सेनाके अधिकारी अर्जुन बनाये गये तब अर्जुन उस घोड़ेके साथ घूमते फिरते मणिपुर पहुँचे। मणिपुरमें उनका पुत्र बभ्रुवाहन ही राज्य करता था। जब बभ्रुको अपने पिताके आनेका समाचार मिला तब वह कुछ भेंट लेकर उनके दर्शनोंको पहुँचा। पर अर्जुनने उससे कहा कि मैं इस समय तेरा शत्रु बनकर यहाँ आया हूँ। तुझे उचित था कि तू अपने साथ सेना लेकर मेरे सामने आता और मुझसे युद्ध करता, पर तूने अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं किया, इससे मैं समझता हूँ कि तू मेरा

पुत्र नहीं है । उस समय उसकी विमाता अलोपा भी उसके साथ ही थी । यद्यपि बभ्रुवाहन उसकी सोतके गर्भसे उत्पन्न हुआ था तो भी अर्जुनके इस कंथन पर कि–"मैं समझता हूँ कि तू मेरा पुत्र नहीं है" उसे बहुत ही क्रोध आया और उसने तुरन्त ही बभ्रुसे कहा–"बेटा, देखते क्या हो ? तुम्हारा जन्म तो चित्रांगदाके गर्भसे हुआ है, पर पुत्रकी तरह तुम्हें मैंने ही पाला है । तुम्हें इस समय अपनी माताकी लाज रखनी चाहिए और युद्ध करके इस कलंकसे अपनी और अपनी माताकी रक्षा करनी चाहिए । यदि इस समय मेरे सामने स्वामिके स्थानपर कोई और होता तो मैं स्वयं युद्ध करती ।" बभ्रुवाहनसे न रहा गया और वह अपने पिता अर्जुनसे ही भिड़ गया और उसने उन्हें परास्त करके छोड़ा । जब हैहयवंशके कृतवीर्य्य राजाने निर्दोष जमदग्निको मार डाला तब ऋषि-पत्नी रेणुका बहुत ही दुःखी हुई । इतनेमें उसके पुत्र परशुराम वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने आकर देखा कि पिताजी भूमि पर पड़े हैं और उनके गलेसे रक्तकी धारा बह रही है । उनके कई शिष्य भी घायल और लहूसे लथपथ इधर उधर पड़े छटपटा रहे हैं और पास ही माता रेणुका रोती हुई खड़ी है । परशुरामको देख रेणुकाको कुछ धैर्य्य और सन्तोष हुआ और उसने उन्हें संक्षेपमें सारी घटना सुनाकर कहा–"पुत्र, जिसने मुझे विधवा और तुम्हें पितृहीन किया है और जो अपनी वीरताके घमंडमें आकर हमारी सब गायें छीन ले गया है, उससे बदला लेना तुम्हारा काम है । यदि तुमको अपनी माताके गर्भसे उत्पन्न होने और उसका स्तनपान करनेका कुछ भी अभिमान है, तो तुम तुरन्त जाकर कृतवीर्य्यको उसकी दुष्टताका फल चखाओ । मैं तो अब सती होती हूँ, पर इतना कहे जाती हूँ कि यदि तुम मातृऋणसे उऋण होना चाहते हो तो उसी हैहय-वंशके रक्तसे मेरा तर्पण करना ।" माताकी इस आज्ञाके पालनके निमित्त परशुरामने इक्कीस वार किस प्रकार क्षत्रियोंका नाश किया, सो यहाँ बतलानेकी जरूरत नहीं । इन सब उदाहरणोंसे केवल यही नहीं सम-

झना चाहिए कि एक विशेष अवसरपर ही माताने अपने पुत्रसे कोई काम करा लिया था। नहीं, माताओंने आरम्भसे ही अपने पुत्रोंको वैसी शिक्षा दी थी।

यह तो हुई पौराणिक कालकी बात। अब कुछ ऐतिहासिक उदाहरण लीजिए। अपने पिताके मरनेके समय प्रसिद्ध वीर आल्हा और ऊदल बहुत ही छोटे थे। उन्हें यह भी खबर न थी कि उनके पिता किस प्रकार और क्यों मारे गये थे। पर उनकी माता देवलदेवी क्षत्राणी और वीरपत्नी थी। वह यह भी जानती थी कि अपने बालकोंको कैसी शिक्षा देकर वीर-माता बनना होता है। वह सदा अपने छोटे छोटे दोनों पुत्रोंको अपने पास रखती थी और नित्य रातको सोनेके समय उन्हें बड़े बड़े वीरोंकी कहानियाँ सुनाया करती थी। मानों स्तनपानके समयसे ही वह उन्हें वीरता और कर्त्तव्य-परायणताकी शिक्षा देती थी। जब दोनों बालक कुछ सयाने हुए तब वह उन्हें लेकर जंगलों और पहाड़ोंमें जाने लगी और वहीं उन्हें युद्धविद्याकी शिक्षा देने लगी। समय समय पर वह उनसे जंगली जीवोंका शिकार भी कराती थी। तात्पर्य्य यह कि बाल्यावस्थासे ही वह अपने पुत्रोंको वीर, साहसी और योद्धा बनाने लगी। इसी अवस्थामें उसने उन्हें युद्धके सब दाब पेच भी बतला दिये और उन्हें मातृभूमिके प्रति कर्तव्यकी शिक्षा भी दे दी। जब दोनों बालक कुछ और वयस्क हुए तब उसने उन्हें उनके पिताके मारे जानेका सब समाचार सुनाया और उन्हें अपने साथ लेकर माँड़ापर आक्रमण किया। वहाँ उसने अपने वीर पुत्रोंकी सहायतासे रण-क्षेत्रमें करिंगाके प्राण लिये।

वीरवर शिवाजीकी माता जिजाबाई भी आधुनिक वीर और आदर्श माताओंमें अग्रगण्य हैं। प्रारम्भिक जीवनसे लेकर शिवाजीके स्वराज्य प्राप्त करने तककी सब घटनाओंपर विचार करनेसे पता लगता है कि शिवाजीके स्वराज्य-स्थापनमें बहुत बड़ा कार्य उनकी माता जिजाबाईने किया था। उनके पिता देशमुख लूकजी जाधवराय अहमदनगरके निजामशाहीके एक प्रतिष्ठित सरदार थे। उन्हें निजामशाहीकी ओरसे बारह-

हजारी मन्सब और खर्चके लिए बहुत बड़ी जागीर मिली थी। शाही दरबारमें उनकी बहुत चलती थी और वे बहुधा जो चाहते थे, वह हो ही जाता था। तात्पर्य्य यह कि उनका वैभव और मान तो बहुत अधिक था, पर वह सब मुसलमानोंका ही प्रसाद था। उस समय मालोजी राजे नामके एक सज्जन अपने भाईके साथ आकर उनके यहाँ ठहरे। यह थे तो बहुत ही दरिद्र, पर उच्च कुलके, सुशील और अच्छे योद्धा थे। जाधवरायके यहाँ पहले तो उन्हें ड्योढ़ीदारी मिली, पर पीछे अपने गुणोंके कारण और जाधवरायकी सिफारिशसे शाही फौजमें उन्हें एक अच्छी जगह मिल गई। पर उस समय भी वह जाधवरायको पहलेकी तरह ही मानते रहे। उन्हें कोई पुत्र नहीं था, इस लिए उन्होंने एक पीर शाह शरीफकी मन्नत मानी। पीछे उन्हें दो पुत्र हुए जिनमें एकका नाम उन्होंने शाहजी और दूसरेका शरीफजी रक्खा। शाहजी बाल्यावस्थासे बहुत सुन्दर, चपल और योग्य थे। जब वे चार पाँच वर्षके थे तभी जाधवरायके यहाँ उनकी तीन वर्षकी कन्या जिजाके साथ खेलने जाया करते थे। एक दिन एक उत्सवके समय जाधवरायके यहाँ बहुतसे लोग आये हुए थे। उस समय शाहजी और जिजाको खेलते हुए देखकर सबके सामने जाधवरायके मुँहसे निकल गया—"वाह! क्या अच्छी जोड़ी है।" सब लोगोंने कहा—"हाँ हाँ, क्या बात है!" इसपर मालोजीने सब लोगोंसे कहा कि आप लोग गवाह रहिए, जाधवरावजी आजसे हमारे समधी हुए। दूसरे दिन जब जाधवरावने भोजनके लिए मालोजीके यहाँ निमंत्रण भेजा तब उन्होंने कहला दिया कि अब तो हम अपने पुत्रके विवाहके समय ही आपके यहाँ भोजन करेंगे। इसपर जाधवराव भी बिगड़े और उनकी स्त्री भी बहुत नाराज हुई। कहाँ जाधवराव, एक बड़े सरदार और कहाँ मालोजी, उनके यहाँके ड्योढ़ीदार और नौकर। तुरन्त जाधवरावने उनकी नौकरी छुड़ा दी। लाचार होकर मालोजी अपने घर वेरूल चले गये और वहाँ जाकर पहलेकी तरह खेती-बारी करने लगे।

मालोजीने जाधवरावके सामने प्रतिज्ञा की थी कि " यदि मैंने जिजाको शाहजीकी बधू न बनाया तो मेरा नाम मालोजी नहीं। मैं वीरवर हम्मीर और प्रतापका वंशज हूँ। तुम्हें अपनी कुलीनता अच्छी तरह दिखलाऊँगा।" जाधवरावने मालोजीको दरिद्र समझकर ही उनके साथ अपनी कन्याका विवाह करना ठीक न समझा था। ऐसे अवसर-पर परमेश्वरने मालोजीकी सहायता की और उन्हें पृथ्वीमें गड़ा हुआ बहुतसा धन मिल गया। उस द्रव्यसे उन्होंने तीन हजार घुड़सवार नौकर रक्खे और बहुत कुछ दान-पुण्य करके अच्छी ख्याति पाई। इसके बाद दौलताबाद पहुँच कर उन्होंने किसी प्रकार बादशाह-तक अपनी फरियाद पहुँचाई। उस समय मोगलोंके आक्रमणसे दक्षिणके प्रायः सभी राज्य दुर्बल हो रहे थे, इस लिए बादशाहने मालोजी और उनके भाईको अपनी ओर मिलाये रखनेके लिए बारह हजारी मन्सब दिया। मालोजीको राजाकी उपाधि दी और शिवनेरी तथा चाकनके किले और उनके आसपासका प्रदेश जागीरके तौरपर दिया। यह घटना सन् १६०४ के मार्चकी है।

अब जाधवराव अपनी कन्याका विवाह शाहजीके साथ करनेसे इनकार न कर सके और बादशाहने अपने सामने दोनोंका विवाह करा दिया, तब बादशाहने उनका मन्सब और खिताब उनके सुयोग्य पुत्र शाहजीको दिया। कई अवसरोंपर शाहजीने अपनी योग्यता और शूर-ताका अच्छा परिचय दिया था। सन् १६२० में जहाँगीरने अपने पुत्र शाहजहाँको बड़ी भारी सेनाके साथ दक्षिणके राज्योंपर आक्रमण करनेके लिए भेजा। उस समय शाहजीने मलिक अंबरकी ओरसे मोग-लोंके साथ बहुत वीरतापूर्वक युद्ध करके उन्हें परास्त किया। उसी समय मोगलोंने जाधवरावको चौबीस हजारी मन्सब देकर अपनी ओर मिला लिया। शाहजीको भी उन्होंने अपनी ओर मिलाना चाहा था, पर वे उनके लालचमें न आये। पर उस समय तक मलिक अंबरका पक्ष बहुत निर्बल हो गया था, इस लिए उसे दबकर मोगलोंसे सन्धि करनी पड़ी।

सन् १६२७ में मलिक अंबरका शरीरांत हो गया और निजामशाहीमें केवल शाहजी ही रह गये। वे द्वितीय मुर्तजा निजामशाहके साथ माहलीके किलेमें थे; उस समय शाहजहाँकी ओरसे जाधवरावने उस किलेपर आक्रमण किया। शाहजी छः महीने तक घिरे हुए लड़ते रहे। जब जाधवरावसे और कुछ न हो सका तब उन्होंने मुर्तजाकी माताको बहकाकर शाहजीकी ओरसे सशंकित कर दिया। लाचार होकर शाहजी एक दिन शत्रुओंको मारते काटते हुए किलेमेंसे चल निकले। उस समय जिजाबाई भी उनके साथ थी और पहला लड़का संभाजी भी, जो उस समय चार वर्षका था। इसके अतिरिक्त उस समय जिजाको सात मासका गर्भ भी था। जाधवरावने अपनी कन्या और दामादका पीछा किया। गर्भवती जिजाबाईको घोड़ेपर सवार होकर दौड़नेमें बहुत कष्ट होता था, इस लिए शाहजीने उसे शिवनेरीके किलेमें अपने मित्र श्रीनिवासरावके पास छोड़ दिया और स्वयं आगेका रास्ता लिया। पीछेसे जाधवराव किलेमें जाकर अपनी कन्या जिजाबाईसे मिले। उन्होंने जिजाको अपने साथ ले जाना चाहा; पर उस देवीने अपने पतिसे वैर करनेवाले पिताके घर जानेसे इनकार कर दिया। वहाँ रहनेसे जिजापर अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ आनेकी भी सम्भावना थी; पर उन्होंने पिताके घर जाना स्वीकार नहीं किया। यही नहीं, बल्कि इसके उपरांत वे फिर कभी अपने पिताके घर नहीं गईं।

जाधवरावने फिर मुर्तजा निजामशाहकी ओर मिलना चाहा। इस पर उसने दौलताबादके किलेमें उन्हें बुलाकर धोखेसे उनको और उनके पुत्रको मार डाला। शाहजीको जब मुर्तजाने स्वयं अपने पास बुलाना चाहा तब अपने श्वसुरकी दशाका स्मरण करके उन्होंने उनके पास जाना स्वीकार न किया और कई बार निमंत्रित होने पर मोगलोंका पक्ष ग्रहण कर लिया। पर जब सन १६३३ में निजामशाहीका अंत हो गया तब शाहजी स्वतंत्र हो गये और मोगलोंपर भी आक्रमण करने लगे। उनका दमन करनेके लिए महावतखाँने निजामशाहीके अंतिम पास पकड़कर

उस समय उनकी गोदमें नवजात शिवाजी भी थे। इस प्रकार शिवाजीने पहले पहल अपनी माताके साथ मोगलोंकी कैद भुगती। मोगलोंके साथ उनके वैरका यहीं आरम्भ होता है। हाँ, हम यह कहना भूल गये कि संभाजी उस समय शाहजीके पास थे।

उधर शाहजीने निजामशाहीके खानदानके दस वरसके एक लड़केको तख्तपर बैठाकर फिर बादशाहत खड़ी करनेका प्रयत्न किया। दो बार मोगलोंकी विशाल सेनाने उनपर आक्रमण किये, पर उन्होंने बहुत वीरतापूर्वक दोनों बार उसे परास्त किया। अंतमें शाहजहाँ खुद एक बड़ी फौज लेकर दक्षिण पहुँचा। शाहजीने उस फौजकी भी बड़ी दुर्दशा की। तब लाचार होकर शाहजहाँने उनके सहायक बीजापुरके आदिलशाहको अपनी ओर मिलाया। इस प्रकार सन् १६३७ में निजामशाहीका सदाके लिए अंत हो गया। आदिलशाह और शाहजहाँमें सन्धि हो गई और शाहजी बीजापुरमें, आदिलशाहके दरबारमें रहने लगे। बीजापुर दरबारमें उनका सम्मान भी खूब हुआ।

जिस समय जिजाबाई शिवनेरीके किलेमें थीं, उसी समय सन् १६२७ के अप्रैल मासकी १० वीं तारीखको शिवाजीका जन्म हुआ था। इसके उपरांत तीन वर्ष तक वह वहीं रहीं, पर ये तीनों वर्ष भी बड़ी ही कठिनतासे बीते। इसके अनन्तर सात वर्ष तक उन्हें और भी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। कभी इस किलेमें और कभी उस किलेमें, इस प्रकार उन्हें एक जगहसे दूसरी जगह भागना पड़ता था। अनेक प्रकारकी विपत्तियाँ सहकर उन्होंने दस वर्ष बिताये, पर वे अपने मायके कभी नहीं गईं। उस विपत्ति-कालमें भी वे शिवाजीकी शिक्षा आदिका पूरा पूरा ध्यान रखती थीं। उन्होंने अपने पुत्रको उसी अवस्थामें लिखना पढ़ना, घोड़ेपर चढ़ना, तीर और बन्दूक चलाना तथा पटेबाजी आदि सभी आवश्यक बातोंकी बहुत अच्छी शिक्षा दी थी। इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं किया जा सकता कि शिवाजीको सारी शिक्षा उनकी माता जिजाबाईसे ही मिली थी।

सन् १६३७ में शाहजी अपने साथ अपनी स्त्री और पुत्रको बीजापुर ले गये और वहाँसे उन्होंने उन दोनोंको अपने विश्वसनीय सेवक दादोजी कोंडदेवके साथ पूने भेज दिया। वहाँ भी जिजाबाई सदा शिवाजीको स्वयं अनेक प्रकारकी उपयोगी बातोंकी शिक्षा देती रहीं जिसके कारण उनके गुणोंका अच्छा विकास हुआ। तेरह चौदह वर्षकी अवस्था तक केवल माताकी कृपासे ही उनमें समस्त क्षत्रियोचित गुण पूर्णरूपसे आ गये। उन्हें शारीरिक, नैतिक और धार्मिक तीनों प्रकारकी बहुत उच्च कोटिकी शिक्षा मिली। उसी शिक्षाका यह परिणाम था कि शिवाजीको किसी प्रकारका दुर्गुण, दुर्विचार या दुर्व्यसन छू तक न गया था। दादाजी कोंडदेव साधारणतः अच्छे राजनीतिज्ञ भी थे जिससे शिवाजीको राजकार्य्योंका भी बहुत अच्छा परिचय हो गया। पर तो भी दादाजी पुराने ढंगके आदमी थे। उनकी उच्चाकांक्षा किसी बहुत बड़ी मन्सबदारी या सरदारीसे आगे नहीं जा सकती थी। शिवाजीके हृदयमें स्वतंत्रता और स्वराज्य-स्थापनका विचार उनकी माता जिजाबाईने ही उत्पन्न और दृढ़ किया था। शाहजी भी स्वतंत्रता और स्वराज्यके बहुत बड़े पक्षपाती थे, पर तो भी अनेक कारणोंसे वे प्रकट रूपसे उसके लिए प्रयत्न नहीं कर सकते थे। शिवाजीने बाल्यावस्थासे अनेक प्रकारके कष्ट भोगे थे और उस समय जिजाबाईने अपने बहुत ही उच्च कोटिके धैर्य और मनोनिग्रहका परिचय दिया था। इसके अतिरिक्त जिजाबाईने जब यह देखा कि दस वर्ष तक अनेक प्रकारके परिश्रम करने और कठिनाइयाँ सहने पर भी शाहजीको अंतमें बीजापुर-दरबारकी नौकरी ही करनी पड़ी, तब उन्होंने भली भाँति समझ लिया कि बिना स्वतंत्रताके सारा पराक्रम व्यर्थ होता है। शिवाजीपर इन सब बातों और विचारोंका बहुत ही विलक्षण प्रभाव पड़ा और उन्होंने स्वतंत्रता तथा स्वराज्यके लिए उद्योग आरम्भ कर दिया। शाहजीने परिस्थिति आदि देखकर समय समयपर जिजाबाई और शिवाजीको समझाया बुझाया, पर उन लोगोंने स्वराज्यके लिए प्रयत्न करना नहीं छोड़ा। सन् १६४४ से १६७४ तक लगातार तीस वर्ष शिवाजीने

स्वराज्य स्थापनके लिए जो जो कष्ट-साध्य कार्य्य किये, उनके वर्णनसे इतिहास भरे पड़े हैं। इन सब कार्य्योंमें सदा उन्हें अपनी मातासे ही सम्मति और सहायता मिलती रही। जिजाबाई ही उन्हें उत्साहित करतीं, कर्त्तव्य बतलातीं और मार्ग सुझाती थीं। उस विचारशीला माताने अपने पुत्रकी कर्त्तव्यनिष्ठा देखकर उसके नश्वर शरीरका स्वाभाविक प्रेम छोड़ दिया और केवल उसकी कीर्ति तथा देशके कल्याणका ही ध्यान रक्खा। बीजापुरवालोंने शिवाजीका प्रयत्न रोकनेके लिए शाहजीसे बलपूर्वक उन्हें एक पत्र लिखवाया था। उस पत्रके उत्तरमें शिवाजीने लिखा था—" *जो मार्ग पकड़ लिया है वह अब छूट नहीं सकता। आगे ईश्वर जो करेगा वह होगा।* " यदि देशके कल्याणके लिए जिजाबाई अपने बड़े बड़े स्वार्थोंका त्याग करनेके लिए तैयार न होतीं, तो यह बात स्पष्ट है कि शिवाजी कभी ऐसा उत्तर नहीं लिख सकते थे। ऐसी अवस्थामें जब कि माता-पुत्रके कार्य्योंके कारण शाहजीको बीजापुरमें तरह तरहके कष्ट भोगने पड़ते थे, उक्त उत्तर प्रकट करता है कि वे लोग देशसेवाको ही अपना मुख्य धर्म्म समझते थे। जिजाबाईकी पतिनिष्ठामें भी किसी प्रकारका संदेह नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे आजन्म अपने पतिका पीछा करनेवाले पिताके घर नहीं गई। शिवाजीकी पितृभक्तिमें भी किसी प्रकारका संदेह नहीं हो सकता, क्योंकि अनेक उपाय रचकर और बड़ी कठिनतासे पीछेसे उन्होंने अपने पिताको भी बीजापुरवालोंके हाथसे छुड़ा ही लिया था। इसके अतिरिक्त शिवाजीने शाहजीसे यह भी कई बार कहा था कि आप बड़े हैं, सब काम आप करें; मैं आपकी अधीनतामें रहकर ही अपने कर्त्तव्योंका पालन करूँगा। पिताजीके मरनेके कारण वे अत्यंत दुःखी भी हुए थे और उस समय जिजाबाई सती होनेके लिए भी तैयार हुए थीं। इन सब बातोंसे जिजाबाईकी पतिभक्ति और शिवाजीकी पितृभक्ति अच्छी तरह प्रकट होती है। पर उक्त उत्तर यह बात सूचित करता है कि साथ ही देशोपकारका भाव माता-पुत्रमें बहुत बड़ा चढ़ा था। माताकी सहायता और सम्मतिसे शिवाजीने अंतमें स्वराज्यकी स्थापना

कर ही ली और १६ जून सन् १६७४ को बड़े समारोहसे उनका राज्याभिषेक भी हो गया । जिजाबाईके जीवनकी घटनाओंसे इस बातका बहुत अच्छा पता चलता है कि प्रतिकूल स्थितिको अपने अनुकूल बनाने और उद्देश्य सिद्ध करनेमें कितने साहस, कितने उद्योग, कितने निश्चय और कितने स्वार्थत्यागकी आवश्यकता होती है । समस्त प्रचण्ड उद्योगोंमें जन्मसे लेकर कार्यसिद्धिके समयतक—लगातार अड़तालीस वर्ष—शिवाजीको सब प्रकारकी शिक्षा, सहायता, सम्मति और उत्तेजना अपनी माता जिजाबाईसे ही मिली थी । उनके हृदयमें धर्म्म, देश और स्वराज्यके संबंधमें इतना अभिमान और इतने ऊँचे विचार उनकी माताने ही उत्पन्न किये थे ।

ऊपर जितनी बातें कही गई हैं अथवा जितने उदाहरण दिये गये हैं, उन सबसे यह बात भली भाँति प्रमाणित हो जाती है कि किसी मनुष्यके भविष्य और चरित्रके संगठनमें सबसे बड़ी सहायता मातासे ही मिलती है । जिस माताका इतना बड़ा कार्य्य हो, उसके उत्तरदायित्वका ध्यान रख कर उसकी शिक्षा और गुणों आदिपर भी कुछ विचार करना आवश्यक जान पड़ता है । आजकल संसार जिस क्रमसे चल रहा है, उसे देखते हुए माताका आदर्श ढूँढ़ निकालना बहुत ही कठिन जान पड़ता है । एक ओर तो हमारा भारत है, जहाँकी स्त्रियोंको अपने बालकोंकी रक्षा और आरोग्यताके लिए झाड़-फूँक और गंडे-तावीजोंसे ही फुरसत नहीं मिलती । यदि बालकको पढ़ानेके लिए गुरु किसी प्रकारकी ताड़ना करे तो माता कहती है,—"उँह, भाड़में जाय ऐसा पढ़ना । लड़का जीता रहे, न पढ़ेगा तो न सही, भीख ही माँग खायेगा ।" माताकी बातें सुनकर बालकके मिजाजका ठिकाना नहीं रह जाता । वह भी माताके साथ साथ अपने शिक्षकको तरह तरहकी उलटी सीधी बातें सुनाने लगता है । पढ़ना लिखना तो एक ओर रहा उलटे शिक्षकों और बड़ोंके प्रति उसमें निरादर-भाव उत्पन्न हो जाता है । दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्य और सुशिक्षित देश हैं जहाँकी स्त्रियाँ किसी प्रकारका दबाव मान-

नेके लिए तैयार ही नहीं हैं। वे सदा स्वतंत्र,—वल्कि यों कहिए कि उद्दण्ड—रहना चाहती हैं। भारतवासियोंका जीवन तो भला गार्हस्थ्य जीवन है भी, पर यूरोपीय जीवनको तो हम गार्हस्थ्यजीवन कह ही नहीं सकते। अधिकांश सम्पन्न यूरोपियनोंको अपने जीवनका बहुत बड़ा अंश होटलोंमें ही बिताना पड़ता है। सम्मिलित परिवारकी प्रथाके कारण उन्हें गार्हस्थ्य जीवनका कभी सुख ही नहीं मिलता। पर हमारे यहाँ यह बन्धन बहुत दृढ़ है। इतना दृढ़ है कि कैकेयीके द्वारा प्रयत्न करने पर भी दशरथके परिवारके लोग छिन्नभिन्न न हो सके। यदि उस अवस्थामें और किसी देश या धर्मका परिवार होता तो उसमें इतना विग्रह उपस्थित होता कि जिसका अनुमान करना सहज नहीं है।

यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो परिवारमें स्त्रियोंका कर्त्तव्य बहुत ही कठिन है और उनका उत्तरदायित्व भी बहुत अधिक है। उस कर्त्तव्य और उत्तरदायित्वके सम्बन्धमें यहाँ कुछ कह देना आवश्यक जान पड़ता है। ससुरालमें आने पर प्रत्येक स्त्रीको अपने पति, ससुर, जेठ, देवर, सास, ननद तथा घरके दूसरे लोगोंकी प्रीति सम्पादित करनी पड़ती है और यदि वह ऐसा न कर सके तो घरमें बड़ा भारी विग्रह उपस्थित होता है। ससुरालके लोगोंकी प्रीति-भाजन वही स्त्री हो सकती है जिसमें यथेष्ट लज्जा और विनय हो, जो सरलहृदया होने पर भी गम्भीर हो, जो बिना अपना कष्ट दूसरोंपर प्रकट किये परिश्रमपूर्वक घरका सब काम धन्धा करती हो, जो बड़ोंकी सेवाशुश्रूषा और छोटोंका पालन—पोषण अच्छी तरह कर सकती हो, और सबसे बढ़कर जिसमें अनन्य पति-भक्ति हो। अलसता, स्वेच्छाचारिता, कलहप्रियता, द्वेष, अभिमान, वाचालता आदि ऐसे दुर्गुण हैं जिनके कारण स्त्रियाँ केवल घरके और लोगोंकी दृष्टिमें गिर ही नहीं जाती हैं, बल्कि अनेक अवसरों-पर घरमें बड़ा भारी विवाद भी उपस्थित कर देती हैं। गृहस्थीमें सुखकी वृद्धि करनेके लिए यह बात भी बहुत आवश्यक है कि स्त्री बहुत ही मधुरभाषिणी और सुघड़ हो, घरका सब कामकाज सलीकेसे करे और

यदि उसके हाथमें घरका खरच बरच भी हो तो सब काम किफायतसे करे और किसीको किसी बातका कष्ट न होने दे। जस्टिस रानडे अपनी स्त्री रमाबाईको प्रतिमास सौ रुपये दे दिया करते थे और रमाबाई बहुत ही उत्तमतापूर्वक उन्हीं सौ रुपयोंमें महीने भर सब काम चलाती थीं। आरम्भमें एक महीना पूरा होनेसे पहले ही रुपये समाप्त हो गये। इसपर जस्टिस रानडेने बहुत ही शान्तिपूर्वक समझाकर उनसे कह दिया कि रुपयोंके खर्च हो जानेकी कोई चिंता नहीं है, जितने रुपये आवश्यक हों तुम और ले लो। पर साथ ही घरका ठीक ठीक प्रबंध करना सीखो। उस दिनसे रमाबाई सचेत हो गई और सदा सौ रुपयेमें ही घरका सारा खर्च चलाने लगीं।

स्त्रियोंमें अन्य गुणोंकी अपेक्षा सबसे अधिक आवश्यक गुण पतिभक्ति है। जिस समय सत्यभामाने द्रौपदीसे पूछा—" बहन, तुम घरमें सबकी प्रीति-पात्र कैसे बनी रहती हो? क्या तुम कोई जादू-मंतर जानती हो? " उस समय द्रौपदीने उत्तर दिया—" नहीं बहन, जादू-मंतरसे तो स्वामी और भी चिढ़ जाते हैं। घरके लोगोंकी प्रीतिपात्रा बननेके लिए स्त्रियोंको उनकी सेवा और भक्ति करनी चाहिए। मैं बहुत ही निष्ठापूर्वक पाण्डवों और घरके दूसरे लोगोंकी सेवा-शुश्रूषा करती हूँ, कभी किसीको दुर्वचन नहीं कहती, आँखके इशारेपर ही सब काम करती हूँ, पाण्डवोंकी अनुपस्थितिमें सब प्रकारके भोग-विलासोंका त्याग कर देती हूँ और उनके आनेपर बहुत ही प्रसन्नता तथा प्रेमपूर्वक उनका अभिनन्दन करती हूँ। मैं सदा उन्हें देवता-तुल्य समझती हूँ और कभी कोई ऐसा काम नहीं करती जो उन्हें अप्रिय हो। जिन बातों या कार्य्योंसे वे प्रसन्न होते हैं मैं वही बातें या कार्य्य करती हूँ। मैं न कभी बहुत अधिक बोलती हूँ, न कभी अधिक हँसती हूँ और न दुष्टा स्त्रियोंके साथ रहती हूँ।" इत्यादि।

दाम्पत्य-धर्म्म बड़ा ही कठिन है, उसका पूरा पूरा पालन सब लोग नहीं कर सकते। अनेक देशोंमें तो विवाहकी यही प्रथा है कि युवक प्रायः युवतियोंके साथ मिलकर स्वच्छन्दतापूर्वक विहार करते हैं और

उन्हींमेंसे किसी एकको चुनकर अपनी पत्नी बना लेते हैं। यदि एकसे न बनी तो दूसरीकी तरफ झुक पड़े और यदि उससे भी काम न निकला तो किसी औरको ढूँढ़ निकाला। युवतियोंकी भी प्रायः यही दशा हुआ करती है। इस हेरा फेरीका बुरा चसका उन्हें आरम्भसे ही लग जाता है, जिसके कारण उनका सारा शेष जीवन प्रायः दुःखमय हो जाता है और भटके कबूतरकी तरह एक छतरीपरसे दूसरी छतरीपर बैठनेमें ही बीत जाता है। युवावस्थामें न तो सांसारिक बातोंका ज्ञान होता है और न अनुभव। उस समय केवल आवेशकी ही प्रबलता रहती है जिसके कारण कुल और शील, ऊँच और नीच, अच्छे और बुरेका ध्यान भी प्रायः छूट जाता है और जो काम केवल आवेशमें आकर किया जाता है उसका परिणाम कभी अच्छा नहीं होता। जिन देशोंमें यह कुप्रथा है वहाँकी स्त्रियों और पुरुषोंका जीवन बहुत ही कष्टमय होता है। उनके इस कष्टका मुख्य कारण उनका स्वेच्छाचार हुआ करता है। ऐसे पुरुष न तो पत्नीव्रती हो सकते हैं और न स्त्रियाँ पतिव्रता। सुनते हैं, युरोप और अमेरिका आदि देशोंमें पुरुषोंको अनेक प्रकारसे रिझानेकी विद्या भी स्त्रियाँ सीखती हैं। गाना, बजाना, नाचना, झूठा प्रेम दिखलाना, तरह तरहके बाल बनाना और हाव भाव आदि इसी विद्याके अंतर्गत हैं। इतना होने पर भी प्रायः ऐसा अवसर आ जाता है जब कि युवतियोंको पति ही नहीं मिलते अथवा मिले हुए पति छूट जाते हैं। उस समय उन्हें अपने जीवनका निर्वाह करनेके लिए किसी दफ्तरमें काम करना पड़ता है, बच्चोंको खिला-नेकी नौकरी करनी पड़ती है, होटलें खोलना पड़ती हैं, या अन्तमें वेश्यावृत्ति स्वीकार करनी पड़ती है। पुरुषोंको भी अनेक प्रकारकी कठि-नाइयाँ सहनी पड़ती हैं, पर उनकी कठिनाइयाँ अपेक्षाकृत कम हुआ करती हैं। ऐसे लोगोंके संसर्गसे दूसरी जातियोंमें भी यह दोष फैलता है। दूसरी जातिके लोग इस कुप्रथाके भीतरी दोषों और बुरे परिणामोंसे तो परिचित नहीं होते; पर स्वतंत्रता और स्वेच्छाचारिताके अभिलाषी होनेके कारण उसे ग्रहण करने लग जाते हैं। पर जिन पाश्चात्य जातियोंने इस प्रथाका

आरम्भ किया है वे ही अब इसके दोष समझने लग गई हैं और उन्हें दूर करनेके प्रयत्नमें भी लगी हैं। इससे आशा होती है कि यह रोग अब दूसरी जातियोंमें उतनी भयंकरतासे न फैलेगा।

यह बात बड़े बड़े विद्वान् और बुद्धिमान स्वीकार कर चुके हैं कि स्वेच्छासे किये हुए विवाहकी अपेक्षा वह विवाह कहीं अधिक सुखकर होता है जो माता पिता कर देते हैं और इस दृष्टिसे हमारे हिन्दुओंकी विवाहप्रथा बहुत अच्छी है। पर अविद्या और अज्ञानके कारण उसमें भी अनेक दोष उत्पन्न हो गये हैं। बालकों और बालिकाओं, अथवा युवकों और युवतियोंमें स्वेच्छाचारिताका भाव उत्पन्न होनेसे पहले ही उनका विवाह कर देना प्रायः दम्पतिमें प्रेम-भाव ही उत्पन्न करता है। पर दुर्भाग्यवश बीचमें ही और और दोष उत्पन्न हो जाते हैं। चार दोस्तोंकी सोहबतमें पड़कर लड़के बिगड़ जाते हैं और घरकी स्त्रियोंकी अज्ञानताके कारण बहुएँ चिड़चिड़ी, कलहिनी, लड़ाकी और दुःशीला हो जाती हैं। बहुतसे घरोंमें तो माता जानबूझकर अपने पुत्रको उसकी स्त्रीके विरुद्ध भड़काती रहती है। वह समझती है कि यदि मेरे पुत्र और पुत्र-वधूमें बनने लग गई तो फिर पुत्र मुझे न पूछेगा, घरमें मेरा बड़प्पन और अधिकार कम हो जायगा। यदि सास सीधी हुई और बहू कुछ तेज हुई तो वह अपने पतिसे सासको तरह तरहके दुःख दिलवाती है। घरमें यदि कोई विधवा ननद हुई तो फिर दिनरातके लड़ाई—झगड़ेका क्या पूछना है? देवरानी जेठानीके लड़ाई—झगड़ेके कारण एक ही माता—पितासे उत्पन्न हजारों—लाखों भाई एक दूसरेसे अलग हो गये और उनमेंसे बहुतेरे एक दूसरेके लहूके प्यासे भी बन गये। इन्हीं सब दोषोंको दूर करनेके लिए स्त्रियोंको थोड़ा बहुत पढ़ाकर गृहप्रबन्धकी शिक्षा देना बहुत ही आवश्यक है। घरके सब लोग जबतक नीति—पथ पर न चलें तबतक संसारकी अच्छीसे अच्छी प्रथामें भी सुख नहीं मिल सकता। घरके और सब लोगोंका तो यह कर्त्तव्य है ही कि गृहस्थीमें खूब मिल जुलकर रहें और किसी प्रकारका विवाद न उत्पन्न होने दें। पर जस्टिस

रानडेके कथनानुसार घरका सब काम चलानेवाले प्रधान पुरुषका यह मुख्य कर्त्तव्य है कि घरके किसी आदमीको कभी किसी प्रकार असन्तुष्ट न होने दे; सब लोगोंको उनके पद और मर्य्यादाके अनुकूल दशामें रक्खे और घरके लोगोंमें किसी प्रकारका असन्तोष न उत्पन्न होने दे और यदि वह ऐसा करनेमें असमर्थ हो तो समझ लेना चाहिए कि वह अयोग्य और अकर्मण्य है।

हम ऊपर यह बतला चुके हैं कि बालकोंपर माताका कितना और कैसा प्रभाव पड़ता है। माता अपनी सन्तानको जन्म देकर उसके भावी जीवनके सुख-दुःख और नैतिक आचरणका बीजारोपण कर देती है। जान बूझकर अथवा अनजानमें ही वह अपनी सन्तानको जो मार्ग दिखला देती है, उसीपर वह बराबर चलती रहती है। केवल सन्तान-पर माताका ही यह प्रभाव नहीं होता, बल्कि बहुतसे अंशोंमें पुरुष-मात्र-पर किसी न किसी रूप और अवस्थामें स्त्रीका प्रभाव सदा पड़ता रहता है। बाल्यावस्थासे निकलकर विवाह होने और युवावस्थामें आने पर पुरुष-जातिपर स्त्री-जातिका प्रभाव प्रायः पत्नी रूपमें पड़ने लगता है। यह सम्बंध अधिक दिनों तक रहता है, इसी लिए अन्य धर्म्मो या सम्बधोंकी अपेक्षा दाम्पत्यधर्म्म या संबंध अधिक महत्त्वपूर्ण और कठिन है।

पुरुषों और स्त्रियोंके कर्त्तव्योंकी बहुत कुछ मीमांसा स्वयं प्रकृतिने ही कर दी है। स्त्री और पुरुषका इतना घनिष्ट सम्बन्ध होने पर भी दोनोंका कर्त्तव्य-क्षेत्र एक दूसरेसे बिलकुल अलग है। पुरुषोंके कर्त्त-व्योंका पालन स्त्रियाँ नहीं कर सकतीं और स्त्रियोंके कर्त्तव्योंका पालन पुरुष नहीं कर सकते। और यदि बलपूर्वक इनमेंसे कोई दूसरेके कर्त्त-व्योंका थोड़ा बहुत पालन आरम्भ भी कर दे तो परम दुःख और क्लेशकी सृष्टि होने लगती है। पुरुषोंका शारीरिक संगठन बहुत दृढ होता है और उनकी मानसिक शक्ति बहुत होती है। इसी लिए धनो-पार्जन तथा दूसरे परिश्रमसाध्य कार्य्य पुरुष ही करते हैं। स्त्रियाँ कोमलांगी होतीं हैं, पर उनमें हार्दिक बल अधिक होता है। और इसी

लिए वे ऐसे कामोंके लिए उपयुक्त होती हैं जिनमें शारीरिक परिश्रम बहुत ही कम हो, पर हार्दिक गुणों—प्रेम, करुणा, दया आदि—की अधिक आवश्यकता हो। घरका प्रबन्ध, बाल-बच्चोंका पालन, अतिथि-सत्कार, रोगियोंकी सेवा शुश्रूषा आदि ऐसे ही कार्य हैं। पर साथ ही इस बातकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता है कि पुरुषोंके हार्दिक गुणोंकी वृद्धि की जाय। क्रूर और निर्दय पुरुष उतना ही त्याज्य और निन्दनीय समझा जायगा जितनी त्याज्य और निन्दनीय कूढ़ और फूहर स्त्री होती है। लज्जा, विनय, सरलता, प्रेम, उदारता; सहानुभूति, दया आदि सुन्दर बातोंके कारण स्त्री पूर्णताको प्राप्त होती है और अध्यवसाय, परिश्रम, दृढ़ निश्चय, निर्भीकता आदि गुणोंके कारण पुरुष पूर्णत्व प्राप्त करता है। और पूर्ण स्त्री तथा पूर्ण पुरुषके संयोगसे—जिसे विवाह कहते हैं—दाम्पत्य सम्बन्ध और धर्म्मकी सृष्टि होती है।

विवाहको संसारके सुधारका मूल कहना चाहिए। संसारके अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा जहाँ मनुष्य ज्ञान और भाषण-शक्तिमें बढ़ा हुआ है वहाँ वह विवाह-प्रथाके कारण भी श्रेष्ठ है। यदि मानव-जातिमें विवाहकी प्रथा न होती तो वह भी अन्य पशुओंकी तरह जंगली, हिंसक और अज्ञानी ही रहता। विवाहके कारण ही मनुष्यमें सब गुणोंका आविर्भाव और विकाश हुआ है। विवाह-सम्बन्धके कारण ही मनुष्यको गम्यागम्य, भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय, वाच्यावाच्य और कर्त्तव्याकर्त्तव्य आदिका ज्ञान हुआ, उसीके कारण, सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्तिके लिए उसे अनेक प्रकारके उद्योग और कार्य करने पड़े, और उसीके कारण ज्ञानकी वृद्धिके साथ साथ उसने अनेक प्रकारके शास्त्रों और कलाओंका आविष्कार किया। इसी कारण प्रायः सभी धर्म्मोंके और देशोंके विद्वानोंने इस सम्बन्धको परम पवित्र और परम कर्त्तव्य सम्बन्ध माना और उसे अनिवार्य्य धार्मिक रूप दिया है। एक-विवाह, बहुविवाह, कन्यादान, स्वयंवर, पातिव्रत, विधवा-विवाह आदि आदि प्रथायें सब लोगोंने अपने अपने सुभीतेके अनुसार बना ली हैं; पर सबका उद्देश्य और मूल स्वरूप एक ही है।

ऐसे महत्त्वपूर्ण और स्थायी सम्बन्धके लिए यह बात बहुत ही आवश्यक है कि जिन वर और वधूमें यह सम्बन्ध होता हो उनकी अवस्था, स्थिति, रूप, स्वभाव, प्रवृत्ति, योग्यता आदि आदि बातें एक दूसरेसे बहुत मिलती जुलती हों; और इन बातोंका पूरा पूरा विचार मातापिता ही कर सकते हैं, स्वयं वर और वधू नहीं। अपने पुत्र या कन्याके विवाहको माता-पिता यदि अपने आह्लाद और मनोविनोदकी सामग्री समझ बैठें अथवा वर और वधू अपने विवाहको केवल पाशविक वृत्तियोंको चरितार्थ करनेका साधन समझ लें, तो यह सम्बन्ध बहुत ही दुःखदायी और हानिकारक हो जाता है। पर जो विवाह-सम्बन्ध माता-पिता उसका सब ऊँच नीच देखकर करते हैं और जिसमें वर-वधूको उसके उद्देश्य, महत्त्व और उत्तरदायित्वका यथेष्ट ज्ञान होता है वही विवाह, परम सुखकर होता है। विवाहके महत्त्व और उत्तरदायित्वका ज्ञान प्रायः विवाहके कुछ पहले अथवा उसके उपरान्त शीघ्र ही हो जाना चहिए और विवाह भी उसी अवस्थामें होना चाहिए जब कि वर और वधू विवाहके महत्त्व और उत्तरदायित्वका ज्ञान भली भाँति प्राप्त कर लें अथवा कर सकें।

विवाहकी आवश्यकता केवल प्रजोत्पादन या पाशविक वृत्तियोंको चरितार्थ करनेके लिए ही नहीं है, बल्कि सदाचारके स्थापन और संसारकी सुख-वृद्धिके लिए भी वह बहुत आवश्यक है। यदि पति और पत्नीमें पूर्ण प्रेम हो तो इसमें सन्देह नहीं कि दोनों ही सदा सदाचारी बने रहेंगे। विद्या, धन, कीर्त्ति आदि तो मनुष्य स्वयं ही बहुत कुछ परिश्रम करके प्राप्त कर सकता है, परंतु गार्हस्थ्य जीवनको सुखपूर्ण बनाना बहुतसे अंशोंमें स्त्रियोंके ही अधिकारमें है। जिस समय मनुष्य दिनभर कठिन परिश्रम करके सन्ध्या समय घर पहुँचता है उस समय उसका सारा कष्ट भुलाने और उसका चित्त प्रफुल्लित करनेमें स्त्रीकी प्रेम भरी दो चार बातें जितनी समर्थ होती हैं, उतनी और कोई चीज समर्थ नहीं होती। स्त्रीसे बढ़कर उत्तम मित्र और कोई नहीं है। हमारे दुःखमें वह केवल यथार्थ सहानुभूति ही नहीं रखती बल्कि बहुतसे अंशोंमें उसे

बँटाकर हमारा बोझ हलका करती है। कठिन समय पर वही हमें सबसे अधिक सम्मति और सहारा देती है और हमें कर्त्तव्य बतलाती है। विद्वानोंका मत है कि मनुष्यके समस्त सांसारिक सुख स्त्रीके अच्छे होने पर ही निर्भर करते हैं। यदि स्त्री सुशीला हो तो मनुष्यको बड़ेसे बड़े संकट भी तुच्छ मालूम होते हैं और यदि स्त्री दुःशीला हो तो बहुत बहुत अधिक ऐश्वर्य भी उसे सुखी नहीं बना सकता।

बहुतसे लोग समझते हैं कि ईश्वरने स्त्रियोंको केवल पुरुषोंके सुखके लिए ही उत्पन्न किया है और पुरुष उसका मनमाना उपयोग कर सकता है। इसी लिए वे उसके सुखका तनिक भी ध्यान नहीं रखते। पर ऐसा समझना बड़ी भारी भूल है। स्त्रीको अर्द्धांगिनी कहते हैं, अतः उसके सुख आदिका हमें ठीक उतना ही ध्यान रखना चाहिए जितना हम स्वयं अपने सुखका रखते हैं। इसी लिए भगवान् मनुने स्पष्ट कह दिया है कि जो लोग अपना कल्याण चाहते हों उन्हें सदा स्त्रियोंका मान रखना चाहिए और कभी उन्हें असन्तुष्ट न होने देना चाहिए। जिस घरमें स्त्रियोंको दुःख रहता है, वह शीघ्र नष्ट हो जाता है और जहाँ उन्हें किसी प्रकारका क्लेश नहीं वहाँ सब प्रकारका सुख और वैभव आपसे आप आ पहुँचता है। जिस घरमें स्त्रियाँ अपमानित होकर असंतुष्ट होतीं और उस घरका अहित चाहती हैं, वह घर अवश्य नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त संतानको उत्तम बनानेके लिए भी स्त्रियोंको सब प्रकारसे सुखी और संतुष्ट रखना परम अवश्यक है। स्त्री घरकी लक्ष्मी कही जाती है; उसे असंतुष्ट या पीड़ित रखना कभी कल्याणकारक नहीं हो सकता।

पति और पत्नीको सदा परस्पर ऐसा व्यवहार रखना चाहिए जिसमें दोनोंके सुखकी वृद्धि हो। उन्हें सदा वही काम करने चाहिएँ, जिनके कारण किसी प्रकारका असंतोष या दुःख उत्पन्न न हो सके। फ्रांसमें डिटाक्वेल नामका एक बहुत बड़ा विद्वान् हो गया है। वह कहा करता था कि संसारमें मनुष्यके लिए सुशीला और सदाचारिणी स्त्रीसे बढ़कर और कोई आधार ही नहीं है। बहुतसे साधारण मनुष्य भी

योगसे बहुत सुयोग्य बन गये हैं । स्वयं ग्लैडस्टनकी स्त्री बहुत सुशील और सुयोग्य थी। ज्यों ज्यों उसका सांसारिक अनुभव बढ़ता गया त्यों त्यों उसका यह विश्वास दृढ होता गया कि सद्गुणों और सदाचारकी वृद्धिके लिए गार्हस्थ्य जीवनका सुखपूर्ण होना सबसे अधिक आवश्यक है। एक स्थानपर उसने अपने सम्बन्धमें लिखा है— "मुझे सुखके अनेक प्रकारके साधन प्राप्त हुए, लेकिन मैं ईश्वरका सबसे अधिक कृतज्ञ अपने गार्हस्थ्य सुखके लिए ही हूँ । युवावस्थामें मुझे अपना जो जीवन बुरा जान पड़ता था वही अब बहुत अच्छा जान पड़ता है । अब यदि मेरा सर्वस्व भी नष्ट हो जाय तो भी गार्हस्थ्य सुखके रहते हुए मुझे उसका कोई दुःख न होगा।" डिटाक्वेलके समयमें ही फ्रांसमें राज्यक्रान्ति हुई थी। इस लिए उसे कई बार बड़े बड़े संकटोंमें फँसना पड़ा था। पर केवल अपने गार्हस्थ्य सुखके कारण ही उसने सब संकट शांतिपूर्वक सहे थे। एक बार उसने अपने एक मित्रको लिखा था—"ईश्वरने मुझे जितने सुख दिये हैं उनमेंसे सबसे बडा सुख यही है कि मेरी स्त्री बहुत भली है । बड़े बड़े संकटोंमें मुझे उससे जितनी सहायता मिलती है, तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। वह बहुत ही सौम्य है और विकट प्रसंग आ पड़ने पर उसमें विलक्षण धैर्य्य और साहस आ जाता है। जब संकट पड़ने पर मैं घबरा जाता हूँ तब वह शांत रह कर मुझे समझाती बुझाती और धैर्य्य दिलाती है।" अपने एक दूसरे मित्रको उसने एक बार लिखा था—"अतिशय शुद्ध मनवाली और सुशिक्षिता स्त्रीके साथ बहुत दिनों तक रहनेमें मुझे जो सुख प्राप्त हुआ है उसका वर्णन नहीं हो सकता । जिस समय मैं कोई अच्छा काम करता अथवा अच्छी बात कहता हूँ उस समय उसका चेहरा प्रसन्नताके कारण चमक उठता है। यह देखकर मुझे और भी आनंद होता है। और जो बात मुझे बुरी मालूम होती है उसे देखकर उसका चेहरा भी उतर जाता है। × × × × × यदि मैं इसी प्रकार उसके साथ प्रेम करता रहा तो मुझे विश्वास है कि मुझसे कभी कोई बुरा काम न हो सकेगा।"

जब डिटाक्वेलकी सरकारी नौकरी छूट गई तब वह ग्रन्थ लिखने लगा। फ्रांसकी राजक्रांतिके सम्बन्धमें उसने एक बहुत अच्छा ग्रन्थ लिखा है। उसे लिखते समय उसने लिखा था–"लगातार पाँच छः घण्टे तक लिखते रहनेके उपरांत मेरा हाथ नहीं चलता। उस समय मुझे बहुत विश्राम और शांतिकी आवश्यकता होती है। किसी ग्रंथका अन्तिम भाग लिखते समय लेखकको जो अड़चनें होती हैं यदि तुम उनका अनुमान करो तो तुम्हें उसका जीवन बहुत ही बुरा जान पड़ेगा। मेरी स्त्री मुझे शांत और उत्साहित करती रहती है, इसीसे मैं ग्रन्थ भी लिख सकता हूँ, नहीं तो मुझसे कुछ भी न होता।"

फ्रांसमें गिजो नामका एक और बहुत बड़ा विद्वान् हो गया है। उसपर भी बड़ी बड़ी विपत्तियाँ आईं पर केवल गार्हस्थ्य सुखके कारण ही वह सदा प्रसन्न और संतुष्ट रहा। उसने एक स्थानपर लिखा है–"परिवारके प्रेमके कारण ही बड़े बड़े कामोंमें हाथ डाला जाता है। यदि स्त्री और मित्रका सुख न हो तो बहुत अधिक प्रतिष्ठा पाने पर भी मनुष्य वास्तवमें सुखी नहीं हो सकता।" विवाहसे पहले उसने अपनी भावी पत्नीसे पूछा था कि "यदि आगे चलकर मेरी स्थिति बिगड़ गई तो तुम दुःखी होगी या नहीं?" इसपर उसने उत्तर दिया–"यदि तुम अच्छी दशामें रहे तो मुझे बहुत अधिक आनंद होगा, पर यदि तुम्हारी दशा खराब हो गई तो मैं कभी कोई शिकायत नहीं करूँगी।" जब गिजो राजा लुई फिलिपका प्रधान अमात्य हो गया तब उसकी स्त्रीने लिखा था–"यद्यपि पतिके साथ आजकल मेरी यथेष्ट भेंट नहीं होती तथापि यह बात नहीं है कि मेरी उनकी बिलकुल ही भेंट न होती हो। जब तक हम दोनों जीवित रहेंगे तब तक चाहे जितने संकट पड़ें मैं सदा अपने आपको परम सुखी ही मानूँगी।"

इँग्लैण्डका प्रसिद्ध वक्ता एडमंड बर्क भी गार्हस्थ्य जीवनकी दृष्टिसे बहुत ही भाग्यवान् था। उसकी स्त्री बहुत ही सुंदरी और सुशीला थी। बर्क जब राजकार्य्यकी झंझटोंसे त्रस्त होकर घर पहुँचता तब अपनी

स्त्रीको देखते ही वह प्रसन्न और सुखी हो जाता था। वह कहा करता था—“ घरमें पैर रखते ही मेरी सारी चिन्तायें दूर हो जाती हैं।” मार्टिन लूथर कहा करता था—“ ईश्वरसे प्राप्त होनेवाले समस्त सुखोंमें सुशीला और सदाचारिणी स्त्री मिलना ही श्रेष्ठ है। सुख और शांति ऐसी स्त्रीसे ही मिलती है। ऐसी स्त्रीको अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि प्राण भी अर्पित कर देना चाहिए।”

इँग्लैण्डमें सर विलियम हैमिल्टन नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् हो गया है। उसे बहुत योग्य स्त्री मिली थी जिसके कारण उसे बहुत लाभ हुआ था। छप्पन वर्षकी अवस्थामें हैमिल्टनको अर्द्धांगरोग हो गया। उस समय उसने अपनी स्त्रीकी सहायतासे ऐसे उत्तम उत्तम ग्रन्थ लिखे जिनके कारण उसकी कीर्ति सारे युरोपमें फैल गई। उसकी स्त्री उसे ग्रंथ पढ़कर सुनाती थी और उनमेंसे प्रमाण ढूँढ़ निकालती थी, उसके विचार शुद्धतापूर्वक लिख देती थी और उसके व्याख्यानोंकी प्रतिलिपि तैयार कर देती थी। जिन व्याख्यानोंके कारण हैमिल्टनकी गणना युरोपके उत्तम तत्त्ववेत्ताओंमें हुई, उनके तैयार करनेमें बहुत बड़ी सहायता उसकी स्त्रीने ही दी थी। हैमिल्टन बुद्धिमान तो था, पर उसका चित्त अव्यवस्थित था। इस लिए उसकी स्त्री उसके सब कार्य्योंकी ठीक व्यवस्था कर देती थी, बल्कि यों कहना चाहिए कि उससे उचित रूपसे कार्य्य कराती थी। हैमिल्टन कुछ आलसी था पर उसकी स्त्री बड़ी उद्योगशीला थी। तात्पर्य यह कि हैमिल्टनमें जिन गुणोंका अभाव था वे गुण उसकी स्त्रीमें उपस्थित थे। उसीके धैर्य्य और उद्योगके कारण हैमिल्टनकी बुद्धिका उदय हुआ था।

युरोपके जनेवा नगरका ह्यूबर नामक प्रसिद्ध सृष्टिशास्त्रवेत्ता सत्रह वर्षकी अवस्थामें ही अन्धा हो गया था। वह अपनी आँखोंके नष्ट हो जानेके कारण जब बहुत दुःखी हुआ तब उसकी स्त्रीने उसे शास्त्रोंका अध्ययन करनेके लिए उत्तेजित किया। अपनी उसी स्त्रीकी सहायतासे उसने सृष्टिशास्त्रके एक ऐसे अंगका अध्ययन किया था जिसके लिए बहुत ही

तीव्र दृष्टिकी आवश्यकता होती है। अपनी स्त्रीसे उसे इतनी अधिक सहायता मिली थी कि वृद्धावस्थामें वह प्रायः कहा करता था कि यदि मुझे फिरसे दिखाई देने लगे तो मैं बहुत दुःखी होऊँगा। उसने मक्खियोंपर एक बहुत अच्छा ग्रन्थ लिखा है। वह ग्रन्थ उसके अंधे होनेके पच्चीस वर्ष बाद लिखा गया था। उसमें मक्खियोंकी उत्पत्ति और स्वभाव आदिके सम्बन्धमें इतनी सूक्ष्म और उत्तम बातें लिखी हुई हैं जिन्हें पढ़कर यही जान पड़ता है कि इसका लेखक बहुत ही तीव्र दृष्टिवाला मनुष्य था।

बहुतसी स्त्रियाँ ऐसी हो गई हैं जिन्होंने अपने पतिको बड़े बड़े संकटोंसे छुड़ाया है। पंजाब प्रांतके नूरपुर नगरके सूरजदेवकी स्त्री नीलदेवी ऐसी ही स्त्रियोंमेंसे थी। एक बार अब्दुल शरीफखाँ नामक एक सूबेदारने आकर नूरपुरके आसपासके प्रांतोंमें बहुत अत्याचार करना और उपद्रव मचाना आरम्भ किया। इसपर स्त्रीकी सम्मतिसे ठाकुर सूरजदेव अपने थोड़ेसे साथियोंको लेकर अब्दुल शरीफसे लड़ने निकले। कई मास तक सूरजदेव और उनके साथियोंने अब्दुल शरीफ और उसके सिपाहियोंको बहुत तंग किया। पर अंतमें शत्रुने सूरजदेवको पकड़ लिया और लोहेके एक पिंजरेमें कैद कर दिया। अब्दुल शरीफने देखा कि सूरजदेव तो अब कैद ही हो गये, अब मुझसे कोई लड़ने न आवेगा। इस लिए उसने उस दिन अपने सिपाहियोंको खूब आनंद मनाने और शराब पीनेकी आज्ञा दे दी और स्वयं भी बहुत बड़ा जशन किया। उसने आसपासके गाँवोंसे बहुतसी कंचनियाँ बुलवाईं और जशन होने लगा। महफिलके पास ही वह पिंजड़ा भी रक्खा हुआ था जिसमें सूरजदेव बंद थे। शरीफने सोचा कि जब सब लोग शराब पीकर मस्त होंगे तब मैं कंचनियोंसे सूरजदेवको जूते लगवाऊँगा। उस जलसेकी खबर पाकर नीलदेवीको अपने पतिके छुटकारेका एक बहुत अच्छा उपाय सूझा। उसने स्वयं कंचनीका रूप बनाया और सफ़रदाइयोंके स्थानमें सात वीर क्षत्री लिये। सबको साथ लेकर वह अब्दुल शरीफके जलसेमें पहुँची। उसे देखकर शरीफ बहुत प्रसन्न हुआ और उसे पीनेके लिए शराब देने लगा। पर उसने कहा

कि हुजूर, मैं पहले ही शराब पीकर आई हूँ। ज्यादा पीनेसे गानेका मजा बिगड़ जायगा। शरीफ भी उसकी बातोंमें आ गया और स्वयं शराब पीने लगा। नीलदेवीने पहले तो कई चीजें गाईं और हाव भाव दिखलाकर शरीफको खूब रिझाया और जब वह नशेमें बदमस्त होकर उसे अपने पास बुलाने लगा तब उसने आगे बढ़कर उसकी छातीमें कटार भोंक दी। सफरदाइयोंने भी तबला सारंगी पटककर कमरसे कटारियाँ निकाल लीं और बहुतसे सिपाहियों और सरदारोंको मारा और घायल किया। इसके बाद नीलदेवीने पिंजड़ेसे अपने पतिको निकाला और उसके साथ यवनोंको मारती काटती घरकी ओर चली। रास्तेमें एक सिपाहीने सूरजदेवका सिर धड़से अलग कर दिया। नीलदेवीने झपटकर पतिका सिर जमीन परसे उठा लिया और वह एक घोड़ेपर सवार होकर अपने घर पहुँची। वहाँ उसने एक चिता बनाई और उसी सिरको साथ लेकर वह सती हो गई। उसने एक बार तो अपने कर्त्तव्यका पालन कर ही दिया और अपने पतिको शत्रुकी कैदसे छुड़ा ही लिया, चाहे अंतमें वह उसके प्राणोंकी रक्षा न भी कर सकी हो।

बुलंदशहर जिलेमें मोहनपुर नामका एक गाँव है। कुछ दिन हुए वहाँ रामनाथ नामक एक रघुवंशी ठाकुर रहते थे। उनकी स्त्री कमला बड़ी ही सुन्दरी थी। उसके रूप तथा गुणकी चारों ओर धूम मची हुई थी। उसी कमलाको प्राप्त करनेकी इच्छासे मेरठका हाकिम एक नवाब अपने सूबेमें दौरा करने निकला और घूमता फिरता मोहनपुर पहुँचा। वहाँ उसने एक दरबार किया जिसमें आसपासके सभी ठाकुर और जमींदार आये। सन्ध्याके समय दरबार बरखास्त हुआ। और सब लोग तो चले गये पर रामनाथको नवाबने बातों ही बातोंमें आधी रात तक अपने पास रोक रक्खा और अंतमें उसे कैद कर उसपर कमलाके गानेकी अपनी इच्छा प्रकट की। यही नहीं बल्कि भोर होते होते उसने अपने दस सिपाहियोंके साथ रामनाथको हथकड़ी बेड़ी पहनाकर अपनी स्त्रीको साथ लानेके लिए घर भेजा। जब रामनाथ उस दुर्दशासे घर पहुँचे तब

कमलाको बड़ा आश्चर्य हुआ। रामनाथने सब बातें उससे कह सुनाईं। कमलाने देखा कि बड़ा विकट प्रसंग आया है। इस लिए वह अपने कपड़ोंमें एक कटार छिपाकर अपने पति और उन सिपाहियोंके संग चल पड़ी। खेमेमें पहुँचनेपर नवाबने आगे बढ़कर उसे अपनी ओर खींचना चाहा, इतनेमें उसने झपट कर नवाबको जमीनपर पटक दिया और उसकी छातीपर बैठकर कहा—"या तो तू इस बातकी प्रतिज्ञा कर कि आगेसे कभी तू किसी हिन्दू रमणीपर कुदृष्टि न डालेगा, और नहीं तो अभी यह कटार तेरे कलेजेके पार होती है।" उस समय नवाबसे हाँथ जोड़कर क्षमा माँगने और उसके कथनानुसार शपथ खाकर प्रतिज्ञा करनेके अतिरिक्त और कुछ भी न बन पड़ा। कमला अपने पतिको साथ लेकर सकुशल घर लौट गई।

उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें भूपालके जंगलमें एक छोटेसे गाँवमें एक वीर राजपूत अपनी स्त्री, एक पुत्र और एक कन्याके साथ रहा करता था। पुत्रका नाम जोरावरसिंह था और कन्याका नाम पद्मा था। समय पाकर राजपूत और उसकी स्त्री दोनोंका देहांत हो गया। उस समय जोरावरसिंहकी अवस्था सोलह वर्षकी और पद्माकी अवस्था केवल ढाई वर्षकी थी। राजपूत बहुत दरिद्र था और उसके पास कोई सम्पत्ति नहीं थी। अतः उसकी मृत्युके उपरान्त बालक जोरावरसिंहपर कुछ ऋण हो गया जो लगातार कई वर्षों तक बराबर बढ़ता गया। जब एक बनियेको बहुत दिनोंतक अपने रुपये न मिले तब उसने जाकर भूपालके दरबारमें फरियाद की और जोरावरसिंहको कैद करा दिया। उस समय पद्माकी अवस्था पन्द्रह सोलह वर्षकी थी, पर तब तक धनाभावके कारण उसका कहीं विवाह न हो सका था। उस समय पद्मा बिलकुल अकेली पड़ गई, संसारमें कोई उसका रक्षक या पालक न रह गया। जिस भाईने इतने दिनों तक बड़े प्रेमसे उसे पाला था, उसे कैदमें सुनकर फिर वह बहुत ही आकुल हुई। पर बिना बनियेका ऋण चुकाये भाईकी मुक्ति नहीं हो सकती, इस लिए धनसंग्रह करनेके विचारसे उसने मरदाना

बनाकर सेंधियाकी फौजमें नौकरी कर ली। उस समय सेंधिया सरकार और अँगरेजोंमें झगड़ा चल रहा था, जिसके कारण पन्नाको तीन वर्ष तक बराबर लड़ना पड़ा। इस बीचमें वह कई बार घायल भी हुई, पर उसने किसीको अपनी थाह न दी। सारी कठिनाइयाँ वह बहुत ही धैर्य्यपूर्वक झेलती रही। एक दिन जब वह एकान्तमें किसी जलाशयमें नहा रही थी, तब उसके साथी एक सिपाहीने उसे देख लिया और उसका सारा भेद अपने अफसरसे जाकर कह दिया। अफसरने पद्मसिंह (पन्ना) को अपने पास बुलाकर प्रेमपूर्वक उससे सब हाल पूछा। पन्नाने भी जब देखा कि सब भेद खुल गया तब उसने अफसरसे अपनी सारी वास्तविक दशा कह सुनाई। अफसरने महाराज दौलतरावजी सेंधियासे सिफारिश करके जोरावरसिंहको छुड़वा दिया और वहीं ड्योढ़ीपर रखा दिया। पन्नाको उसने कुछ समय तक अपने पास बेटीकी भाँति रक्खा और अंतमें एक सुयोग्य वरके साथ उसका विवाह भी कर दिया।

आजकल कामियों और दुराचारियोंने 'प्रेम' को कलंकितसा कर रक्खा है। पर प्रेम वास्तवमें स्वर्गीय पदार्थ है। वह मनुष्यको साहस और बल प्रदान करता है। उसका कर्त्तव्य दिखलाता है और उसमें समस्त अच्छे गुणोंकी सृष्टि करता है। मनुष्यके अन्तःकरणको शुद्ध और उन्नत करनेका सबसे अच्छा साधन प्रेम ही है। इसके अतिरिक्त विचार-शक्ति पर भी उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। वह मनुष्यको उच्चाकांक्षी और उदार बनाता है। एक विद्वानका मत है कि प्रेम ही मनुष्यका सबसे अच्छा और बड़ा शिक्षक है। बिना प्रेमके न तो पुरुषमें पुरुषत्व आता है और न स्त्रीमें स्त्रीत्व। दोनोंको पूर्ण बनानेके लिए यदि कुछ आवश्यक है तो वह प्रेम ही है। प्रेम देव मनुष्यको एक नये संसारमें पहुँचा देता है, उसे बिलकुल नया जीवन प्रदान करता है और इस प्रेमका प्रधान केन्द्र और उद्गमस्थान स्त्रीका हृदय है।

मनुष्यको सच्चरित्र, साधु, संपन्न और सुखी बननेमें जितनी अधिक सहायता सती-साध्वी स्त्री और उसके सच्चे स्नेहसे मिलती है, उतनी

किसी साधनसे नहीं मिलती। वह स्नेह चाहे स्त्रीका हो, चाहे माताका और चाहे कन्याका। एक बड़े विद्वानका मत है कि संसारमें आजतक कोई ऐसा महात्मा नहीं हुआ जिसे अपने जीवन-काल और कार्य्योंमें किसी साध्वी स्त्रीके सात्विक प्रेमसे सहायता न मिली हो। बड़े बड़े दुराचारियोंके जीवनमें भी ऐसे प्रेमसे बहुत सुधार होता देखा गया है। जीवनको सुधारनेके लिए स्त्रीके उपरान्त दूसरा नंबर घरमें बाल-बच्चोंका होता है। जिन दुराचारियोंका और किसी प्रकार सुधरना कठिन होता है, वे प्रायः घरमें सन्तान होने पर आपसे आप सुधर जाते हैं। गार्हस्थ्य जीवनका इतना माहात्म्य इन्हीं सब बातोंके कारण है।

इसके अतिरिक्त मनुष्यके वास्तविक आचार विचार और योग्यता आदिका पता उसके गार्हस्थ्य जीवनसे ही लगता है। सत्यता, प्रेम, सहानुभूति, उदारता, सहनशीलता यहाँ तक कि मनुष्यके समस्त गुणोंका विकाश गृहस्थीमें ही होता है। जिसके घरमें सब प्रकारकी शान्ति और सुख देखो, समझ लो कि वह बहुत ही सुयोग्य, सदाचारी और भाग्यवान् है और जिसके घरमें किसी प्रकारकी अशान्ति, असन्तोष या क्लेश देखो, समझ लो कि उसका आचरण ठीक नहीं है—उसकी योग्यतामें बहुत बड़ी त्रुटि है। गृहस्थी मानों मनुष्यकी योग्यता और सामर्थ्यकी कसौटी है। इस कसौटीपर कसे जाने पर जो पूरा न उतरे, वह वास्तविक अर्थमें कभी मनुष्य नहीं है।

गृहस्थीमें किसी प्रकारकी अशांति या असंतोष न उत्पन्न होने देना जितना अधिक कर्त्तव्य पुरुषका है, उससे कहीं अधिक वह कर्त्तव्य स्त्रीका है। यदि स्त्री चाहे तो घरको साफ सुथरा रखकर सब बातोंका ठीक ठीक प्रबन्ध कर सकती है और परिवारको स्वर्ग बना सकती है। इसी लिए लोग स्त्रीको 'घरकी लक्ष्मी' कहते हैं। जिस घरमें ऐसी लक्ष्मी स्त्री होती है, उस घरमें सब प्रकारके सुख आपसे आप आ जाते हैं। स्त्रियोंको लक्ष्मी बनानेके लिए कुछ तो आरम्भमें बाल्यावस्थाकी शिक्षा आवश्यक होती है और कुछ ससुराल पहुँचनेपर सास तथा पति

आदिकी। बहुतसे लोग कहा करते हैं कि–" विवाह करके हम बड़ी झंझटमें पड़ गये, कहाँकी आफत मोल ले ली। " ऐसे लोगोंको समझना चाहिए कि स्त्रियाँ स्वयं बहुत ही कम 'झंझट' या 'आफत' हुआ करती हैं, बहुधा घरके लोग उन्हें 'झंझट' या 'आफत' बना देते हैं। नई बहूके घर आने पर सास, ननद और पति आदिका उसके प्रति जो कर्तव्य होता है बिना उस कर्त्तव्यका पालन किये ही जो लोग अच्छा फल चाहते हैं वे बड़ी भूल करते हैं। अपने निराश या दुःखी होनेके कारण वे स्वयं हुआ करते हैं। वे एक अबोध बालिकाको सर्व-गुणसम्पन्न पानेकी आशा रखते हैं; पर अनुभवसे उन्हें उसमें अनेक दोष दिखाई पड़ते हैं। ऐसे लोगोंको सबसे पहले अपने दोपसे अवगत होना चाहिए और पहले वह दोष दूर करके तब कहीं स्त्रीसे अच्छी बातों और अच्छे कार्य्योंकी आशा रखनी चाहिए। जस्टिस महादेव गोविन्द रानडेकी दूसरी स्त्री श्रीमती रमाबाई रानडे बहुत ही छोटी थीं। वे देहातसे आई थीं और कुछ भी पढ़ी लिखी न थीं। पर रानडेने तुरन्त उनकी शिक्षा आदिका प्रबंध कर दिया। रमाबाईके संबंधमें एक बार एक अध्यापिकाने शिकायत भी की थी–" यह बिलकुल गँवार है; इसे पढ़ना लिखना कुछ भी न आवेगा। " पर उन्हीं रमाबाईने एक दूसरी अच्छी अध्यापिकासे पढ़कर दो ही वर्षमें पाँचवे दरजे तककी पढ़ाई समाप्त कर दी। नई स्त्रीके घरमें आने पर जो कर्त्तव्य आवश्यक होते हैं, रानडेने उन सबका भली भाँति पालन किया था; यही कारण है कि आजन्म उनके गार्हस्थ्य जीवनमें कभी किसी प्रकारका दोष नहीं उत्पन्न हुआ। यही नहीं बल्कि आज श्रीमती रमाबाई भारतकी आदर्श विदुषियोंमें अग्रगण्य मानी जाती हैं। आप अपने स्वर्गीय पतिकी कीर्त्तिका विस्तार अनेक उत्तम और प्रशंसनीय उपायोंसे कर रही हैं और रानडेके सहवाससे आपमें जो जो संस्कार हुए थे, उन सबसे आप इस समय देशको पूरा पूरा लाभ पहुँचा रही हैं।

साल दो साल बुरी संगतिमें रह कर ऐसे बिगड़ गये कि फिर उनके सुधरनेकी कोई आशा ही न रह गई।

बालकोंके विषयमें तो यह कहा ही जाता है कि वे अनुकरणप्रिय होते हैं, पर युवक और वृद्ध भी कुछ कम अनुकरणप्रिय नहीं होते। वे भी अपने संगी साथियोंको जो कुछ करते देखते हैं, स्वयं वही करने लग जाते हैं। बात यह है कि संगतिमें इतना भारी प्रभाव होता है कि वह दूसरोंके चरित्रके संगठनमें बिना सहायक हुए रह ही नहीं सकती। प्रत्येक मनुष्यपर उसके साथियोंके आचार-विचार, रहन-सहन और बातचीत आदिका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार हमारे शरीरका संगठन हमारे भोजनपर निर्भर है उसी प्रकार हमारे विचारों और व्यवहारों आदिका संगठन हमारी संगतिपर निर्भर है।

एक विद्वानने उदाहरण या आदर्शको ही मनुष्यका सबसे बड़ा शिक्षक बतलाया है और यह बात वास्तवमें बहुत ठीक है। संगतिका प्रभाव बिलकुल अनजानमें और अवश्यम्भावी होता है। बड़ोंका प्रभाव तो छोटोंपर पड़ता ही है, पर छोटे और दुर्बल प्रकृतिके लोगोंका भी औरोंपर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। यह प्रभाव केवल बालकों और युवकोंपर ही नहीं बल्कि वृद्धोंपर भी पड़ता हुआ देखा गया है। लोग दूसरोंकी देखादेखी कोई काम करने लग जाते हैं, और समय पाकर वही काम करना उनके अभ्यासमें परिणत हो जाता है और फिर इस अभ्यासके पंजेसे छूटना कुछ साधारण काम नहीं है। प्रसिद्ध विद्वान् प्लेटोने एक बार एक लड़केको झिड़का। उस लड़केने कहा—"आप तो बहुत छोटीसी बातके लिए मुझे डॉटते हैं।" इसपर प्लेटोने उत्तर दिया—"लेकिन आदत कोई छोटी बात नहीं है।"

आजकल लोग शिक्षाके महत्त्वका तो बहुत बखाना करते हैं लेकिन संगतिके महत्त्वपर बहुत ही कम ध्यान देते हैं। पर वास्तवमें संगतिका महत्त्व बहुधा शिक्षासे भी बढ़कर होता है। मिस्टर गोखले यदि जस्टिस रानडेकी सेवामें बहुत दिनों तक न रहे होते, तो इस बातमें

बहुत ही सन्देह किया जा सकता है कि केवल अपनी शिक्षाके बलपर ही वे इतनी अधिक देशसेवा करनेमें समर्थ होते । कहा जाता है कि खरबूजेको देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है । मनुष्योंके विषयमें भी यह बात बहुत ही ठीक घटती है।

प्रत्येक मनुष्य विचार या कार्य्य करनेमें परम स्वतंत्र होता है, और यदि वह अपनी इस स्वतंत्रताका ठीक उपयोग करे तो वह साथ करनेके लिए अच्छे मित्र चुन सकता है । पर प्रायः लोग अपनी दुर्बलताके कारण अपनी वह स्वतंत्रता खो देते हैं और संयोगसे उन्हें जो लोग सामने दिखलाई पड़ते हैं उन्हींमें वे मिल जाते हैं। यह बात भी बहुत ठीक है कि जो मनुष्य स्वयं जैसा होता है उसे साथी भी वैसे ही मिल जाते हैं। किसी सत्यनिष्ठका झूठे या चोरके साथ उठना बैठना नहीं हो सकता; पर यह बात मध्य या अंतिम जीवनमें ही विशेष रूपसे होती है। युवावस्थामें जब कि स्वभाव और प्रवृत्ति आदिका संगठन होता रहता है और युवकके हृदयपर किसी प्रकारका पूरा संस्कार पड़नेमें कुछ विलंब होता है, यह संगति प्रायः ' नदी नाव संयोग ' के सिद्धांत-पर ही हुआ करती है। युवक स्वतंत्रतापूर्वक लोगोंसे मिलने जुलने लगते हैं और अनुभव आदिके अभावके कारण बुरी संगतिमें फँस जाते हैं ।

तात्पर्य्य यह कि युवकोंके लिए मित्र और संगति चुनना बड़ा ही महत्त्व-पूर्ण और कठिन काम है । महत्त्वपूर्ण इस लिए कि इसीपर भविष्य निर्भर करता है और कठिन इस लिए कि यह काम ऐसे समयमें करना पड़ता है जब कि अनुभवका बिलकुल अभाव रहता है और संसारके ऊँच नीचका कुछ भी ज्ञान नहीं होता । यदि युवावस्थामें संतानपर माता-पिताका कुछ दबाव रहे और वह अपनी उत्तम प्रवृत्ति तथा शक्तिका सदुपयोग करे तो अवश्य ही उसे बहुत अच्छी संगति मिल जायगी। उस समय यदि युवक अच्छी संगतिमें पड़ गये तो उनमें सभी अच्छी बातें आ जायँगी और यदि उन्हें निकम्मे और आवारा साथी मिले तो वे भी वैसे हो जायँगे । बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जिन्हें देखते ही मनुष्यमें

प्रेम और श्रद्धा आदिकी जागृति होती है । ऐसे ही लोगोंकी संगति मनुष्यको अच्छे मार्गपर लगाती है । पर कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिन्हें देखते ही मनमें घृणा या बुरे भावोंका आविर्भाव होता है । ऐसे लोगोंकी संगतिसे मनुष्य गिर जाता है । हितोपदेशमें कहा है--

हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात् ।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ॥

अर्थात् छोटे लोगोंकी संगतिसे मनुष्यकी बुद्धि खराब हो जाती है, समान स्थितिके लोगोंके साथ रहनेसे समान रहती है और अच्छे लोगोंके साथ रहनेसे अच्छी हो जाती है । अतः जो लोग अपना सुधार और संसारमें उन्नति करना चाहते हों उनका सबसे पहला कर्त्तव्य यह है कि वे अच्छे लोगोंकी संगति करें और जो लोग उनसे अधिक विद्या, बुद्धि और गुणवाले हों उन्हींके साथ रहा करें । लेकिन अच्छे लोगोंकी केवल संगतिसे ही पूरा पूरा काम नहीं निकल सकता । उन अच्छे लोगोंकी सभी अच्छी बातोंका पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए और सदा उन्हींके अनुसार व्यवहार करनेका प्रयत्न करना चाहिए । बिना इसके सद्गुणोंका पूरा पूरा संचार संभव नहीं । इसमें संदेह नहीं कि सज्जनोंकी संगतिसे मनुष्यका सदा हित ही होता है; पर उससे पूरा लाभ उठानेके लिए हमें भी कुछ प्रयत्न करना चाहिए । श्रेष्ठ मनुष्योंके विचारोंकी सहायतासे हमारे विचार श्रेष्ठ होते हैं और उनके ज्ञानसे हमारा ज्ञान बढ़ता है । उनकी देखादेखी हम भी सदाचारी बने रहते हैं और बुरी बातोंसे हमारे मनमें घृणा उत्पन्न होती है । भर्तृहरिने कहा है—

जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

अर्थात् सत्संग बुद्धिकी जड़ता दूर करता है, सत्यमार्गी बनाता है,

मान बढ़ाता है, पाप दूर करता है, मन सन्तुष्ट करता है और कीर्त्ति बढ़ाता है। सत्संगति मनुष्यके लिए क्या नहीं करती?

कुछ लोग अच्छी या बुरी किसी प्रकारकी संगति करनेकी अपेक्षा किसीकी संगति न करना ही अच्छा समझते हैं। ऐसे लोगोंको न तो संसारका ज्ञान होता है और न उनमें गुणोंका संचार ही हो सकता है। आचार और विचारमें दृढ़ता तभी आती है जब मनुष्यको संसारका ऊँच-नीच देखना पड़ता है, ठोकरें खानी पड़ती हैं और विकट प्रसंगोंका सामना करना पड़ता है। एकांतवासियोंकी एक हानि यह भी होती है कि वे प्रायः दुःखी रहते हैं। चार आदमियोंके साथ रहनेसे मनुष्यका चित्त प्रसन्न रहता है और उसके सुखकी वृद्धि होती है। और यदि उसपर किसी प्रकारका दुःख आ पड़े तो वह चार आदमियोंके संग-साथके कारण बँटसा जाता है। पर एकांतवासी मनुष्य न तो संगतिका सुख प्राप्त करता है और न अपने दुःखका बोझ हलका कर सकता है।

सत्संगतिका शुभ-परिणाम जीवनकी किसी विशेष अवस्थामें ही नहीं पड़ता बल्कि उसका उपयोग सभी स्थितियोंमें होता है। यदि बाजारमें दो चार व्यापारी सच्चे और ईमानदार हों तो उनकी देखादेखी अथवा भय या लज्जासे ही दूसरे अनेक व्यापारी सच्चे और ईमानदार हो जाते हैं। यदि सरिश्तेमें दो चार आदमी घूस न खानेवाले हों, तो वहाँके और काम करनेवाले भी प्रायः घूस लेना छोड़ देंगे, और नहीं तो कम अवश्य कर देंगे। एककी देखादेखी दूसरेमें सद्गुण अवश्य बढ़ेंगे। इस कथनकी सत्यता प्रकट करनेवाले दृष्टान्त पुराणों और इतिहासोंमें भरे पड़े हैं।

एक विद्वानका मत है कि सत्संगति ही सदाचार सीखनेकी सबसे अच्छी पाठशाला है और सज्जनोंका चरित्र ही नीति-शास्त्रकी सबसे अच्छी पुस्तक है। महात्माओंके दर्शनमात्रसे ही मनुष्यके हृदयसे दूषित विचार दूर होने लगते हैं। किसी महापुरुष, साधु या सज्जनके सामने थोड़ी देर तक बैठिए, आपके विचार तुरन्त शुद्ध हो जायँगे, आपका मन प्रफुल्लित

हो जायगा और आपमें मानों एक नये बलका संचार हो जायगा। कमरोंमें बड़े लोगोंके चित्र टाँगनेका मुख्य हेतु यही है कि उनके दर्शन और स्मरणमात्रसे ही मनुष्यकी प्रवृत्ति सत्कार्य्योंकी ओर होने लगती है। मनुष्यके हृदयपर एक सज्जनकी कोमल बातोंका जितना अच्छा परिणाम होता है उतना किसी राजाके कठोर दण्डका भी नहीं हो सकता। कठोर दण्डका परिणाम अधिकसे अधिक यही हो सकता है कि मनुष्य यह समझ ले कि अमुक प्रकारका कार्य्य करना बुरा है, पर शुभ कार्य्योंकी ओर प्रवृत्ति केवल सज्जनोंके सदुपदेशसे ही हो सकती है।

इस अवसरपर हमें अमेरिकाकी एक घटनाका स्मरण हो आया है। न्यूयार्क नगरमें एक मनुष्य रहता था जो कई बार जेल हो आया था। अनेक अपराधोंके लिए इसे प्रायः पचीस वर्ष जेलमें ही बिताने पड़े थे। ज्यों ही वह जेलसे छूटता त्यों ही कोई न कोई अपराध कर बैठता और फिर पकड़कर जेल भेज दिया जाता था। बहुतसे लोगोंने उसे सुधारना चाहा, पर परिणाम कुछ भी नहीं हुआ। कई बार उसे नौकरियाँ भी मिलीं, पर लोग उसके मालिकोंसे उसकी शिकायत करते थे और उसकी नौकरी छूट जाती थी। एक बार जेलसे निकलकनेके उपरान्त उसकी भेंट एक महात्मा और साध्वी स्त्रीसे हो गई। उस स्त्रीने उससे यह भी न पूछा कि तुमने क्या अपराध किया था और तुम्हें क्यों जेल जाना पड़ा था। उसके जीवनके पुराने दुष्कर्म्मोंसे उसने कोई सम्बन्ध ही न रक्खा और न उनका कोई जिक्र ही किया। और साथ ही उसने उस मनुष्यसे भी कह दिया—" तुम अपने पिछले समस्त दोष बिलकुल भूल जाओ। परमेश्वरने तुम्हें अच्छी शारीरिक और मानसिक शक्ति दी है और संसारमें तुम्हें सत्कर्म्म करनेके लिए उत्पन्न किया है। अब तक तुमने जो कुछ किया वह तुम्हारे लिए और भी अच्छा हुआ है। क्योंकि तुममें जो कुछ त्रुटि थी वह विपत्तियाँ सहने और अनुभव प्राप्त करनेसे दूर हो गई। अब तुम सर्वांगपूर्ण मनुष्य हो गये हो। तुम सदा सुखी रहने और सत्कर्म्म करनेके योग्य हो गये हो।

तुम कभी अपने आपको तुच्छ या अपराधी न समझो और न कभी किसीको देख कर लज्जित होओ। तुम अपने आपको सर्वगुणसम्पन्न, सशक्त और ईश्वरका अंश समझो। अपना सुधार करनेके लिए दृढ़ निश्चय कर लो। तुममें एक ऐसी शक्ति वर्तमान है जो अवश्य तुम्हें सत्कर्म्मोंकी ओर प्रवृत्त कर सकती है और तुम्हें महात्मा बना सकती है। " उस साध्वी स्त्रीकी सम्मति और उपदेशका उस अपराधीपर इतना अच्छा प्रभाव पड़ा कि वह बहुत ही शीघ्र बड़ा भारी सदाचारी और सज्जन बन गया। उसके आचार विचार सब बदल गये और वह शुभ कामोंमें लग गया।

पचीसों वर्षकी कड़ी सजा और मारपीट जो काम नहीं कर सकी थी, वह काम एक साध्वी स्त्रीकी दो चार बातें कर गईं। इसका मुख्य कारण क्या था? यही कि कठोर दण्डका प्रभाव उसके अन्तःकरणपर नहीं पड़ता था, पर साध्वी स्त्रीकी सच्ची बातें उसके अंतःकरणमें लग गईं। साधुता और सत्यताका ऐसा ही सुन्दर परिणाम हुआ करता है। सात्विक और साधु मनुष्योंके मुँहसे निकली हुई बातें तुरन्त अपना प्रभाव डालती हैं और दूसरोंमें सात्विकता और साधुता उत्पन्न करती हैं।

लेकिन आजकलके युवकोंको बहुधा सत्संगति मिलती ही नहीं। स्कूलों और कालिजोंमें प्रायः सभी लड़के समान हुआ करते हैं। वे न तो सत्संगतिका उतना अधिक महत्त्व जानते हैं और न उन्हें संसारका अनुभव ही होता है। प्रायः साधारण स्थितिके लड़के अपनेसे कुछ अधिक सम्पन्न लड़कोंका साथ कर लेते हैं और अपने दुर्गुणोंको उनमें तथा उनके दुर्गुणोंको अपने आपमें भरने लगते हैं। धनियोंके लड़के प्रायः निकम्मे और अपव्ययी हुआ करते हैं और उनकी देखादेखी साधारण स्थितिके लड़के भी वैसे ही हो जाते हैं। आजकलके युवक किसी प्रकारका काम न करने और अपनी शक्तिसे अधिक व्यय करनेको ही एक प्रकारकी फैशन समझते हैं और ये ही दोनों बातें उनके शेष जीवनको बेतरह नष्ट कर देती हैं। आज बा० मदनगोपालके बागमें पार्टी है, यदि वहाँ न जायँगे तो वे बुरा मानेंगे। उस सनीचरको बा० कृष्णदास हमें थियेटर ले गये

लिए कल उन्हें थियेटर दिखलाना जरूरी है। पं० रामनाथके दो चार दोस्त बाहरसे आये हुए हैं। उन्हें शहर घुमानेके लिए न चलेंगे तो वे मनमें क्या कहेंगे ? बस इसी प्रकारकी बातोंमें वे अपना सारा समय बिता देते हैं। और काम ? काम करना तो शानके खिलाफ बात है। लोग समझेंगे कि इनके यहाँ खानेको भी नहीं है जो ये दफ्तरमें नौकरी करना चाहते हैं या छोटी मोटी दूकान करनेकी फिक्रमें हैं। धनियोंके लड़कोंका काम तो प्रायः बिना किसी प्रकारका उद्योग किये निकल भी जाता है; पर साधारण स्थितिवालोंको जब अधिक दबाव पड़नेके कारण कोई काम करना भी पड़ता है तो वह कभी उचित और पूर्ण रीतिसे नहीं होता। ऐसे लोग यदि किसी दफ्तरमें नौकर होंगे तो प्रायः वहाँ देर करके पहुँचेंगे, किसी किसी दिन मित्र-मण्डलीका साथ देनेके लिए दफ्तरसे जल्दी चले जाया करेंगे और दफ्तरसे ली हुई उनकी छुट्टियोंका तो ठिकाना ही न रहेगा। ऐसे लोग यदि कोई छोटी मोटी दूकान कर बैठेंगे तो भी उनकी ऐसी ही बल्कि इससे भी अधिक दुर्दशा होगी। जहाँ चार मित्र आकर खड़े हुए तहाँ उनकी दूकान बन्द होने लगी। बागकी सैर छोड़कर दूकान-पर किससे बैठा जाता है ? यदि किसी दिन दूकान न भी बन्द हुई तो भी दूकानपर मित्रोंका ही इतना जमाव होता है कि ग्राहकोंको वहाँतक पहुँचनेकी हिम्मत ही नहीं होती। भला जो दूकानदार सदा दो चार मित्रोंको लिए हा हा ठी ठी करता रहेगा और पान, सिगरेट तथा लेम-नेड उड़ाता रहेगा उसकी दूकानपर ग्राहक क्यों आने लगा ? ऐसे लोग पहले तो बागमें जाकर भाँग पीते, ताश खेलते और ऊधम मचाते हैं और पीछे उनके दुर्व्यसन बढ़कर जुए और वेश्यागमन आदिमें परिणत हो जाते हैं। इस प्रकार धनियोंके लड़कोंके संसर्गसे साधारण स्थितिवाले लड़के और साधारण स्थितिवाले लड़कोंके संसर्गसे धनियोंके लड़के बिगड़ते हैं।

ऐसे लड़कोंके मित्र और जान पहचानवाले तो बहुत अधिक होते हैं, पर विपत्तिकालमें वास्तविक सहायता या सम्मति देनेवाला एक भी नहीं

होता। भला, उस मनुष्यकी दुर्दशाका अनुमान तो कीजिए, जो दिनरात तरह तरहके वीसियों आदमियोंसे घिरा हुआ बराबर चैन करता रहा हो और जिसे विपत्ति-कालमें उनमेंसे एकके भी दर्शन न होते हों, वे ही मित्र उसके पासतक न फटकते हों। लेकिन सत्संगतिमें यह बात नहीं होती। जो मनुष्य अच्छी संगतिमें रहता है, यदि उसपर कभी कोई विपत्ति आ पड़े तो उसके साथवाले तो उसकी सहायता करते ही हैं, साथ ही और लोग भी उसकी सहायताके लिए तैयार हो जाते हैं। विपत्ति-कालमें सदा अच्छे लोग ही सहायक होते हैं, बुरे लोग नहीं। पर जो मनुष्य अच्छे आदमियोंका साथ ही न करेगा, विपत्ति-कालमें उसे सहायक कहाँसे मिलेंगे? इस लिए यह बात बहुत आवश्यक है कि बाल्यावस्थासे ही लड़कोंको सत्संगतिमें रखनेका प्रयत्न किया जाय। यदि आरम्भमें बालकोंकी संगति बुरे आदमियोंसे होगी तो बड़े होनेपर अच्छे लोगोंकी संगतिमें उसका रहना कठिन हो जायगा। उसे अच्छे आदमियोंकी संगति पसन्द ही नहीं आयगी, और यदि वह किसी प्रकार अच्छे लोगोंके साथ उठने बैठने भी लग गया तो भी उसका कोई अच्छा परिणाम न होगा, बाल्यावस्थाके दूषित संस्कार उसे कभी सुधरने न देंगे। अभिमान, चंचलता, अस्थिरता आदि जितने दोष हैं, सत्संगतिसे उनका नाश बहुत ही सहजमें हो जाता है। यदि मनुष्य साधारण या छोटे लोगोंकी सोहबतमें रहेगा तो स्वभावतः वह अपने आपको औरोंसे बड़ा, योग्य और बुद्धिमान समझेगा और उस दशामें अपनी योग्यता या विद्या आदि बढ़ानेका प्रयत्न न करेगा। पर यदि वह अपनेसे अधिक श्रेष्ठ, विद्वान् या बुद्धिमान् लोगोंके साथ रहेगा, तो वह उसके समान बननेके लिए प्रयत्न करेगा; इसके सिवा उस संगतिसे मिथ्या अभिमान भी दूर हो जाता है और [illegible] भी होता है।

इस अवसरपर हम कुछ और [illegible], [illegible], [illegible] स्वभावके दूसरे दोषोंके सम्बन्धमें [illegible] कहते हैं

प्रकारके दोषोंकी अपेक्षा मनुष्योंपर अभिमानका ही विशेष अधिकार है और यही दोष उसकी दुर्बलताका सबसे बड़ा प्रमाण है। इसके अतिरिक्त यह मनुष्यको अंधा बना देता है। जो मनुष्य अभिमानी होगा, उसे अच्छे बुरेका कोई ध्यान ही न रह जायगा। अभिमानी मनुष्य सदा अपने आपको ही देखता रहता है, दूसरोंका निरीक्षण करनेके लिए उसे समय ही नहीं मिलता, जिसका दुष्परिणाम यह होता है कि न तो उसे संसारका विशेष ज्ञान होता है और न अनुभव। अभिमानी मनुष्य कभी अपनी उन्नति भी नहीं कर सकता, क्योंकि उसका अधिकांश समय डींगें हाँकने और हवाई किले बाँधनेमें ही बीत जाता है। इसके अतिरिक्त जिस उद्देश्यसे मनुष्य अभिमान करता है, उस उद्देश्यकी भी पूर्त्ति नहीं होती। अभिमानी मनुष्य लोगोंपर अपनी योग्यता और सामर्थ्य प्रकट करना चाहता है, पर फल बिलकुल ही उलटा होता है, लोग उसे अयोग्य और मूर्ख समझने लगते हैं। अपने धन या विद्या आदिका जब तक हम सदुपयोग न करें तब तक सर्व साधारणको यह बात अच्छी तरह मालूम नहीं हो सकती कि वास्तवमें हम कितने धनी या विद्वान् हैं। साधारण भले आदमियोंसे बातें करनेमें अपना अपमान समझना और रास्तेमें चलते समय अपने नौकरोंसे 'हटो बचो' कराना और इस प्रकार दूसरोंको कष्ट देना कभी वास्तवमें हमारी कीर्त्ति नहीं बढ़ा सकता और न दूसरोंको 'मूर्ख' 'अज्ञान' आदि कहना हमारी विद्वत्ता प्रकट करता है। हम वास्तवमें सम्पन्न या विद्वान् उसी समय कहलायँगे जब कि हम अपने धन या विद्याका सदुपयोग करें—दूसरोंको उनसे लाभ पहुँचावें। और नहीं तो लोग हमारी दशापर हँसेंगे और सम्भवतः हमसे घृणा भी करेंगे। जब कोई अभिमानी अपनी योग्यता आदिकी डींगें हाँकने लगता है तब वह समझता है कि मेरी इन बातोंसे लोग बहुत प्रसन्न होंगे; पर वास्तवमें उसकी बातें सुनकर या तो लोगोंका चित्त दुःखी होता है और या वे उसकी हँसी उड़ाने लग जाते हैं। पर जो मनुष्य वास्तवमें कोई अच्छा काम करता है उसकी प्रशंसा सब लोग

आप ही आप करने लग जाते हैं। वृथाभिमानका दोष प्रायः युवावस्थामें ही लगता है; अतः युवकोंको इससे बचनेका सदा प्रयत्न करना चाहिए। बड़े लोगोंकी संगति इस दोषसे बहुत ही सहजमें मनुष्यको बचा सकती है, पर निम्न-कोटिके मनुष्योंमें रहनेसे यह दोष बढ़ जाता है।

संसारमें ऐसे लोग बहुत होंगे जो दूसरोंका उत्कर्ष या कीर्त्ति देखकर मन-ही-मन बहुत दुःखी होते हैं और उसके झूठे सच्चे दोष या दुर्गुण ढूँढ़कर उसे लोगोंकी दृष्टिसे गिरानेका प्रयत्न करते हैं। बड़े लोगोंकी बराबरी करनेके दो ही मार्ग हो सकते हैं; या तो हम स्वयं उन्नति करके उनके समान हो जायँ और या उन्हींको किसी न किसी प्रकार गिराकर अपने समान कर लें। पहला मार्ग तो बहुत ही कठिन है, क्योंकि उसमें अधिक परिश्रम और सद्गुणोंकी आवश्यकता होती है, इस लिए लोग बहुधा दूसरे मार्गका ही अवलंबन करते हैं। लेकिन वृथाभिमानकी तरह इस दूसरे मार्गका अवलंबन भी केवल निरर्थक ही नहीं होता बल्कि बहुधा उसका परिणाम और भी उलटा होता है। यदि कोई नीच मनुष्य किसी सज्जनको झूठ मूठ बदनाम करे या उसकी हँसी उड़ाता फिरे तो उस सज्जनकी कोई हानि नहीं होती। हाँ, उस बदनामी करनेवाले या हँसी उड़ानेवालेकी नीचता अवश्य सबपर प्रकट हो जाती है। *लेकिन समझदार मनुष्य उनके उन कार्य्योंसे भी लाभ ही उठाते हैं।* वे नीचोंके दोष देखकर सचेत हो जाते हैं और स्वयं उनसे बचते हैं। एक विद्वानने कहा है कि यदि महापुरुषोंमें कोई दोष न हो—अथवा कमसे कम दोष न जान पड़े—तो नीच प्रकृतिके मनुष्योंके लिए बड़ी ही कठिनता हो; उन्हें अपना समय बितानेके लिए कोई काम ही न रह जाय। और इसी प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि यदि ऐसे नीच मनुष्य न हों तो योग्य मनुष्योंको उनकी नीचतासे शिक्षा ग्रहण करनेका अवसर ही न मिले।

हमें सदा दूसरोंकी अच्छी बातोंकी कद्र करनी चाहिए; क्योंकि इसीमें हमारा सबसे अधिक लाभ है। दोषोंका दिग्दर्शन और आलोचन साधा-

रणतः लोगोंको दोषोंका ही ध्यान दिलाता और उन्हींकी ओर प्रवृत्त करता है। हमें सदा यही देखना चाहिए कि अमुक मनुष्यमें कौनसा गुण है और अमुक घटना या विषयसे हम कौनसा अच्छा परिणाम निकाल सकते हैं। सद्भाव उत्पन्न करने और अपने आपको सन्मार्गमें प्रवृत्त करनेके लिए यही सबसे अच्छा साधन है। एक महाशयने एक नाटक लिखा था जिसमें थोड़ेसे दोष भी थे। उनके एक मित्रने नाटककी बड़ी कड़ी आलोचना की। इसपर नाटककार महाशयने पूछा—" आपको उसमें कोई गुण भी मिला अथवा सब दोष ही दोष दिखाई पड़े ? " मित्रने उत्तर दिया—" हाँ, क्यों नहीं, उसमें गुण भी हैं, पर दोषोंकी मात्रा अधिक है। " नाटककारने कहा—" तब फिर उचित तो यह है कि आप उसमेंके गुण ग्रहण कर लें और व्यर्थ दोषोंकी चिन्ता करके अपने आपको दुःखी न करें। "

हमें सदा यह जानकर प्रसन्न होना चाहिए कि काँटोंमें भी सुन्दर फूल होते हैं; इस बातका ध्यान करके दुःखी नहीं होना चाहिए कि फूलोंके साथ भी काँटे होते हैं। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो हमें प्रत्येक वस्तुमें कुछ न कुछ गुण अवश्य दिखाई देगा; अथवा यदि उसमें कोई गुण न भी हो तो भी कोई न कोई ऐसी बात अवश्य होगी जिससे हम कोई अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकें, कोई शुभ परिणाम निकाल सकें। एक विद्वानसे किसीने पूछा—" महाशय, आपने इतनी विद्या और बुद्धि कहाँसे प्राप्त की ? " उसने उत्तर दिया—" मूर्खोंसे। उनकी जो बातें मुझे बुरी जान पड़ीं उन्हें मैंने छोड़ दिया और अच्छी बातोंको ग्रहण कर लिया। " तात्पर्य यह कि हमारा ध्यान सदा गुण ढूँढ़ने और शिक्षा ग्रहण करनेकी ओर ही होना चाहिए। अवगुण ढूँढ़नेमें तो हम प्रायः वह सुअवसर खो देते हैं जिससे हम अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। अथवा यदि हमारी प्रवृत्ति सदा शिक्षा ग्रहण करनेकी ओर ही रहे तो हम अवगुण देख या ढूँढ़कर भी उससे अपना लाभ ही कर सकते हैं। यदि हम अपना यह सिद्धान्त बना लें कि सब

बातों और सब घटनाओंसे हम कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे तो थोड़े ही समयमें और थोड़े ही परिश्रमसे हमारे अनुभव ज्ञान और सद्गुणों आदिमें बहुत कुछ वृद्धि हो सकती है। यदि मनुष्य नित्य एक भी नई शिक्षा ग्रहण करे तो उसका मन थोड़े ही दिनोंमें अच्छी बातोंका भंडार हो जाता है और यदि महीनेमें एक भी गुण ग्रहण करे तो शीघ्र ही वह गुणोंकी खानि हो जाता है।

मनुष्यको संसारके सब कार्योंमें सदा शान्त, प्रसन्नचित्त और धीर रहना चाहिए। बहुतसे लोगोंका स्वभाव बहुत चिड़चिड़ा, हुआ करता है। चिड़चिड़ेपनसे सबसे बड़ी हानि यह होती है कि मनुष्यका स्वास्थ्य बिगड जाता है। जो मनुष्य बात बातपर खिजलाया चिड़चिड़ाया या कुढ़ा करता हो, न तो उसका स्वास्थ्य कभी ठीक रह सकता है और न उसका आचरण सुधर सकता है। बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जो दिन भर परिश्रम करते और सन्ध्या समय आपसमें लड़ाई झगड़ा और दाँताकिटकिट करके अपना खून जलाते हैं। ऐसे लोगोंके मुखपर कभी कान्ति नहीं होती और जो कुछ वे खाते पीते हैं, चिड़-चिड़ेपन और कुढ़नके कारण वह उनके अंगमें नहीं लगता। इसके अति-रिक्त जब तक हम शान्त और प्रफुल्लचित्त न रहें तब तक हमारी शक्तियाँ कभी पूरा और ठीक काम नहीं कर सकतीं। शान्ति और प्रसन्नताकी सहायतासे हमारा चित्त एकाग्र होता है, हमारे दृढ़ता आती है और हमारी कार्य करनेकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है। मनुष्यके सद्गुणों और सद्वृत्तियोंके विकाशके लिए यह बात बहुत ही आवश्यक है कि उसके हृदयपर किसी प्रकारका बोझ न रहे। संसारमें बहुतसे लोगोंकी उन्नति केवल इसी लिए नहीं होती कि उनका हृदय कुढ़न और दुःखके निर-र्थक बोझसे ही दबा रहता है। अपने ऊपर इन सब बातोंका जो बुरा परिणाम पड़ता है वह तो पड़ता ही है; घरके बाल बच्चोंपर इसका और भी बुरा प्रभाव होता है। दिन रात खिजलाने, बिगड़ने, गालियाँ देने और मारनेके कारण ही बहुतसे लड़के और लड़कियाँ बे हाथ हो जाती

हैं। लड़कोंके अनाज्ञाकारी, उच्छृंखल और कुमार्गीय होनेमें माता-पिताकी बहुधा ये ही बातें सहायक हुआ करती हैं। बहुतसे बच्चे बिगड़कर उद्दंड और उच्छृंखल हो जाते हैं और युवक साधुओंके फेरमें पड़ जाते हैं। दिनरात डाँटते डपटते और कोसते रहनेसे बच्चे कभी सुधर नहीं सकते। हाँ, जो मातापिता शान्तभाव और प्रसन्न हृदयसे अपने बच्चोंको सीधे मार्गपर लानेका प्रयत्न करते हैं उन्हींके बच्चे सुधरते हैं।

कुछ लोगोंका यह अभ्यास हुआ करता है कि वे सदा बालकों, सम्बन्धियों, मित्रों, नौकरों, मजदूरनियों आदि सबके दोष ढूँढ़ा करते हैं। वास्तवमें इससे और भी अधिक बिगाड़ होता है। इससे सद्गुणों और सद्भावोंका केवल नाश ही होता है, वृद्धि कभी नहीं हो सकती। बहुतसे लोग जरा सा दोष, थोड़ी सी अव्यवस्था या छोटी सी भूल देखकर ही आपेसे बाहर हो जाते हैं और जो जीमें आता है बकने लगते हैं। फल यह होता है कि सब लोग ऐसे आदमियोंसे दुःखी रहते हैं और जहाँ तक हो सकता है, उनसे बचनेका प्रयत्न करते हैं। ऐसे अवसरपर यही उचित है कि बहुत ही शान्तिपूर्वक मनुष्यका ध्यान उस अव्यवस्था या भूलपर आकृष्ट किया जाय। जो मनुष्य ऐसा नहीं करता, उसकी बातका कोई मूल्य भी नहीं रह जाता। सब लोग समझ लेते हैं कि इनकी तो इस तरह बकनेकी आदत ही है। जिस प्रकार बिना मिले हुए साजसे कभी अच्छा स्वर नहीं निकल सकता, उसी प्रकार अशान्त और क्षुब्ध हृदयसे कभी कोई अच्छा कार्य्य करनेके लिए उत्तेजना नहीं मिल सकती।

चिड़चिड़े, क्रोधी या ईर्ष्यालु मनुष्य अपने आपको तथा दूसरोंको दुःखी करनेके अतिरिक्त और कुछ कर ही नहीं सकते। वे न तो किसीके शुभ कार्य्योंकी प्रशंसा कर सकते हैं और न उन्हें उत्तेजना दे सकते हैं। इसका मुख्य कारण उनकी अविचार-शीलता है। जिस मनुष्यमें जरा भी समझ होगी वह कभी जान बूझकर कोई ऐसा काम न करेगा जिसके कारण स्वयं उसे भी दुःखी होना पड़े और दूसरोंको भी। ऐसे ही मनुष्य कभी कभी आवेश या क्रोधमें आकर लोगोंको ऐसे मर्म्म-भेदी

वाक्य कह बैठते हैं जिनका परिणाम कहने और सुननेवाले दोनोंके लिए बहुत भयंकर होता है। मनुष्यके हृदयपर छोटी और बड़ी सभी बातोंका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। यदि हम अपने अविचारके कारण किसीको कोई अनुचित बात कह बैठते हैं तो मानों उसके चित्तको क्षुब्ध करके कुछ न कुछ दुर्बल कर देते हैं, और यदि हम अपनी विचारशीलताके कारण उसके साथ कोई ऐसा व्यवहार करें जिससे वह प्रसन्न हो जाय तो मानों हम उसे उत्तेजना देकर बलवान् बनाते हैं। अर्थात् जो मनुष्य सदा दूसरोंके दोष ही ढूँढ़ा करता है, जो सदा दूसरोंको जली कटी ही सुनाता रहता है, वह समाजका बड़ा भारी शत्रु और उसकी उन्नतिका बड़ा भारी बाधक होता है। ऐसे लोग सदा संसारमें दोषों और दुःखोंकी वृद्धि करते रहते हैं और कभी सफल-मनोरथ या सर्वप्रिय नहीं हो सकते। पर जो मनुष्य सदा स्वयं प्रसन्न रहता है और जो अपने मधुर वचनोंसे सदा दूसरोंको उत्साहित करता रहता है वह समाजकी उन्नतिका बड़ा भारी सहायक होता है। ऐसा ही मनुष्य अपने जीवन-कालमें सदा सर्व-प्रिय रहता है और मरनेके उपरांत अच्छी कीर्त्ति छोड़ जाता है।

कुछ मनुष्योंका स्वभाव बहुत ही चंचल हुआ करता है। स्वभावकी यह चंचलता प्रायः उसी समय मनुष्यपर अपना विशेष अधिकार जमाती है जब वह अपनी बाल्यावस्था समाप्त करके समाजमें प्रवेश करता है। ऐसा मनुष्य कभी किसी विषयपर पूरा विचार नहीं कर सकता और इसी लिए उसका निश्चय भ्रमपूर्ण और हानिकर हुआ करता है। जहाँ उसने किसी बातपर जरा सा भी विचार किया तहाँ उसका चंचल चित्त किसी दूसरी बातपर जा लगा; अब पहली बातपर थोड़ा सा विचार करके उसने जो परिणाम निकाला था वही उसे ठीक जँचने लगता है, पर वास्तवमें ठीक परिणाम नहीं निकाल सकता। यह हानि यहीं समाप्त नहीं हो जाती। आगे चलकर जब वह उस विचारको कार्य्यरूपमें परिणत करता है तब उसकी चंचलता और भी

हानिकारक प्रमाणित होती है। कार्य्य तो वह आरम्भ कर देता है; लेकिन उससे होनेवाले लाभपर उसे विश्वास नहीं होता। इसी बीचमें उसकी मानसिक चंचलता उसके सामने दूसरे कामका चित्र खींचती है और वह उसमें लग जाता है। पहले काममें उसने जितना समय और जितनी शक्ति लगाई थी, मानों उन सबका नाश हो गया। पर दूसरा काम अपनी चंचलताके कारण वह कभी ठीक तरहसे नहीं कर सकता और शीघ्र ही तीसरे काममें लग जाता है। इस प्रकार प्रत्येक काममें उसके समय और शक्तिका नाश ही होता रहता है और किसी काममें उसे कोई लाभ नहीं होता। ऐसा मनुष्य संसारमें कभी कोई काम नहीं कर सकता।

स्वभावकी चंचलतासे केवल यही एक हानि नहीं होती; इससे और भी अनेक हानियाँ होती हैं। चंचल मनुष्य कभी अपना आचरण ठीक नहीं रख सकता; बहुधा सभी बुरे मनोविकारोंका समय समय-पर वह दास बन जाता है। यदि उसपर कोई संकट आ जाय तो वह उससे बचनेका कोई अच्छा उपाय नहीं निकाल सकता। दूसरोंकी सत्यता और असत्यता आदिका भी उसे कभी दृढ़ विश्वास नहीं होता, जिसके कारण उसे प्रायः धोखा खाना पड़ता है। जिसका स्वभाव चंचल होता है उसका हृदय भी कभी शान्त और स्वस्थ नहीं रहता; प्रायः वह दूसरोंको भी शान्त और स्वस्थ नहीं रहने देता। दूसरे लोग कभी उसकी बात या कामका विश्वास नहीं करते; सब समझते हैं कि इसकी चित्तवृत्तिके बदलनेमें देर नहीं लगती। ऐसा मनुष्य द्रव्यका भी कभी सदुपयोग या संग्रह नहीं कर सकता। वह क्षणमें सुखी, क्षणमें दुःखी, क्षणमें महान्, क्षणमें क्षुद्र, क्षणमें उच्च, क्षणमें नीच हो जाता है। छोटेसे छोटा कारण भी उसकी स्थिति और विचार बदल देता है।

एक विद्वानका मत है कि स्वभावकी चंचलताके कारण मनुष्यमें दुर्बलता आ जाती है, पर हमारी समझमें तो स्वयं दुर्बलता ही चंचलताका कारण है। दुर्बलतासे केवल चंचलता ही उत्पन्न नहीं होती, बल्कि और

भी अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। अपने आपको सामर्थ्यवान्, प्रतिष्ठित या बुद्धिमान् समझना, किसी निश्चयपर दृढ़ न रहना, दूसरोंके दोष ढूँढ़ना, जरासी बातमें प्रसन्न या अप्रसन्न हो जाना, प्रलोभन देखकर कुमार्गमें प्रवृत्त होना, स्वार्थी अपव्ययी या मिथ्यावादी होना, आदि आदि प्रायः सभी दोष एक मात्र दुर्बलताके कारण ही उत्पन्न होते हैं। जिस मनुष्यमें कुछ भी मानसिक बल होता है वह पहले तो कभी कुमार्गमें प्रवृत्त ही नहीं होता और यदि कभी किसी कारणवश किसी बुरे काममें लग गया तो समय पड़नेपर वह अपने उसी मानसिक बलकी सहायतासे उस बुरे कामसे बिलकुल अलग हो जाता है। पर जिस मनुष्यमें मानसिक बलका अभाव होता है—जिसका हृदय दुर्बल होता है—वह नित्य नये नये दुष्कर्मोंमें फँसता जाता है और उसका सारा जीवन कष्टमें ही बीतता है।

दुर्बलता हमें किसी प्राप्त वस्तुसे संतुष्ट नहीं होने देती और न उसका सदुपयोग ही करने देती है। हम जब किसी इच्छित वस्तुको प्राप्त कर लेते हैं तब उसीसे हमारा समाधान नहीं होता; हमारा ध्यान किसी दूसरी वस्तुपर लग जाता है। उस दूसरी वस्तुकी प्राप्तिपर तीसरी वस्तु और तीसरीकी प्राप्तिपर चौथी वस्तु हमारी दृष्टिपर चढ़ती है और यह क्रम बराबर जारी रहता है। हमारी दुर्बलता न तो हमें प्राप्त वस्तुके गुण जानने देती है और न इच्छित वस्तुके दोष। और इसके कारण हममें असंतोष उत्पन्न होता है। यदि प्रशंसनीय उपायोंसे धनी बनने, ज्ञान प्राप्त करने अथवा लोकोपकारके कामोंमें हमारा संतोष न हो और हम उस मार्गमें बराबर अग्रसर होते रहें तो इससे बढ़कर अच्छी और कोई बात ही नहीं है, पर वास्तवमें यह बात नहीं देखी जाती। लोग अच्छी बातोंसे तो थोड़े और सहजमें ही संतुष्ट हो जाते हैं, पर निन्दनीय कार्य्य करके कभी उनका समाधान नहीं होता। एक तो किसी बुरे काममें लगना ही दुर्बलताका चिह्न है,* दूसरे बराबर उसमें अग्रसर होते रहना और भी भारी दुर्बलता है। यदि दुष्कर्म्मोंको छोड़ दिया जाय तो संसारकी अन्य

साधारण बातोंमें भी यह असंतोष प्रायः हानिकारक ही प्रतीत होता है; क्योंकि उसके कारण हम प्राप्त वस्तुका सुख भोगनेसे वंचित हो जाते हैं। ईश्वरकी दी हुई अच्छी चीजें भी हमें बुरी मालूम होने लगती हैं। जिन चीजोंसे हमें हर्ष होना चाहिए उन्हींसे हमें विषाद होने लगता है।

यही सब बातें ऐसी हैं जिनके कारण मनुष्यका जीवन अपरिमित हो जाता है। यदि मनुष्य किसी प्रकार परिमित जीवन व्यतीत कर सके तो उसे अपना परम सौभाग्य समझना चाहिए। परिमित जीवनका तात्पर्य्य यह है कि मनुष्य हर एक काममें यह समझ ले कि मुझे कहाँतक अग्रसर होना चाहिए। हमें जीवनका वास्तविक आनन्द उसी समय मिल सकता है जब हम हर एक बातमें परिमित रहें; नहीं तो हमें कभी वास्तविक सुख नहीं मिल सकता। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' वाला *सिद्धान्त प्रत्येक मनुष्यको याद रखना चाहिए और इस सिद्धान्तका* उपयोग करनेमें बहुत कुछ मानसिक बलकी आवश्यकता होती है। यह मानसिक बल सब मनुष्योंमें थोड़ा बहुत होता है, पर जैसा कि हम पहले प्रकरणमें कह चुके हैं लोग जानबूझकर उसकी ओर ध्यान नहीं देते और अन्तमें उसे नष्ट कर देते हैं। जिन लोगोंमें किसी प्रकारकी मानसिक दुर्बलता हो उन्हें सबसे पहले यह बात अच्छी तरह जान लेनी चाहिए कि प्रत्येक मनुष्यमें थोड़ा बहुत मानसिक बल होता है और उपयोगमें लानेसे उसकी वृद्धि भी होती है। इतना समझनेके उपरान्त उसे इस बातका दृढ़ निश्चय करना चाहिए कि मैं अपनी यह दुर्बलता दूर करूँगा और परिणामस्वरूप बुरे कामोंसे बचूँगा। दुर्बलता दूर करने और कुमार्गसे बचनेका यही सबसे अच्छा और सहज उपाय है।

बहुतसे लोग छोटी छोटी चीजों या बातोंकी ओरसे उदासीन रहते हैं। वे समझते हैं कि ये तुच्छ चीजें या बातें हमें कोई हानि या लाभ नहीं पहुँचा सकतीं। ऐसे लोग सदा दुःखी रहते हैं। वे यह नहीं समझते कि संसारकी सभी चीजें बहुत ही छोटी छोटी चीजोंका समूह है। जिन चीजोंको हम लोग बहुत छोटी या तुच्छ समझते हैं हमारा बहुतसा सुख

या दुःख वास्तवमें उन्हींपर निर्भर होता है। छोटी छोटी वातोंका ध्यान रखनेसे मनुष्यका चरित्र बनता है, छोटी छोटी चीजोंको ठीक स्थानपर रखनेसे घरकी शोभा बढ़ती है, छोटी छोटी घटनाओंसे उपदेश ग्रहण करके मनुष्य अनुभवी और ज्ञानी बनता है और छोटे छोटे खर्च रोककर मनुष्य अच्छी सम्पत्ति संग्रह कर लेता है। तात्पर्य्य यह कि जितनी बड़ी चीजें हैं वे या तो स्वयं आरम्भमें छोटी होती हैं अथवा बहुतसी छोटी छोटी चीजोंका समूह होती हैं। यदि किसी जहाजके पेंदेमें छोटासा छेद हो जाय तो वही छोटा छेद उस जहाजको डुबा देनेके लिए यथेष्ट होगा और यदि किसी बहुत बड़े और सूखे तालाबमें कहींसे निरंतर महीन और छोटी धार आती रहे तो समय पाकर वह तालाब भर जायगा।

हमारे जीवनका विशेष सम्बन्ध छोटी छोटी बातों या चीजोंसे ही है। हम दस मिनट तंबाकू पीनेमें, पाँच मिनट पान लगानेमें, दस मिनट दोस्तोंसे गप लड़ानेमें और इसी तरह दस दस पाँच मिनट बहुतसे निरर्थक कामोंमें बिताने लगें तो हमारा दिनभर नष्ट हो जायगा। यदि हम दस बीस छोटे छोटे खर्च ही अपने साथ लगा लें, तो सब मिलकर एक बहुत बडी रकम हमारे घरसे निकल जायगी। एक मिनटका सदुपयोग करके भी बहुत कुछ लाभ उठाया जा सकता है और एक पैसेका निरर्थक व्यय रोककर भी बहुत कुछ बचत की जा सकती है। वास्तवमें बहुतसे लोग तुच्छ बातोंसे लापरवाह होकर बहुत दुःख पाते हैं। जो लोग तुच्छ बातोंका ध्यान नहीं रख सकते वे ही बड़ी बड़ी बातोंका ध्यान रखनेमें परम असमर्थ और अयोग्य होते हैं। जो मनुष्य मकानकी छतपर नहीं चढ़ सकता वह पहाड़पर कैसे चढ़ेगा?

जिस प्रकार एक चिनगारीसे सारा शहर भस्म हो सकता है, उसी प्रकार कभी कभी एक बहुत ही तुच्छ बातसे भी मनुष्यका सारा जीवन नष्ट हो सकता है। थोड़ीसी लापरवाही या सुस्ती ही बड़ा भारी अनर्थ कर सकती है। एक छोटासा रोग मनुष्यके प्राण ले सकता है और एक छोटासा दोष मनुष्यका चरित्र नष्ट कर सकता है। छोटी छोटी बातोंकी

ओर पूरा ध्यान रखनेवाले लोग ही वास्तवमें महान् कार्य कर सकते हैं। अमेरिकाके प्रसिद्ध हबशी विद्वान् बुकर टी. वाशिंगटन जब पहले पहल हेम्पटन-विद्यालयमें भर्ती होनेके लिए गये तब वहाँकी मुख्य अध्यापिकाने उनकी योग्यताकी परीक्षा करनेके लिए उन्हें एक कमरेमें झाड़ू देनेके लिए कहा। वाशिंगटनने अपनी योग्यता दिखलानेका वही बहुत अच्छा अवसर समझा और झाड़ू उठाकर तीन बार बहुत अच्छी तरह वह कमरा साफ किया, वहाँकी कुरसी, मेज, अलमारी और यहाँ तक कि दीवारपरकी सारी गर्द साफ कर दी और सारे कमरेमें कहीं धूलका नाम भी न रहने दिया। इस तुच्छ कामके लिए उन्होंने इतना अधिक परिश्रम इसी लिए किया था कि वे उसे वास्तवमें 'तुच्छ' नहीं समझते थे, बल्कि 'काम' समझते थे। यदि वे उसे तुच्छ समझकर बेगारसी टाल देते, यों ही मामूली झाड़ू देकर छोड़ देते, अथवा कह बैठते कि—"यह तो बहुत ही तुच्छ काम है, कोई बड़ा काम दे कर परीक्षा लीजिए।" तो शायद वह कभी उस विद्यालयमें भर्ती भी न होने पाते। हेम्पटन-विद्यालयके अधिकारी प्रायः ऐसे ऐसे तुच्छ काम ही बतलाकर आये हुए विद्यार्थियोंकी परीक्षा लिया करते थे और उस परीक्षामें जो विद्यार्थी उत्तीर्ण हो जाते थे, वे ही भर्ती किये जाते थे। और यही कारण था कि उस विद्यालयसे पढ़कर निकले हुए सभी लोग बहुत ही योग्य, चतुर और कर्त्तव्य-परायण हुआ करते थे। भला जो लोग छोटी छोटी बातोंपर पूरा ध्यान रखते हों वे बड़े बड़े कामोंको क्यों न उत्तमतापूर्वक कर सकेंगे। एक बार अमेरिकाके एक करोड़पती साहूकारसे बिगड़कर एक आदमीने कहा—"आज आप बढ़ बढ़कर इतनी बातें बनाते हैं। आप वही हैं न जो पहले एक रेजिमेन्टमें बाजा बजाते थे?" करोड़पतिने उत्तर दिया—"हाँ, मैं बाजा तो जरूर बजाता था पर क्या मैं बाजा अच्छी तरह नहीं बजाता था?" यही 'अच्छी तरह बजाना' ही सारी सफलताका मूल मंत्र है। जो लोग वास्तवमें अपनी उन्नति करना चाहते हों उन्हें उचित है कि वे छोटी छोटी बातोंकी ओरसे कभी

लापरवाह न रहें, हर एक छोटे कामको ठीक तरहसे करें । छोटे छोटे दोषोंसे सदा बचें और किसी कामको छोटा या तुच्छ न समझें । अँगरेजीकी एक कहावतका तात्पर्य है—"तुम पैसोंका ध्यान रखो, रुपये अपना ध्यान आप ही रख लेंगे।" अर्थात् जो लोग सदा छोटी छोटी बातोंका ध्यान रक्खेंगे उनके बड़े बड़े काम आप ही बन जायँगे।

अब हम सांसारिक जीवनके एक प्रधान अंगपर कुछ विचार करते हैं। वह प्रधान अंग 'अनुभव' है। केवल अनुभव ही मनुष्यको इस बातकी शिक्षा देता है कि संसारमें जीवन किस प्रकार व्यतीत करना चाहिए। आप किसीको निरंतर उपदेश देते रहिए, सदा शिक्षापूर्ण बातें बतलाते रहिए, पर उन सबका कोई अच्छा परिणाम नहीं होगा। वह मनुष्य कहीं न कहीं चूक ही जायगा । और यदि जिन बातोंका आप उसे बहुत उपदेश देते हैं, उन्हींका थोड़ासा अनुभव करा दीजिए तो उसका परिणाम बहुत ही अच्छा और सन्तोषजनक होगा । संसार कर्म्मक्षेत्र है। इसमें रहनेके लिए वही मनुष्य उपयुक्त हो सकता है जो कर्म्मशील हो और कर्म्मशीलता विना अनुभवके आ ही नहीं सकती । कोरी बातोंसे मनुष्य केवल सिद्धान्त जान सकता है, कार्य्य करनेके योग्य वह कदापि नहीं हो सकता। केवल पुस्तकें पढ़नेसे ही वास्तविक मनुष्यत्व नहीं आ सकता और न चरित्र ही बन सकता है। इन बातोंके लिए दुनियाका ऊँच-नीच देखनेकी जरूरत होती है।

जिस मनुष्यके सदाचारकी परीक्षा न हुई हो, वह पूरा सदाचारी नहीं हो सकता । जिस मनुष्यको कभी धनके दर्शन ही न हुए हों उसके विषयमें यह कैसे कहा जा सकता है कि वह चोर नहीं है? जो मनुष्य सदा एकान्तमें ही वास करता हो उसके विषयमें यह कैसे कहा जा सकता है कि वह बड़ा भारी महात्मा है और उसमें संसारका कल्याण करनेकी बहुत बड़ी शक्ति है? एकांतवाससे तो उलटे यह सिद्ध होता है कि वह संसार और मनुष्योंको तुच्छ समझता है और यह वास्तवमें उसकी असमर्थता या कायरताका ही परिचायक हो सकता है। पर हाँ

जो मनुष्य कर्म्मक्षेत्रमें उतरकर कुछ काम करता है वही योग्य और सद्गुणी समझा जाता है और वही अनुभव प्राप्त करके बड़े बड़े काम भी कर सकता है। मनुष्यमें वास्तविक मनुष्यत्व और बल तभी आता है जब वह समाजके लोगोंके साथ मिलजुलकर काम करता रहता है। काम करनेसे ही मनुष्यको अपने कर्त्तव्यका ज्ञान होता है, कामहीसे उसे शिक्षा मिलती है, कामहीसे उसके धैर्य्य, साहस और अध्यवसाय आदिकी परीक्षा होती है और कामहीसे अनुभवकी वृद्धि होती है। समय समयपर हमें कठिनाइयों या आपत्तियोंका जो सामना करना पड़ता है, वही हमारे सदाचार-चित्रपर पालिश चढ़ाता है, और उस समय हम जो अनुभव प्राप्त करते हैं वही आगे चलकर हमारे गुणोंकी वृद्धि करता और हमें श्रेष्ठ बनाता है।

अपनी शक्ति या गुणों आदिका पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त करनेमें भी हमें कार्य्य और अनुभवसे ही सहायता मिलती है। जो मनुष्य न तो कार्य्य करता है और न अनुभव प्राप्त करता है वह वास्तवमें बिलकुल असमर्थ, अकर्मण्य और बोझ ही होता है। उसे स्वयं इस बातका ज्ञान नहीं होता कि मैं कौनसा काम करनेमें समर्थ हूँ और कौनसा काम मुझसे नहीं हो सकेगा। पर प्रत्येक मनुष्यका यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपनी शक्तिका पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त कर ले। एक विद्वानका मत है कि जिस मनुष्यको अपनी शक्तियोंका पूरा पूरा ज्ञान है वह कभी दुष्ट नहीं हो सकता और जिसे अपनी शक्तियोंका ज्ञान नहीं होता वह कभी साधु नहीं हो सकता। इसलिए प्रत्येक मनुष्यके लिए यह बात बहुत ही आवश्यक है कि वह अपनी शक्तिका ज्ञान प्राप्त करे। शक्ति प्रत्येक मनुष्यमें होती है और निरंतर उपयोग करके उसकी वृद्धि भी की जा सकती है। पर उसका उपयोग करनेसे पहले यह समझनेकी आवश्यकता होती है कि हममें वह शक्ति है। जब हमारी समझमें आ जायगा कि हममें इतना बल है और हम अमुक काम करनेमें समर्थ हैं, तभी हम कोई बड़ा काम कर सकेंगे, अन्यथा नहीं।

अतः जो लोग संसारमें कुछ काम करना चाहते हों उनके लिए आत्म-ज्ञान प्राप्त करना सबसे अधिक आवश्यक और प्रथम कर्त्तव्य है। जबतक हम अपनी शक्तिसे परिचित न होंगे तबतक हम उसका उपयोग ही नहीं कर सकेंगे। शक्तिसे परिचित होनेके उपरान्त एक बार जब हम उसका उपयोग कर लेंगे तब हम अपने प्राप्त अनुभवकी सहायतासे दूसरा बड़ा काम उठावेंगे और इस प्रकार बढ़ते बढ़ते किसी समय हम बहुत काम करनेमें भी समर्थ हो जायँगे। यदि हम स्वयं ही अपनी शक्तिका ज्ञान प्राप्त कर सकते हों तो हमें दूसरोंके उदाहरणसे ही उसे प्राप्त करना चाहिए। संसारमें और लोगोंको काम करते देखकर हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और समझना चाहिए कि हममें भी इतना बल है अथवा हो सकता है। अपने अनुभवके अतिरिक्त हमें दूसरोंके अनुभवसे भी लाभ उठाना चाहिए। जो मनुष्य दूसरोंके अनुभवसे लाभ उठानेमें अपनी हेठी समझता है वह कभी कोई अच्छा या बड़ा काम नहीं कर सकता। अतः दूसरोंके कार्य्यों और व्यवहारों आदिसे शिक्षा ग्रहण करनेके लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

जिसे लोग बुद्धिमत्ता या समझदारी कहते हैं, वह और कुछ नहीं संसारके आजतकके अनुभवका सार ही है। संसारमें इस समय जो कुछ हो रहा है, उसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लेना और तदनुसार अपने सांसारिक जीवनका निर्वाह करना ही मनुष्यका परम कर्त्तव्य है। बड़ी बड़ी पुस्तकें और भारी भारी उपदेश मनुष्यको कभी इस संसारमें रहनेके योग्य नहीं बना सकते। हाँ, इससे ऊपरके किसी संसारमें रहने योग्य वे अवश्य बना सकते हैं। हमारे कहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि मनुष्य अपना आदर्श ही उच्च न बनावे, नहीं वह अपने विचार अवश्य उच्च रक्खे, अपनी कोमल और शुभ वृत्तियोंका सदा उपयोग करता रहे और सन्मार्गमें लगा रहे, पर साथ ही साथ संसारका अनुभव भी प्राप्त करता चले। जिसे संसारका अनुभव नहीं प्राप्त होता वह परम सदाचारी या विद्वान् होकर भी संसारका न तो कोई उपकार कर सकता है और न स्वयं कभी सुखी रह सकता है।

एक विद्वानका मत है—"जीवन एक पाठशाला है जिसमें स्त्रियों और पुरुषोंको अनुभवकी शिक्षा दी जाती है। कठिनाइयाँ, विपत्तियाँ, प्रलोभन आदि इस पाठशालाके शिक्षक हैं। इन शिक्षकोंसे हमें घबराना नहीं चाहिए, बल्कि उन्हें ईश्वरकी ओरसे नियुक्त समझना चाहिए और वे हमें जो शिक्षा दें उसे केवल सुन ही नहीं लेना चाहिए बल्कि उसे सदा अपने हृदयमें रखना और उसपर मनन करना चाहिए।" लेकिन जीवनकी इस पाठशालासे लोग कहाँ तक लाभ उठाते हैं, अच्छे अच्छे अवसरोंसे लोग कहाँतक शिक्षा प्राप्त करते हैं और उस शिक्षाका उनके जीवनपर कैसा प्रभाव पड़ता है? यदि हम कठिनाइयों और विपत्तियों आदिसे शिक्षा ग्रहण करके धीर, साहसी, सत्यनिष्ठ और कर्म्म-शील हो जायँ तब तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि ईश्वरकी खोली हुई इस पाठशालासे हमने पूरा पूरा लाभ उठाया; और यदि हम चंचल, कायर, झूठे और अकर्मण्य बने रहें तो मानना होगा कि हम ईश्वरके प्रयत्नमें बाधक हुए हैं।

अनुभव जीवनमें ही होता है और जीवनका सम्बन्ध समयसे है। अतः समयको हमें अपना बड़ा भारी सहायक और शिक्षक समझना चाहिए। जो लोग इस समयका सदुपयोग नहीं करते और बैठे बैठे उसे खो देते हैं वे न तो कभी कुछ सीख सकते हैं और न कर सकते हैं। युवावस्थामें हम लोग संसारको केवल सुख और भोगका ही स्थान समझते हैं; पर ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है और हमारी आयु बढ़ती जाती है त्यों त्यों हमें मालूम होता जाता है कि संसारमें सुखके साथ ही साथ दुःख भी है। हमें अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं, हानियाँ सहनी पड़ती हैं, कठिन परिश्रम करना पड़ता है और सब तरहका ऊँच नीच देखना पड़ता है। उन्हीं सब कठिनाइयोंसे साधारण लोग बहुत दुःखी हो जाते हैं और समझ लेते हैं कि संसार दुःखका घर है। पर बड़े लोग इन कठिनाइयों और विपत्तियोंसे नहीं घबराते, और दृढ़ता तथा प्रसन्नतापूर्वक सब कठिनाइयों और विपत्तियोंका सामना करते हुए अपने उद्देश्यकी ओर बढ़ते हैं। कठिनाइयों और

विपत्तियाँ उनके लिए शिक्षकका काम देती हैं। उनसे वे जो कुछ सीखते हैं वही अनुभव है और यह अनुभव आगेकी कठिनाइयों और विपत्तियोंसे उनकी रक्षा करता है। संसारमें ऐसे ही लोगोंका जीवन सार्थक और धन्य होता है, जो सहर्ष सारी विपत्तियों और कठिनाइयोंका सामना करके अपने सदाचारकी परीक्षा देते हैं और अन्तमें सफल-मनोरथ होते हैं।

बहुधा विपत्तियाँ और कठिनाइयाँ मनुष्यकी कीर्तिको संसारमें अचल करती हैं, क्योंकि यही विपत्तियाँ और कठिनाइयाँ मनुष्यकी कसौटी हैं। राजा हरिश्चन्द्र, राजा नल और पाण्डवों आदिके आख्यान इसके साक्षी हैं। राजा हरिश्चन्द्रकी सत्यताकी परीक्षा लेनेके लिए ही विश्वामित्रने पहले तो छलसे उनका राज्य ले लिया और तब उन्हें बड़ी ही दरिद्रावस्थामें स्त्री और बालकसहित राज्यसे निकाल दिया। पर हरिश्चन्द्रने सत्य नहीं छोड़ा। वे एक चाण्डालके हाथ बिके और स्मशानपर रहकर मुरदेका आधा कफन लेनेपर नियुक्त हुए। राजकुमार-सहित रानी एक ब्राह्मणके हाथ बिकी। पर विश्वामित्रकी परीक्षा अभी तक पूरी नहीं हुई थी। राजकुमारको साँपने काटा। वह मर गया। रानी—जो उस समय दासीकी दशामें थी—अपनी चादरका आधा टुकड़ा फाड़कर और उसीमें पुत्रका शव लपेटकर घाटपर ले गई। वहाँ राजा हरिश्चन्द्र मिले, जिन्होंने अपनी स्त्री और पुत्रको पहचानकर भी नियमानुसार बिना आधा कफन लिये शव-दाह न करने दिया। यही नहीं, बल्कि स्मशानका कर चुकानेके लिए अपनी रानीसे गलेका मंगलसूत्र तक बेचनेके लिए कहा। रानी भी नहीं चाहती थी कि महाराज हरिश्चन्द्र सत्य-भ्रष्ट और कर्त्तव्य-विमुख हों, अतः स्मशानका ऋण चुकानेके लिए वह नगरमें मंगल-सूत्र बेचनेको गई। लेकिन परीक्षा अभी तक समाप्त नहीं हुई थी, कष्टोंका अंत नहीं हुआ था, राजा हरिश्चन्द्र पूर्ण सत्य-निष्ठ प्रमाणित नहीं हुए थे। उन्हें सत्य-भ्रष्ट करनेके लिए उनपर और अधिक कष्ट डाले गये, पर सबका परिणाम उलटा ही हुआ। राजा हरिश्चन्द्र और भी अधिक सत्य-निष्ठ प्रमाणित हुए। नगरमें रानीपर काशीके राजकुमारका वध

करनेका अभियोग लगाया गया। राजकर्मचारियोंने उसे हरिश्चन्द्रके सामने ला खड़ा किया और उस अभियोगके दण्डस्वरूप उसका सिर काटनेके लिए कहा। कर्त्तव्य-परायण और सत्यनिष्ठ हरिश्चन्द्र खड्ग लेकर अपनी स्त्रीका सिर काटनेके लिए तैयार हुए। इतनेमें विश्वामित्रने वहाँ पहुँचकर उनसे कहा—"हरिश्चन्द्र, एक बार झूठ बोल दो, जरासा सत्यभ्रष्ट हो जाओ, मैं तुम्हारे सारे कष्ट दूर कर दूँगा और तुम्हें सारा राज्य लौटा दूँगा।" लेकिन हरिश्चन्द्रने उस समय जो उत्तर दिया वह आजतक उनकी कीर्तिको अटल रक्खे हुए है। उन्होंने कहा—"महाराज, राज्य क्या मुझे इन्द्रासन भी मिले तो भी मैं कदापि झूठ न बोलूँगा, कदापि सत्यभ्रष्ट न होऊँगा।" राजा हरिश्चंद्र अपनी स्त्रीका बध करनेके लिए तैयार हुए—कर्त्तव्य-परायणता और सत्यनिष्ठाकी पराकाष्ठा हो गई। सारे कष्ट स्वप्नकी तरह दूर हो गये। उनका पुत्र जी उठा, वह और उनकी स्त्री दोनों दासत्वसे मुक्त हो गये और उन्हें फिरसे सारा राज्य मिल गया। पर ये सब बातें उनकी उस कीर्त्ति और उच्च आदर्शके सामने तुच्छ थीं, जो वह अपने पीछे छोड़ गये। इसी लिए आर्य्य क्षेमीश्वरको चण्ड कौशिकमें लिखना पड़ा—

> सुखं वा दुःखं वा किमिव हि जगत्यरित नियतम्,
> विवेकप्रध्वंसाद्भवति सुखदुःखव्यतिकरः।
> मनोवृत्तिः पुंसां जगति जयिनी कापि महताम्
> यया दुःखं दुःखं सुखमपि सुखं वा न भवति॥
>
> —चण्डकौशिक, चतुर्थ अंक।

अर्थात्—क्या सुख और दुःख संसारमें नियत हैं? विवेकके नष्ट होनेसे ही सुख और दुःख होता है। श्रेष्ठ लोगोंकी मनोवृत्ति इतनी बलवती होती है कि उन्हें दुःखमें दुःख और सुखमें सुख जान ही नहीं पड़ता।

इसी प्रकार राजा नल स्वयं साईस बने, उनकी रानी दमयन्ती दासी हुई। दोनों एक दूसरेके वियोगमें बहुत ही विह्वल हुए, लेकिन कभी

सदाचार नहीं छोड़ा। इसी लिए उनके दुःखोंका अंत भी हुआ और उन्होंने फिर अपना राज्य प्राप्त किया। पाण्डवोंपर भी कम विपत्तियाँ नहीं पड़ी थीं, वे जंगलजंगल भटकते फिरे, बड़े बड़े कष्ट भोगते रहे, बहुत ही थोड़ी युद्धसामग्री लेकर कौरवोंके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए और अन्तमें विजयी हुए। वीरवर राणा प्रताप जंगल जंगल घूमे, कंदराओंमें छिपते फिरे और कई कई दिनतक बाल-बच्चोंसमेत भूखे रहे और इस प्रकार घोर विपत्तिमें उन्होंने पचीस वर्ष बिताये। लेकिन उन्होंने अकबरकी अधीनता स्वीकार करनेका कभी स्वप्नमें भी ध्यान नहीं किया और अंतमें विजयी होकर अपनी मातृभूमिका उद्धार किया। उन्हें इतनी कठिनाइयाँ सहते और फिर भी स्वाधीनता देवीकी आराधाना करते देख स्वयं अकबरको उनकी दृढ़ता और सहिष्णुता आदिकी प्रशंसा करनी पड़ी थी। राजा हरिश्चन्द्र, नल, पाण्डवों और प्रताप आदिपर ऐसी ऐसी घोर विपत्तियाँ पड़ी थीं कि पुस्तकोंमें उनका वर्णन पढ़कर, नाटकोंमें अभिनय देखकर अथवा यों ही स्मरण करके आज भी प्रत्येक सहृदय मनुष्यकी आँखोंसे आँसुओंकी धारायें बहने लगती हैं। लेकिन यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो जान पड़ेगा कि इनकी विजय-प्राप्ति और कीर्ति केवल कठिनाइयाँ सहनेके कारण ही हुई है। यदि इन लोगोंपर इतनी विपत्तियाँ न पड़ी होतीं, इतनी अधिक परीक्षायें न हुई होतीं तो इनके सद्गुणोंका इतना विकाश असम्भव था।

जो लोग वीर और सामर्थ्यवान् होते हैं, वे कभी विपत्तियों या कठिनाइयोंसे नहीं घबराते, बल्कि बराबर उनका सामना करते हुए आगे बढ़ते रहते हैं और जीवन-निर्वाहका यही सर्वश्रेष्ठ प्रकार है। एक ही हाथमें पेड़ नहीं गिर पड़ता, उसे गिरानेके लिए निरन्तर कुल्हाड़ी चलानेकी आवश्यकता होती है। संसारमें आजतक जितने महान् पुरुष हो गये हैं उन सबको भीषण कठिनाइयाँ सहनी पड़ी थीं और घोर परिश्रम करना पड़ा था। कठिनाई और परिश्रम यही दोनों बातें ऐसी हैं जो मनुष्यको वास्तविक बल प्रदान करती हैं, उसके गुणोंका विकास

करती हैं और उसकी कीर्तिको अटल तथा अचल बनाती हैं। पवित्र अग्नि उत्पन्न करनेके लिए लोहेको चकमकके साथ जोरसे रगड़ना पड़ता है। प्रायः केतुओंका पता ग्रहणके समय लगता है। सोनेकी कान्ति तपानेसे बढ़ती है। मनुष्यकी शक्तिका परिचय भी विपत्तिकालमें ही मिलता है। यदि संसारमें विपत्तियाँ और कठिनाइयाँ न होतीं तो आज हम महात्माओं और महान् पुरुषोंको इतनी अधिक संख्यामें गिननेमें भी समर्थ न होते।

अकर्मण्य रहकर चुपचाप जीवनका नाश करनेकी अपेक्षा कर्त्तव्य आरम्भ करके कठिनाइयाँ सहना कहीं अधिक उत्तम है। बिना युद्धके कभी विजय-प्राप्ति नहीं होती। यदि कठिनाइयाँ न होतीं तो संसारमें उद्योगकी आवश्यकता ही न रह जाती, सब काम बिना प्रयासके आप ही आप हो जाते। यदि संसारमें प्रलोभन न होते तो आत्म-संयमनकी जरूरत ही न रह जाती और उस दशामें सद्गुणोंका कोई मूल्य भी न रह जाता। यदि संसारमें कष्ट न होते तो धैर्य्यका कोई महत्त्व ही न रह जाता। तात्पर्य्य यह कि कठिनाइयाँ प्रलोभन और कष्ट आदि वास्तवमें मनुष्यके सद्गुणोंके विकासके लिए बहुत ही आवश्यक हैं, अतः उनसे कभी घबराना न चाहिए।

कठिनाइयों और विपत्तियोंकी तरह प्रायः दरिद्रता भी मनुष्यके अभ्युदयका कारण हुआ करती है। मनुष्यको परिश्रमी और कर्त्तव्य-परायण बननेमें जितनी अधिक सहायता दरिद्रतासे मिलती है उतनी सम्पन्नतासे नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त संसारकी वास्तविक दशा और तत्त्वको प्रसिद्ध हबशी विद्वान् बुकर टी० वाशिंगटनने बहुत ही अच्छी तरह समझा था। यह तत्त्व उन्हें इतना महत्त्वपूर्ण जान पड़ा था कि अपनी My Larger Education नामक पुस्तकके आरम्भमें ही उन्होंने लिखा है—"पहले पहल तो मुझे इस बातका बहुत दुःख हुआ करता था कि मेरा जन्म एक बहुत ही दरिद्र कुलमें हुआ है और उससे भी अधिक दुःख मुझे इस बातका होता था कि मेरा जन्म दास-

कुलमें हुआ है। लेकिन मेरा अन्तःकरण यह बात कहता था कि जिस स्थितिमें ईश्वरने मनुष्यको जन्म दिया है उस स्थितिके लिए दुःख या पश्चात्ताप करना बड़ी भारी दुर्बलता और कायरता है और ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों मुझे यह बात और भी ठीक जँचती गई। * * * आगे चलकर मुझे यह बात भी मालूम हो गई कि विरोध और प्रतिकूल दशासे और सब त्रुटियाँ पूरी हो जाती हैं। यही नहीं बल्कि विरोध जितना ही प्रबल हो, शक्तिमें उतनी ही वृद्धि होती है। * * * स्वतंत्रता मिलनेके समय हबशियोंके मार्गमें जो कठिनाइयाँ थीं, उन्नति करनेमें प्रायः उन्हीं कठिनाइयोंसे उन्हें उत्तेजना मिली थी। यदि हबशियोंको दासत्व-कालमें पढ़ने लिखनेकी मनाही न होती तो स्वतंत्रता प्राप्त करनेके पचास वर्षके अंदर ही वे शिक्षामें इतनी अधिक उन्नति कदापि न कर सकते। अनुभव और निरी-क्षणसे मुझे ज्ञात हुआ है कि जो लोग किसी जाति या समाजसे अच्छी अच्छी बातें छिपा रखते हैं, वे ही लोग उस जाति या समाजको उन अच्छी बातोंके प्राप्त करनेमें प्रकारान्तरसे सहायक होते हैं; अर्थात् विरो-धसे ही सहायता मिलती है। * * * * * * यशस्वी लोगोंमेंसे बहु-तोंको कठिनाइयाँ सहनी पड़ी हैं और विकट प्रश्नोंकी मीमांसा करनेमें उन्हें जो विशद मानसिक शक्ति प्राप्त हुई है, वह सुखसे जीवन बितानेवाले लोगोंको कदाचित् ही मिलती है। अनुभवसे मुझे यह भी मालूम हो चुका है कि वे लोग दयापात्र नहीं हैं जिन्हें कठिन प्रश्नों और प्रसंगोंका सामना करना पड़ता है, बल्कि उलटे उन लोगोंपर दया आनी चाहिए जिन्हें किसी प्रश्नकी मीमांसा ही नहीं करनी पड़ती। ऐसे बेचारोंका बड़ा भारी दुर्भाग्य ही समझना चाहिए, क्यों कि उन्हें अपनी योग्यता दिख-लाने और बढ़ाने, अपनी निसर्गदत्त शक्तिका अनुशीलन करके उसका विकास करने और जीवनका रहस्य जानकर उसके स्वामी बननेका अवसर ही नहीं मिलता। अर्थात् सुख-सामग्री वास्तवमें मनुष्यका एक विशेष प्रकारका दुर्भाग्य ही है।"

इन्हीं मि० बुकर टी० वाशिंगटनने अपनी Up from Slavery या आत्मोद्धार नामक पुस्तकमें अमेरिकाके गोरों और हबशी दासोंकी तुलना करके यह दिखलाया है कि सुखसे रहनेवाले गोरों और उनके दास बनकर रहनेवाले हबशियोंकी दशामें कुछ विशेष अंतर नहीं था। जिस समय अमेरिकासे दासत्वकी प्रथा नहीं उठी थी उस समय गोरे और काले दोनों ही, जहाँतक हो सकता था, काम करनेसे जी चुराते थे। हबशियोंको तो विवश होकर काम धन्धा करना ही पड़ता था, पर गोरे एकदम निरुद्यमी और आलसी हो गये थे। गोरोंके बालक न तो कोई शिल्प या व्यापार सीखते थे और न उनकी बालिकायें पढ़ती लिखती या गृहस्थीका काम-काज सीखती थीं। सब काम अशिक्षित गुलामोंपर ही छोड़ दिये जाते थे जिससे गृहस्थीकी बहुत दुर्दशा होती थी। कुप्रबन्धके कारण गृहस्थीका सुख किसीको न मिलता था। मि० वाशिंगटनने लिखा है कि दासत्व-प्रथाके उठ जानेपर शिक्षा और स्वामित्वके अधिकारको छोड़कर शेष प्रायः सभी बातोंमें गोरे और हबशी दोनों समान थे। गोरे किसी प्रकारका कारबार नहीं कर सकते थे और परिश्रम करनेमें अपनी अप्रतिष्ठा समझते थे। हाँ, हबशियोंने अवश्य ही कुछ छोटे मोटे काम सीख लिये थे और परिश्रम करनेमें उन्हें किसी प्रकारकी लज्जा भी नहीं होती थी। यही कारण था कि दासत्व-की प्रथा उठ जानेके तीस चालीस वर्ष बाद परिश्रम करने और कठिना-इयाँ सहनेवाले हबशियों तथा आराम करनेवाले गोरोंकी अवस्था समान ही हो गई। हबशियोंने उतने समयमें बहुत उन्नति कर ली और गोरे *प्रायः जहाँके तहाँ रह गये। परिश्रम और कठिनाइयोंने ही हबशियोंकी* दशा सुधारी थी।

इस प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें लगातार परि-श्रम करके और बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ सहकर आश्चर्य-जनक उन्नति की गई हो। छत्रपति महाराज शिवाजीको ही लीजिए; उनके पूर्वज प्रायः दरिद्र और दूसरोंके सेवक ही थे। पर शिवाजीने निरन्तर परिश्रम करके

और कठिनाइयाँ सहकर अन्तमें एक बड़े साम्राज्यकी स्थापना की। नेपोलियन बोनापार्ट कठिनाइयाँ सहते सहते ही एक साधारण सैनिकसे बढ़कर प्रायः सारे यूरोपका स्वामी बन गया। प्रसिद्ध रूसी महात्मा टालस्टायको, महात्मा बननेसे पहले पचास वर्षतक, बड़ी बड़ी विपत्तियोंका सामना करना पड़ा था। उत्तरीय भारतकी राजनीतिक और धार्मिक अवस्थामें विलक्षण परिवर्त्तन करके उसे एक नया रूप देनेवाले खालसा पंथके दसवें और अंतिम गुरु गोविंदसिंहको अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए कुछ कम कठिनाइयाँ नहीं सहनी पड़ी थीं। इसी प्रकार अन्य सभी महापुरुषोंको बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ सहनी पड़ी हैं। यदि उनका जीवन कठिनाइयोंसे पूर्ण न होता और वे उन कठिनाइयोंको सदा तुच्छ समझकर आगे न बढ़ते रहते तो महात्मा-पद तक कदापि न पहुँच सकते और न संसारमें उन्हें कोई जानता ही। इसी लिए एक विद्वानको कहना पड़ा है—"जान पड़ता है, कठिनाइयाँ सहना ही महत्त्वपूर्ण जीवनका रहस्य है।" भर्तृहरिने उत्तम पुरुषोंका लक्षण यही बतलाया है। उन्होंने कहा है,—

> प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
> प्रारभ्य विघ्नविहता विरमंति मध्याः।
> विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
> प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति॥

अर्थात्–छोटे लोग अड़चनोंके भयसे कोई काम आरम्भ ही नहीं करते। मध्यम लोग आरम्भ तो करते हैं पर विघ्न पड़नेपर बीचमें ही छोड़ देते हैं। पर जो लोग उत्तम होते हैं वे अड़चनोंके आने पर भी आरम्भ किये हुए कामको नहीं छोड़ते।

यह समझना बड़ी भारी भूल है कि मनुष्य सदा सफल होकर ही सफल-मनोरथ होता है; नहीं, सफल-मनोरथ होनेके लिए पहले विफल-मनोरथ होना आवश्यक और अनिवार्य्य है। विफलताओंका अनुभव ही

लिखा गया था। इटली और हंगरीके कई अच्छे अच्छे लेखकोंने भी जेलमें रहकर उत्तम ग्रन्थोंकी रचना की थी। लोकमान्य तिलकका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'गीता-रहस्य' भी मंडालेके जेलमें ही लिखा गया है जिसके जोड़के ग्रन्थ संसारमें बहुत ही थोड़े निकलेंगे। लेखक प्रायः राजनीतिक कारणोंसे ही जेलमें भेजे जाते हैं। पर सभी देशों और जातियोंमें यह देखा गया है कि जो लेखक आदि राजनीतिक कारणोंसे जेल जाते हैं वे जेलमें ऐसे अच्छे अच्छे काम करते हैं जिनका समाज और देशपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। भारतमें राजनीतिक कैदियोंको भी प्रायः चक्की ही पीसनी पड़ती है, नहीं तो इस अवसरपर इसी देशके कई अच्छे अच्छे उदाहरण दिये जा सकते थे।

यदि हम अपने उद्दिष्ट कार्यका साधन करनेमें विफल-मनोरथ हों, उसके कारण हमपर विपत्ति आ पड़े अथवा हमारे प्राण ही क्यों न ले लिये जायँ, पर तो भी उससे हमारे कार्यकी सिद्धिमें सहायता ही मिलती है। जो लोग किसी काममें अपने प्राण अर्पण कर देते हैं वे मानों अपने अनुगामियोंका रास्ता साफ करते हैं और जब उनका अभीष्ट सिद्ध हो जाता है तब उसका यश बहुधा उन्हींको मिलता है। किसी कार्यके लिए परिश्रम करते करते मरनेवालोंकी मृत्यु और लोगोंको इतना अधिक उत्साहित करती है कि वह कार्य अपेक्षाकृत बहुत ही शीघ्र हो जाता है। बहुतसे बड़े बड़े आदमियोंके विषयमें तो यहाँतक कहा जा सकता है कि उनका वास्तविक जीवन उनकी मृत्युके समयसे ही आरम्भ होता है। मरकर ही वे ख्याति पाते हैं और मरकर ही वे और लोगोंको अपना अनुगामी बनाते हैं। राज्यकी ओरसे जिन लोगोंको कारागारवासका दण्ड दिया जाता है, समाज और देशमें उनके विचार और भी शीघ्रता तथा अधिकतासे फैलते हैं; और राज्य जिन लोगोंको फाँसी देता है उनके अनुयायियोंकी संख्या आश्चर्यजनक रूपमें बढ़ जाती है। ईसाई धर्मके इतने अधिक प्रचारका मुख्य कारण यही है कि उसके प्रवर्त्तक ईसाको फाँसी दी गई थी। लवलेस नामक एक कैदी कविने कहा है,—

मनुष्यको सफल-मनोरथ होनेके योग्य बनाता है। विफलतायें मनुष्यको उसके दोष और त्रुटियाँ बतलाती हैं, उन्हें विचारपूर्वक नये नये उपाय निकालनेमें समर्थ बनाती हैं, आत्म-संयमन और आत्मनिर्भरता सिखलाती हैं। बार बार ठोकर और धोखा खाकर ही मनुष्य पूर्ण होता है। अपने आसपास ही देखिए, जिन लोगोंने अपने जीवनमें जितनी ही अधिक ठोकरें खाई हैं वे उतने ही अधिक निपुण और कर्त्तव्य-परायण बने हैं। कर्त्तव्याकर्त्तव्यका पूरा पूरा ज्ञान ठोकरें खानेसे ही होता है।

योग्य और समझदार मनुष्यको तो विफलताओंसे और भी अधिक लाभ होता है। प्रायः लोग एक ओरसे विफल-मनोरथ होकर किसी दूसरी अच्छी ओर ही लग जाते हैं और उस दशामें बहुत अच्छा काम कर दिखाते हैं। कई अँगरेज प्रसिद्ध कवि ऐसे हैं जिन्होंने पहले वकालत और उपदेशक आदिका काम करना चाहा था, पर उन कामोंमें उन्हें सफलता नहीं हुई। विफलताने उन्हें एक ऐसे दूसरे मार्गपर लगा दिया जिसमें उन्हें अपनी उत्कृष्ट योग्यताका परिचय देनेका बहुत अच्छा अवसर मिला, उन्होंने अच्छी ख्याति पाई और बहुत कुछ लोकोपकार किया। उर्दूके सुप्रसिद्ध लेखक पं० रत्ननाथ सरशार और बंगलाके प्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन दत्त पहले वकालतके काममें बुरी तरह विफल-मनोरथ हो चुके थे। लेकिन उन लोगोंमें प्रतिभा थी, विफलताने ठोकर लगाकर उसे जगाया और ठीक मार्गपर लगा दिया। अब उर्दू और बंगलासाहित्यमें चिरकाल तक इन महानुभावोंके नाम अमर रहेंगे।

यही नहीं बल्कि घोर कष्ट और विपत्तिके समय भी मनुष्य अपनी बुद्धि ठिकाने रखकर अच्छे अच्छे काम कर सकता है। बल्कि कष्टके समय मनुष्यकी प्रतिभा थोड़ासा जोर देनेपर ही बहुत कुछ विकसित हो सकती है। यूरोपमें कई ऐसे बड़े बड़े लेखक और कवि हो गये हैं जिनका सर्वसाधारणमें आज भी बहुत आदर होता है। बोटियस, बनि-न्यन, येन डेवेनेन्ट, बेक्सटर आदिने अच्छे अच्छे ग्रन्थ जेलखानेमें ही लिखे थे। प्रसिद्ध ग्रन्थ रॉबिन्सन क्रूसोका अधिकांश जेलखानेमें ही

लिखा गया था। इटली और हंगरीके कई अच्छे अच्छे लेखकोंने भी जेलमें रहकर उत्तम ग्रन्थोंकी रचना की थी। लोकमान्य तिलकका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'गीता-रहस्य' भी मंडालेके जेलमें ही लिखा गया है जिसके जोड़के ग्रन्थ संसारमें बहुत ही थोड़े निकलेंगे। लेखक प्रायः राजनीतिक कारणोंसे ही जेलमें भेजे जाते हैं। पर सभी देशों और जातियोंमें यह देखा गया है कि जो लेखक आदि राजनीतिक कारणोंसे जेल जाते हैं वे जेलमें ऐसे अच्छे अच्छे काम करते हैं जिनका समाज और देशपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। भारतमें राजनीतिक कैदियोंको भी प्रायः चक्की ही पीसनी पड़ती है, नहीं तो इस अवसरपर इसी देशके कई अच्छे अच्छे उदाहरण दिये जा सकते थे।

यदि हम अपने उद्दिष्ट कार्यका साधन करनेमें विफल-मनोरथ हों, उसके कारण हमपर विपत्ति आ पड़े अथवा हमारे प्राण ही क्यों न ले लिये जायँ, पर तो भी उससे हमारे कार्यकी सिद्धिमें सहायता ही मिलती है। जो लोग किसी काममें अपने प्राण अर्पण कर देते हैं वे मानों अपने अनुगामियोंका रास्ता साफ करते हैं और जब उनका अभीष्ट सिद्ध हो जाता है तब उसका यश बहुधा उन्हींको मिलता है। किसी कार्यके लिए परिश्रम करते करते मरनेवालोंकी मृत्यु और लोगोंको इतना अधिक उत्साहित करती है कि वह कार्य अपेक्षाकृत बहुत ही शीघ्र हो जाता है। बहुतसे बड़े बड़े आदमियोंके विषयमें तो यहाँतक कहा जा सकता है कि उनका वास्तविक जीवन उनकी मृत्युके समयसे ही आरम्भ होता है। मरकर ही वे ख्याति पाते हैं और मरकर ही वे और लोगोंको अपना अनुगामी बनाते हैं। राज्यकी ओरसे जिन लोगोंको कारागारवासका दण्ड दिया जाता है, समाज और देशमें उनके विचार और भी शीघ्रता तथा अधिकतासे फैलते हैं; और राज्य जिन लोगोंको फाँसी देता है उनके अनुयायियोंकी संख्या आश्चर्यजनक रूपमें बढ़ जाती है। ईसाई धर्मके इतने अधिक प्रचारका मुख्य कारण यही है कि उसके प्रवर्त्तक ईसाको फाँसी दी गई थी। लवलेस नामक एक कैदी कविने कहा है,—

पत्थरके प्राकार न कारागार कहाते,
लोहेके छड़ घेर नहीं पिंजड़े हो जाते ।
जो सब दूषणरहित विमलमति धीर शांत-चित,
गिनते शान्तकुटीर इन्हें एकान्तवासहित ॥ *

मिलटनने एक स्थलपर कहा है,—" जो मनुष्य सबसे अधिक कठिनाइयाँ सह सकता है, वही सबसे अधिक और अच्छा काम कर सकता है । कर्त्तव्य-पथ बड़ा ही बीहड़ और कंटकाकीर्ण है और कर्त्तव्य-पालन प्रायः कठिनाइयों और आपत्तियोंमें ही होता है । कर्त्तव्य-परायण मनुष्यका मृत्यु कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती; उसकी स्मृति सदा बनी रहती है । सुख और भोग-विलाससे मनुष्यके गुणोंका कभी विकास नहीं होता, विकास सदा दुःखों और कष्टोंसे ही होता है । जिस प्रकार सुगन्धि देनेके लिए कुछ पत्तियाँ रगड़ी और मसली जाती हैं उसी प्रकार कुछ लोगोंको प्रतिमाके विकासके लिए पीड़ित होना पड़ता है । बहुधा साधारण योग्यताके मनुष्य विकट प्रसंग आ पड़नेपर अच्छी योग्यताका परिचय देते हैं और दुर्बल मनुष्य भी अपना बहुत कुछ बल दिखला देते हैं । जिस प्रकार विद्या, बुद्धि और धन आदि अच्छी बातोंका भी बहुत बुरा उपयोग किया जा सकता है उसी प्रकार कठिनाइयों और विपत्तियों आदिका भी सदुपयोग किया जा सकता है । "

विपत्ति ही मनुष्यको बलवान् बनाती है और उससे जीवनका सदुपयोग कराती है । दुःख भी ईश्वर-प्रदत्त होता है और सुख भी । पर सुखकी अपेक्षा दुःख ही मनुष्यको वास्तविक मनुष्य बनाता है । बड़े बड़े उद्दंड और क्रोधी मनुष्य विपत्ति पड़नेपर नम्र हो जाते हैं और सबसे

---

* Stone walls do not a prison make,
Nor iron bars a cage;
Mind innocent and quiet take
That for an hermitage.

प्रेम-पूर्ण व्यवहार करने लगते हैं। एक महात्माका वचन है,—"जिसने दुःख नहीं उठाया वह कुछ नहीं जानता।" जिस प्रकार जेलमें रहकर बड़े बड़े काव्य और ग्रन्थ लिखनेवालोंके उदाहरण दिये गये हैं, उसी प्रकार ऐसे लोगोंके उदाहरण भी दिये जा सकते हैं जिन्होंने बहुत अधिक मानसिक, शारीरिक या आर्थिक कष्टके समय अच्छे अच्छे काम किये हैं। डारविन, डोन और शिलर आदिने रुग्णावस्था अथवा दरिद्रावस्थामें ही बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे थे। सूरदासने अन्धे रहकर ही सूरसागरकी रचना की थी और तुलसीदासने बाँहमें बहुत अधिक पीड़ा होनेके समय ही हनुमान-बाहुक बनाया था। तात्पर्य्य यह कि संसारमें कभी हमें दुःखों और आपत्तियोंकी परवा न करनी चाहिए। हम अपने जीवनको जैसा बनाना चाहें, वह वैसा ही बन सकता है और अपनी परिस्थिति और संसारकी दूसरी चीजोंका जैसा उपयोग करना चाहें वैसा ही उपयोग कर सकते हैं। हमें सदा इस सिद्धान्तका ध्यान रखकर अपना सांसारिक जीवन व्यतीत करना चाहिए कि अपने जीवनका बनाना या बिगाड़ना हमारे ही अधिकारमें है। यदि हम अच्छे बनना चाहें तो अच्छे बन जायँगे और यदि बुरे बनना चाहें तो बुरे बन जायँगे।

चौथा प्रकरण।

परिश्रम और कार्य्य।

[*कार्य्यका महत्त्व—निकम्मे मनुष्य ही दुराचारी और कुकर्म्मी होते हैं—परिश्रम करनेमें ही प्रतिष्ठा है—प्राचीन भारत, चीन और मिस्रके उदाहरण—परिश्रमसे घबराना—आलस्य—मनकी चंचलता—सारी उत्तम बातें काम करनेका ही फल हैं—परिश्रमका परिणाम सदा शुभ होता है—परिश्रम ही सफलताका मूल्य है—सब कामोंके लिए परिश्रम आवश्यक है—कुछ उदाहरण—काम करनेमें अनावश्यक शीघ्रता—प्रत्येक काममें पूरा पूरा ध्यान दो—निपुणता—केवल एक काम करो—प्रत्येक कामको कर्त्तव्य समझकर करना चाहिए—धैर्य और अध्यवसाय—कोलंबसका उदाहरण।*]

पिछले प्रकरणमें हम यह बतला चुके हैं कि संसारमें प्रवेश करते ही युवक कुसंगतिमें पड़ जाते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि उनका सारा जीवन नष्ट हो जाता है। इस प्रकार नष्ट होनेसे बचनेका जैसा अच्छा उपाय उत्तम संगतिमें रहना है वैसा ही अच्छा उपाय किसी कार्य्यमें लग जाना भी है। प्रायः युवक अपने मातापिताके भरोसेपर ही अपने जीवनका सर्वोत्तम भाग युवावस्था नष्ट कर देते हैं और शेष जीवन बड़ी ही दुरवस्थामें बिताते हैं। यदि संसारमें प्रवेश करते ही युवक किसी काममें लग जायँ तो उनके कुमार्गमें फँसनेकी बहुत ही थोड़ी सम्भावना रह जाती है। प्रायः देखा गया है कि कुकर्ममें वे ही लोग प्रवृत्त होते हैं जिनके पास कोई काम-धन्धा नहीं होता। जिन लोगोंका सारा समय उपयोगी और आवश्यक कामोंमें बँटा रहता है उन्हें दुष्टोंके साथ घूमने फिरने और कुमार्गमें लगनेकी फुरसत ही नहीं रह जाती। अँगरेजीकी एक कहावतका भी यही अभिप्राय है कि शैतानका अधिकार प्रायः खाली हाथोंपर हुआ करता है। अर्थात् जो लोग किसी प्रकारका उद्योग या कार्य आदि नहीं करते वही कुमार्गमें फँसते हैं। इसी लिए एक विद्वानने कहा है कि मनुष्यको सदाचारी बनानेका सबसे

अच्छा साधन काम ही है। काम मनुष्यको शान्त, कर्त्तव्य-परायण, धीर, नम्र, परिश्रमी और साहसी बनाता है। यदि वास्तविक दृष्टिसे देखिए तो कार्य्य ही मनुष्यों और जातियोंका जीवन तथा उनकी स्थिति और उन्नतिका कारण है। विना कार्य्यके उन्नति तो दूर रही, किसीका अस्तित्व ही नहीं रह सकता।

संसारमें ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत ही कम है जिन्हें आजन्म किसी प्रकारका परिश्रम करनेकी आवश्यकता न पड़ती हो और जो आरामसे पड़े पड़े बाप-दादाओंकी कमाई खाकर ही दिन बिताते हों। और यदि ऐसे लोग हों भी तो मानना पड़ेगा कि वे निकम्मे रहकर एक प्रकारकी आत्महत्या ही कर रहे हैं। ऐसे लोगोंको भी प्रायः कुछ न कुछ कार्य्य, कुछ न कुछ उद्योग, कुछ न कुछ परिश्रम करना ही पड़ता है। और जो लोग किसी प्रकारका उद्योग या श्रम नहीं करते वे लोग अपने जीवन और वैभवका नाश करते हैं। लेकिन संसारमें ऐसे ही लोगोंकी संख्या बहुत अधिक है जिन्हें अपने जीवनके निर्वाहके लिए अनिवार्य्य रूपसे कुछ न कुछ परिश्रम या कार्य्य करना पड़ता है और ऐसे ही लोगोंका जीवन सार्थक है। विना परिश्रम या कार्य्यके जीवनका यथार्थ उपयोग हो ही नहीं सकता। यदि हमारे पास विपुल सम्पत्ति हो, यदि हमें संसारमें किसी पदार्थकी कमी न हो तो भी जीवनका ठीक उपयोग करने और उसका वास्तविक सुख पानेके लिए हमें यथासाध्य परिश्रम और कार्य्य करते रहना चाहिए।

परिश्रम या कार्य्य करनेमें अपनी किसी प्रकारकी अप्रतिष्ठा समझना बड़ी भारी मूर्खता है। वास्तविक अप्रतिष्ठा तो निकम्मे होनेमें है। संसारमें सुखके जितने साधन हैं उन सबकी प्राप्ति कार्य्य करनेसे ही होती है और जितने कष्ट हैं वे सब अकर्मण्य रहनेसे ही होते हैं। सदाचार, कीर्त्ति और वैभव तीनों परिश्रमके ही फल हैं। अकर्मण्यतासे मनुष्य दुराचारी, नीच और दरिद्र हो जाता है। परिश्रमी और कर्म्मठ लोग दूसरे देशोंमें जाकर राज्य करते हैं और आलसी तथा अकर्मण्य या तो घरमें

पड़े पड़े कष्ट भोगते हैं और या बाहर निकलकर ठोकरें खाते हैं। जिस जातिके लोग परिश्रम और कार्य्य करते हैं वही जाति उन्नतिके सर्वोच्च शिखरपर पहुँचती है और जिस जातिके लोग कामचोर और निकम्मे होते हैं वह जाति नीचे गिरती गिरती अन्तमें नष्ट हो जाती है।

इतिहास इस बातका साक्षी है कि परिश्रमी जाति सदा स्वतंत्र, सम्पन्न और सुखी रहती है तथा निरन्तर उन्नति करती रहती है; और जिस जातिमें अकर्मण्यता आ जाती है उसके पराधीन, दरिद्र और दुःखी होनेमें अधिक विलंब नहीं होता। भारतवर्षको ही लीजिए। जिस समय यहाँके निवासी प्राचीन आर्य्य परिश्रमी और कर्म्मठ होते थे उस समय यह देश विद्या, कला, धर्म्म, नीति आदिमें अन्य देशोंका गुरु और वैभवमें मानों राजा था। उन लोगोंके परिश्रमी और कर्म्मशील होनेका पता वेदोंतकके बहुतसे मंत्रोंसे लगता है जिनमें यथासाध्य परिश्रम करनेके उपरान्त उन्होंने देवताओंसे यथेष्ट फल पानेकी प्रार्थनायें की हैं। चीन देश भी उसी समय उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुँचा था जब कि वहाँके निवासी परिश्रम और कार्य्यका माहात्म्य अच्छी तरह जानते थे। प्राचीन कालके चीनी अपनी आवश्यकताके सभी पदार्थ स्वयं उत्पन्न करनेमें बड़े ही सिद्धहस्त थे और इस कामके लिए आजतक उनकी प्रसिद्धि है। वहाँके निवासी प्राचीन आर्य्योंकी तरह बड़े उत्साहसे खेतीबारी करते थे और उसके लिए शारीरिक परिश्रम करनेमें वे अपनी बड़ी भारी प्रतिष्ठा समझते थे; यहाँतक कि प्रति वर्ष जोताईका काम राजा अपने हाथसे आरम्भ करता था। यूरोपकी रोमन जाति जिस समय उन्नति शिखरपर चढ़ रही थी उस समय उस जातिके लोगोंमें परिश्रमका बड़ा मान था। बड़े बड़े वीर और योद्धा रण-क्षेत्रसे लौटकर हल जोतते तथा शारीरिक परिश्रमके दूसरे काम करते थे। पर जिस दिनसे रोमन लोगोंने परिश्रमको अपमानकारक समझना आरम्भ किया उसी दिनसे उनका अधःपतन भी आरम्भ हो गया।

जातियोंकी तरह व्यक्तियोंके भी इसी प्रकार बहुतसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें निरन्तर परिश्रम और कार्य्य करनेवालोंने अच्छा यश और वैभव प्राप्त किया हो, अथवा जिनमें अकर्म्मण्य मनुष्योंने अपने पूर्वजोंकी बनी बनाई कीर्त्ति और सम्पत्ति नष्ट कर दी हो। लेकिन इस स्थलपर ऐसे उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं हैं; क्योंकि एक तो यह सिद्धान्त स्वतःसिद्ध है और दूसरे इस प्रकारके दो चार दस बीस उदाहरण प्रत्येक नगर और प्रत्येक गाँवमें मिलते हैं। इस लिए यदि जीवनमें सबसे अधिक आवश्यक और चिन्तनीय कोई बात है तो वह केवल यही कि मनुष्यकी प्रवृत्ति सदा परिश्रम और कार्यकी ओर बनी रहे और वह आलसी या निकम्मा न हो जाय। आलसी और अकर्म्मण्य बने रहनेकी प्रवृत्ति लोगोंमें स्वभावतः अधिक होती है। एक बार एक अँगरेजने एक ऐसे यात्रीसे—जो संसारके प्रायः सभी देशोंमें पर्य्यटन कर चुका था—पूछा—"महाशय, आपने कौनसी बात ऐसी देखी है जो सभी जातियों और देशोंके लोगोंमें समान रूपसे विद्यमान हो।" यात्रीने टूटी फूटी अँगरेजीमें उत्तर दिया—"मैं समझता हूँ कि सब लोग परिश्रम करनेसे हिचकते हैं।" बहुधा लोग परिश्रम बिना किये ही उसका फल प्राप्त करना चाहते हैं—बिना मार्ग चले ही उद्दिष्ट स्थानतक पहुँचना चाहते हैं। प्रसिद्ध विद्वान् जेम्स मिलको तो यह बात यहाँ तक खटकी है कि उसने लोगोंकी इसी प्रवृत्तिको शासन-प्रणालीके स्थापनका कारण बतलाया है। इसी लिए यह कहा जाता है कि लोगोंको आलसी होनेसे बचानेका प्रयत्न ही सबसे अधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है।

हमारे यहाँ कहा है—"आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः।" आलसी मनुष्य सदा खिन्न, दुःखी और विक्षिप्तसा रहता है। एक अँगरेज ग्रन्थकारने लिखा है—"अलसता हमारे शरीर और मनका विष है, दुष्टताकी धात्री है, समस्त दोषोंकी माता है, सात महापातकोंमेंसे एक है, शैतानकी गद्दी, तकिया और रहनेकी खास जगह है। शारीरिक आलस्यकी अपेक्षा मानसिक आलस्य और भी बुरा है। वह मनका जंग है,

प्लेग है, बल्कि साक्षात् नरक है। जिस प्रकार बन्द पानीमें कीड़े पड़ते और बढ़ते हैं उसी प्रकार आलसी मनमें बुरे विचार उत्पन्न होते और बढ़ते हैं। उससे आत्माका नाश होता है। मैं यह बात दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि आलसी मनुष्य चाहे किसी दशामें हो वह कभी सम्पन्न नहीं हो सकता, उसे कभी अच्छे मित्र नहीं मिल सकते, वह कभी भाग्यवान् या सुखी नहीं हो सकता। उसे संसारभरकी सारी सुख-सामग्री क्यों न मिल जाय, उसके मनकी सभी कामनायें क्यों न पूरी हो जायँ, पर जब तक वह सुस्त रहेगा तब तक उसे कभी प्रसन्नता न होगी, न तो उसका शरीर अच्छी दशामें रहेगा और न मन। वह सदा क्लान्त, रोगी, उदास और दुःखी बना रहेगा, उसे संसारकी सब चीजें बुरी मालूम होंगी और जीवन एक बोझसा जान पड़ेगा।" तात्पर्य यह कि जो मनुष्य निरोग, सुखी और सम्पन्न होना चाहता हो उसे आलस्य छोड़ देना चाहिए।

जिन्हें लोग आलसी कहते हैं वे प्रायः शरीरसे ही आलसी होते हैं, मनसे नहीं। किसीका मन कभी स्तब्ध नहीं रहता। इसी लिए गीतामें कहा है,—

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥

मनको व्यापारहीन या स्तब्ध रखना कदापि सम्भव नहीं है, वह सदा चंचल रहता है, कुछ न कुछ सोचा करता है, कुछ न कुछ करता रहता है। यदि हम उसे अच्छे कार्य या मार्गमें न लगावेंगे तो वह अवश्य बुरे कार्य्य या मार्गमें लग जायगा। जो जमीन जोती बोई नहीं जायगी उसमें निरर्थक घास-पात ही नहीं बल्कि कँटीदार झाड़ भी आप-ही-आप निकल आवेंगे। यही कारण है कि कर्म्ममार्गको हमारे यहाँ इतनी प्रधानता दी गई है। पर यह हमारे देशका दुर्भाग्य ही है कि लोगोंने उसका वास्तविक अभिप्राय बिना समझे ही ज्ञानमार्गको प्रधानता दी है और प्रकारान्तरसे आलसियों और अकर्मण्योंकी संख्या बढ़ाई है।

संसारमें आपको कदाचित् एक भी ऐसा उदाहरण न मिलेगा जिसमें केवल आलस्यसे ही किसीका कोई उपकार हुआ हो, केवल आलस्यने ही किसीको विद्वान्, बलवान् या धनवान् बना दिया हो। हाँ, ऐसे हजारों-लाखों उदाहरण मिलेंगे जिनमें उद्योग और परिश्रम करके लोग दरिद्रतासे निकल कर सम्पन्न, मूर्खतासे निकलकर पण्डित, दुर्बलतासे निकलकर वीर अथवा दुष्टतासे निकलकर साधु बन गये हों। एक डालपर बैठकर उसीको काटनेवाले कालिदास महाकवि हो गये, बीरबल और टोडरमल आदि साधारण स्थितिसे निकलकर अकबरके प्रधानमंत्री बने, शिवाजी सरीखे एक साधारण स्थितिके मनुष्यने इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित किया, नेपोलियन एक साधारण सिपाहीसे बढ़कर प्रायः सारे यूरोपका स्वामी हो गया और बाल्यावस्थामें सदा रोगी रहनेवाले राममूर्तिने छातीपर हाथी खड़ा कर दिखाया। लेकिन जिन लोगोंने किसी प्रकारका परिश्रम या काम नहीं किया उन्होंने अपनी आत्माका और अपनी शक्तिका नाश ही किया है। क्योंकि एक विद्वानका यह मत है कि मनुष्यका मन चक्कीके समान है। यदि उसमें दाने डाले जायँ तो वही पिसेंगे और यदि उसमें कुछ भी न डाला जाय तो वह अपनी रगड़से आप-ही-आप घिसकर छीजेगी।

निकम्मे रहकर समय नष्ट करना मानों अपना जीवन नष्ट करना है। लेकिन छोटेसे छोटा सत्कर्म्म करना भी संसारका कुछ न कुछ कल्याण करना है। सफलता प्राप्त करने और प्रसन्न होनेका संसारमें यदि कोई उपाय है तो वह सच्चे हृदयसे कोई उत्तम कार्य्य करना ही है। जगतके कल्याणके लिए, मानवजातिकी उन्नतिके लिए, अपनी आत्माकी शान्तिके लिए, अपने आचरणके सुधारके लिए और अपना स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिए भी सबसे अच्छा साधन कोई उत्तम कार्य्य करना ही है। एक विद्वानका मत है, कि सप्ताह भर काम करनेसे उतनी थकावट नहीं आती जितनी एक दिन खाली रहनेसे आती है। अतः प्रत्येक मनुष्यको सदा कुछ न कुछ करना चाहिए। जो मनुष्य सच्चे हृदयसे परिश्रम-पूर्वक कोई

काम करता है—वह काम चाहे कितना ही निरर्थक क्यों न हो पर तो भी—उसका कुछ न कुछ शुभ परिणाम होता ही है। यूरोपमें कुछ दिनोंतक लोग कीमिया ढूँढ़नेमें ही समय बिताया करते थे। यद्यपि यह एक बिलकुल ही निरर्थक कार्य्य था, तथापि उसमें लगे रहकर लोगोंने उन असंख्य वैज्ञानिक सिद्धान्तोंका पता लगाया जिनके कारण आजकल संसारकी इतनी अधिक उन्नति हुई है।

व्यर्थ बकवाद करनेकी अपेक्षा कुछ न कुछ काम करना कहीं अच्छा है। डाक्टर जान्सनने कहा है—"बातें पृथ्वीकी कन्यायें हैं, पर कार्य्य स्वर्गके पुत्र हैं।" तुम कोई न कोई काम करो और उसमें अपनी सारी शक्तियाँ लगा दो; यदि तुम अपनी शक्तियोंका उपयोग न करोगे तो अवश्य ही उनका नाश हो जायगा। शक्तियोंका क्या, स्वयं तुम्हारा ही नाश हो जायगा। एक विद्वानने कहा है—"यह संसार भिखमंगोंके लिए नहीं है, बल्कि उनके लिए है जो लड़ते, झगड़ते और विजय प्राप्त करते हैं।"

बिना पूर्ण परिश्रम किये उसका फल प्राप्त करनेकी इच्छा करना बड़ी भारी मूर्खता है। संसारमें प्रत्येक वस्तुका कुछ न कुछ मूल्य हुआ करता है, और वह मूल्य दिये बिना उस वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती। यदि किसी प्रकार बिना मूल्य दिये, बिना उसके लिए परिश्रम किये वह वस्तु हम प्राप्त भी कर लें, तो हम उसे कदापि रक्षित न रख सकेंगे। हमें उसकी कदर ही न मालूम होगी और हम उसे जल्दी ही खो बैठेंगे। पर यदि हम पूर्ण परिश्रम करके उसे प्राप्त करेंगे, मूल्य देकर कोई वस्तु लेंगे तो अवश्य ही हम अच्छी तरह उसका उपयोग भी कर सकेंगे। यदि हमें अपने पूर्वजोंका उपार्जित बहुतसा धन मिल जाय, तो भी कमसे कम उसकी रक्षाके लिए ही हमें परिश्रम करना पड़ेगा, नहीं तो वह बहुत ही शीघ्र नष्ट हो जायगा। इसके अतिरिक्त उस धनकी प्राप्तिपर हमें यह भी समझना चाहिए कि उस धनका संग्रह करनेमें हमारे पूर्वजोंको बहुत ही परिश्रम करना पड़ा होगा, और उनके परिश्रमका फल

ही हमें मिला है। ऐसी अवस्थामें हमें भी यही उचित है कि परिश्रमपूर्वक उस धनकी रक्षा और वृद्धि करें जिसमें आगे चलकर उससे दूसरोंका कल्याण हो सके। यदि कोई दूकानदार किसी भले आदमीसे अपना बाकी रुपया माँगना भूल जाय तो वह भला आदमी आप ही आप उसका रुपया चुका देगा, वह स्वप्नमें भी इस बातका ध्यान न करेगा कि दूकानदार भूल गया है, अब मैं उसे रुपया क्यों दूँ? इसी प्रकार जिस मनुष्यको बिना परिश्रम किये धन मिल जाय उसे भी यही उचित है कि वह परिश्रम करके उसका बदला चुका दे। नहीं तो उसकी गिनती वैसे ही बेईमानोंमें होगी जो महाजनके भूल जानेसे लाभ उठाते हैं और उसके रुपये दबा बैठते हैं।

परिश्रमका महत्त्व इतना अधिक है कि संसारके सभी कामोंमें उसकी कुछ न कुछ आवश्यकता होती ही है। यदि हम केवल अपना शारीरिक सुख ही चाहें, तो उसके लिए भी हमें किसी न किसी प्रकारका यत्न करनेकी आवश्यकता होती ही है। कार्य जितना ही बड़ा होगा उसके लिए उतने ही अधिक परिश्रमकी आवश्यकता होगी। परिश्रम जितना ही अधिक किया जायगा उसका फल भी उतना ही अधिक और उत्तम होगा। जो मनुष्य सुखी होना चाहते हैं उन्हें सदा परिश्रम करना चाहिए। एक विद्वानने तो श्रमको बुद्धिसे भी श्रेष्ठ माना है। और ऐसी दशामें जब कि हम देखते हैं कि साधारण बुद्धिके लोग भी परिश्रम करके बहुत कुछ महत्त्व प्राप्त कर लेते हैं और बड़े बड़े बुद्धिमान् आलसी होनेके कारण ज्योंके त्यों बने रहते हैं तो उक्त सिद्धान्तकी सत्यतामें कोई सन्देह नहीं रह जाता। और जो बुद्धिमान संसारमें उन्नति करते हैं, उन्हें भी उस उन्नतिके लिए बहुत कुछ शारीरिक परिश्रम ही करना पड़ता है। जो लोग यह समझते हैं कि बुद्धिमान् लोग शारीरिक परिश्रम कम करते हैं और प्रायः बैठे बैठे बुद्धिके भरोसे ही चैन करते हैं, वे बड़ी भूल करते हैं। यदि बड़े बड़े राजकर्मचारी आराम-कुरसीपर ही पड़े रहा करें तो या तो वे अपने पदसे ही अलग कर दिये जायँ और या वे राज्य ही

नष्ट कर दें। मुगल-साम्राज्य स्थापित करनेके लिए अकबरको क्या कम शारीरिक श्रम करना पड़ा था? बालाजी विश्वनाथ और नाना फड़नवीस आदि यदि आलसी होते तो पेशवाओंके दरबारमें उन्हें कौन पूछता? बड़े बड़े शास्त्रीय ग्रन्थ देखकर हमें चकित होना पड़ता है। क्या उनके लेखकोंने केवल बुद्धिबलसे ही काम लिया था? सिद्धान्तकौमुदी लिखनेमें भट्टोजी दीक्षितको क्या कम परिश्रम करना पड़ा होगा? काव्यप्रकाश क्या सहजमें ही लिखा गया होगा? उसके लिखनेके लिए तत्कालीन सब काव्योंको अवलोकन करना और अलंकारोंके वर्ग निश्चय करके उनके लक्षण निर्द्धारित करना क्या सहज काम है? आर्य्यभट्ट, वराहमिहिर और भास्कराचार्यने क्या पड़े पड़े ही ज्योतिष् शास्त्रके इतने बड़े बड़े ग्रन्थ लिख डाले होंगे? बड़े बड़े आधुनिक ज्योतिषियोंने अत्यन्त परिश्रम करके वेधके लिए जो बड़े बड़े यंत्र बनाये हैं, भास्कराचार्यके समयमें उन यंत्रोंकी किसीको कल्पना भी नहीं थी। पर तो भी उन्होंने जो सिद्धान्त निश्चित किये थे वे आजतक बिलकुल ठीक उतरते हैं। यह काम कुछ साधारण परिश्रमसे नहीं हो सकता। जिस गीता-रहस्यके जोड़का ग्रन्थ ढूँढ़ निकालनेमें बहुत अधिक परिश्रमकी आवश्यकता है, उस ग्रन्थ-रत्नके लिखनेके लिए लोकमान्य तिलकको प्रायः तीस वर्ष तक परिश्रम करना पड़ा है। डा० जगदीशचन्द्र वसु गद्दीपर पड़े पड़े इतने बड़े वैज्ञानिक नहीं हो गये हैं। वैज्ञानिक परीक्षायें करनेके लिए उन्हें बरसोंतक रात रात भर जागकर सिर खपाना पड़ा है। प्रसिद्ध अँगरेज वैयाकरण काबेटने अत्यन्त दरिद्रावस्थामें बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ सहकर और रात-रात भर जागकर अपना व्याकरण बनाया था। उस समय वह केवल छः आने रोजपर नौकर था। दिनभर उसे मालिकका काम करना पड़ता था और रातको बैठकर वह पढ़ता और लिखता था। धनाभावके कारण वह तेल या बत्ती तक नहीं खरीद सकता था। जाड़ेसे बचनेके लिए वह जो कोयले सुलगाता था, उन्हींके झिलमिले प्रकाशमें वह पढ़ता और लिखता था। अपनी घोर दरिद्रता और घोर परिश्रमका हृदयविदारक वर्णन

करके वह स्वयं पूछता है,—"और जब कि ऐसी ऐसी कठिनाइयाँ झेलकर भी मैं इतना कष्ट-साध्य काम कर सका हूँ—तब क्या संसारमें एक भी युवक ऐसा है जो अपने काम न कर सकनेके लिए कोई बहाना निकाल सके ?"

काबेटके पास धन नहीं था, पर उसमें साहस और बल था। उसकी काम करनेकी इच्छा थी और वह परिश्रमका महत्त्व समझता था। तभी वह इतना बड़ा काम कर सका। सुयोग्य और समर्थ लोग कभी अपनी परिस्थितियोंकी या साधनोंके अभावकी शिकायत नहीं करते; वे अच्छी तरह जानते हैं कि दृढ़प्रतिज्ञ मनुष्य साधनोंके अभावमें भी काम कर ही डालते हैं। अपने सामने पड़नेवाली प्रत्येक वस्तुको वे अपनी कार्य्यसिद्धिका साधन बना लेते हैं। उनके मुँहसे कभी कोई बहाना निकलता ही नहीं। बहना वे ही करते हैं जिनमें योग्यता बिलकुल नहीं होती, जिनमें सामर्थ्यका अभाव होता है। एक विद्वानका मत है कि आजकलके लोगोंमें यह बड़ा भारी दोष है कि वे धनका महत्त्व तो आवश्यकतासे अधिक समझते हैं और अपने बल या परिश्रमका कम; और बहुतसे लोगोंके दुरवस्थामें पड़े रहनेका मुख्य कारण यही है। जिस मनुष्यको अपने बलका विश्वास होता है, जो पूर्ण परिश्रम करता है, वह सब दशाओंमें काम कर ही डालता है।

एमर्सनने लिखा है,—"प्रकृति मनुष्यसे कहती है,—'तुम सदा काम करते रहो, चाहे तुम्हें उसका पुरस्कार मिलता हो और चाहे न मिलता हो। तुम सदा काम करते रहो, तुम्हें उसका पुरस्कार अवश्य मिलेगा। चाहे तुम्हारा काम बढ़िया हो चाहे खराब, चाहे तुम खेत जोतते हो और चाहे कविता करते हो, तुम सदा उसे ईमानदारीसे करो, जी लगाकर करो, इस प्रकार करो कि उससे तुम्हें सन्तोष हो जाय। इससे तुम्हारा मानसिक समाधान होगा और वही सबसे बड़ा पुरस्कार है। चाहे तुम्हें बार बार विफल-मनोरथ क्यों न होना पड़े, तुम उसकी कुछ भी परवा न करो; तुम सफल-मनोरथ होनेके लिए ही उत्पन्न किये गये हो। अच्छी तरह काम करनेका पुरस्कार यही है कि वह काम हो जाय'।"

काम करनेमें मनुष्यको कभी अनावश्यक शीघ्रता न करनी चाहिए। एक कहावत है–" जल्दबाज मुँहके बल गिरता है।" एक और कहावत है–" जल्दीका काम शैतानका होता है।" दोनों ही बातें बहुत ठीक हैं। जल्दबाजी भी किसी कामको उसी तरह बिगाड़ देती है, जिस तरह सुस्ती। इसके अतिरिक्त, जिस काममें अनावश्यक शीघ्रता की जाती है वह कभी ठीक नहीं होता, उसमें अनेक दोष आ जाते हैं। कुछ लोग समझते हैं कि जल्दबाजी करनेसे समयकी बचत होती है। ऐसा समझना बड़ी भारी भूल है। प्रायः जल्दीमें किया हुआ काम बिगड़ जाता है और उसे अधिक समय लगाकर फिरसे करना पड़ता है; और परिश्रम भी उसके लिए फिरसे होता है। जिस काममें अनावश्यक शीघ्रता या आतुरता नहीं होती, वह ठीक और पूरा उतरता है। एक महात्माका उपदेश है,–" अपनी यात्रा समाप्त करनेमें चित्त लगाओ, आतुर होकर उसके अन्तकी चिन्तामें न लग जाओ। इस प्रकार तुम्हें आसपासके प्रदेशकी शोभायें निरखने और अनुभव प्राप्त करनेका भी अवसर मिलेगा और तुम आतुरताके दुष्परिणामसे भी बच जाओगे। इस प्रकार आगे बढ़ते बढ़ते कुछ समयके उपरान्त जब तुम पीछे मुड़कर देखोगे तो तुम्हें आश्चर्य होगा कि हमने कितना रास्ता तै कर लिया है। यदि तुम नित्य केवल तीन मील चलो तो एक सालमें एक हजार मीलसे भी अधिककी यात्रा पूरी कर लोगे।"

मनुष्यको उचित है कि जो कार्य्य वह आरम्भ करे उसपर पूरा पूरा ध्यान दे और उसमें अपनी सारी शक्तियाँ लगा दे। अध्यवसाय-पूर्वक किसी काममें लगा रहना ही सफल होनेका सबसे बड़ा साधन है; बल्कि यही जीवनका मूल मंत्र है। गैरडिनी नामक एक प्रसिद्ध वायोलिन (बाजा) बजानेवाला हो गया है। किसीने उससे पूछा कि वायोलिन बजाना कितने दिनोंमें अच्छी तरह आ सकता है? उसने उत्तर दिया,–"इसके लिए लगातार बीस वर्षतक प्रति दिन बारह घण्टे तक परिश्रम करना पड़ेगा।" तभी तो मनुष्य किसी काममें पारंगत हो सकता

है। इस लिए मनुष्य जो कार्य्य करे उसे पूर्ण रूपसे करे। जिस काममें हम अपना तन, मन और धन सब लगा दें वही पूरा अच्छा होगा और उसीसे पूरा सुख भी मिलेगा।

किसी एक काममें लगकर उसमें पारंगत होना बहुतसे कार्य्योंमें लगकर कुछ भी न होनेसे कहीं अच्छा है। जो मनुष्य जिस काममें जितना ही अधिक दत्तचित्त होता है, वह उसमें उतनी ही अधिक सफलता प्राप्त करता है। डिकेन्स नामक प्रसिद्ध अँगरेज लेखकने कहा है—"जिस काममें मैंने हाथ लगाया उसे मैंने खूब जी लगाकर और बहुत अच्छी तरह किया, जिस काममें मैं लगा उसमें पूरी तरहसे लग गया। मेरी समझमें काम करनेका सबसे अच्छा नियम यही है कि जिस काममें कोई मनुष्य अपनी सारी शक्तियाँ न लगा सके उसमें वह हाथ ही न डाले।" प्रत्येक मनुष्यको अपने लिए पहले कोई काम अच्छी तरह सोच विचार कर निश्चय कर लेना चाहिए, अपने जीवनका उद्देश्य स्थिर कर लेना चाहिए और तब उसमें अपनी सारी शक्तियाँ लगा देनी चाहिए। आजकल अधिकांश लोगोंके दुःखी और अयोग्य दिखाई देनेका मुख्य कारण यही है कि हर एक आदमी हर एक काम करना चाहता है। स्कूलों-कालेजोंसे अच्छे अच्छे विद्वान् आदि न निकलनेका भी मुख्य कारण यही है कि प्रत्येक विद्यार्थीको अनेक विषयोंका अध्ययन करना पड़ता है। उसकी शक्ति कई विषयोंमें बँट जाती है और वह कोई विषय अच्छी तरह नहीं सीख सकता। प्रारंभके स्कूलोंमें ही छोटे छोटे लड़कोंको दरजनों विषयोंका ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। भला, एक बालक इतने अधिक विषयोंको एक साथ ही कैसे और कहाँतक समझ सकता है? बालक किसी एक विषयका भी अच्छा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता, हाँ वह सब विषयोंको छू अवश्य लेता है। लेकिन इस छूनेका परिणाम क्या होता है? कुछ भी नहीं। वह आगे चलकर कभी किसी एक विषयका पंडित नहीं हो सकता। यही दशा संसारमें और सब कामोंकी समझिए। किसी एक कार्यके लिए मनोयोगका अभाव ही आजकलका बड़ा भारी

दोष है। हमारा मन सभी विषयोंपर इधर उधर भटकता फिरता है, पर किसी विषयपर दृढ़तापूर्वक जमता नहीं। इसी भटकनेमें सारी शक्तिका नाश हो जाता है और हम किसी कामके नहीं रह जाते।

किसी विषयके बड़े भारी ज्ञाता, विद्वान् या कर्त्ताको लीजिए, उसमें प्रधानगुण आपको यही दिखलाई पड़ेगा कि उसने अपने काममें अपनी सारी शक्ति लगा दी है। किसी बड़े नैयायिक या वैयाकरणको देखिए, अवश्य ही उसने अपना सारा समय न्याय या व्याकरणके अध्ययनमें ही बिताया होगा। किसी बड़े गवैये या पहलवानको लीजिए, वह जन्म-भर गाता या कुश्ती लड़ता या जोर ही करता रहा होगा। किसी बड़े भारी महाजनको लीजिए, उसने अपना सारा समय और सारा बल अपने कारबारमें ही लगाया होगा। तात्पर्य्य यह कि जो काम हम करना चाहते हों, हमें दिन रात उसीमें लगे रहना चाहिए।

जो काम हम हाथमें लें, उसे हमें अपना कर्त्तव्य समझकर करना चाहिए, और उसमें अच्छी तरह जी लगाना चाहिए। बेगार टालनेसे कभी कोई काम अच्छी तरह नहीं हो सकता। यदि किसी काममें कुछ कठिनाइयाँ दिखाई पड़ें तो हमें कदापि उनसे घबराना न चाहिए और बराबर उसमें लगे रहना चाहिए। यदि हम आज बड़े उत्साहसे कोई कार्य्य आरम्भ कर दें और दस पाँच दिन बाद हमारा वह पहला उत्साह शिथिल पड़ जाय तो उस कार्य्यका क्या परिणाम होगा? कुछ भी नहीं। केवल समय और शक्तिका नाश होगा। पर यदि हम सदा शान्त-चित्त रहकर मार्गमें पड़नेवाली कठिनाइयोंको दूर करनेका उपाय सोचते रहेंगे तो अवश्य ही हमारा मार्ग सुगम हो जायगा। अँगरेजीकी एक कहा-वतका अभिप्राय है कि जो काम हम करना चाहते हैं उसके लिए कोई न कोई उपाय भी निकल ही आता है। यह उपाय सदा शान्त चित्त रहनेसे निकलता है, घबराने या हताश होनेसे नहीं निकलता। कठि-नाइयों और विघ्नोंसे घबराना और हताश होकर किसी कामको बीचमें छोड़ देना, कायरता, दुर्बलता और अकर्मण्यताका लक्षण है। जो

इंजीनियर पहाड़को और किसी प्रकार पार नहीं कर सकता, वह सुरंग खोदता है । जिस मनुष्यको अपनी शक्तिपर विश्वास होता है और जो मनुष्य अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहता है, उसका उद्देश्य अवश्य सिद्ध होता है; कठिनाइयाँ उसका कुछ भी नहीं कर सकतीं । इतिहास हमें यही शिक्षा देता है कि संसारका प्रत्येक बड़ा कार्य्य दृढ़ निश्चयसे ही होता है ।

अमेरिकाके आविष्कर्त्ता प्रसिद्ध यात्री कोलंबसको ही लीजिए । उसके जीवनवृत्तान्तसे हमें इस बातकी बहुत बड़ी शिक्षा मिलती है कि धैर्य्य और अध्यवसायसे मनुष्य क्या कर सकता है । उसका जन्म सन् १४३६ ई० में एक बहुत ही दरिद्रकुलमें हुआ था । बाल्यावस्थासे ही वह मल्लाहीके काममें बहुत निपुण था । सन् १४७४ में उसने पहले पहल पश्चिमीय सागरद्वारा भारत-यात्रा करनेका विचार किया । उसका विचार सुनकर बहुतसे लोग उसकी हँसी उड़ाने लगे; पर वह हतोत्साह या निराश नहीं हुआ । पहले पहल उसने अपने जन्मस्थान जनेवाके राजदर्बारमें जाकर अपने विचार प्रकट किये और यात्राके लिए सहायता माँगी, पर वहाँ किसीने उसकी बातोंपर ध्यान न दिया । लाचार वह पुर्त्तगाल गया । उस समय पुर्त्तगालवाले समुद्रद्वारा भारतका मार्ग ढूँढ़नेके प्रयत्नमें लगे थे । पुर्त्तगालके राजाने तो कोलंबसकी बात मान ली, पर मंत्रियोंने उसके विपक्षमें अपनी सम्मति दी । पुर्त्तगालवालोंने उसके साथ बेईमानी भी की, उसके नकशे आदि ले लिये और गुप्तरूपसे भारतकी खोजके लिए जहाज भी भेजे । पर वे जहाज शीघ्र ही लौट आये । वे आगे बढ़ते कहाँसे ? उनके नाविकोंमें धैर्य्य और अध्यवसाय तो था ही नहीं ।

पुर्त्तगालवालोंने कोलंबसको धोखा दिया और साथ ही उसे किसी प्रकारकी सहायता भी नहीं दी; पर तो भी वह निराश नहीं हुआ । वह बराबर उद्देश्य-सिद्धिके प्रयत्नमें लगा रहा । उसने अपने भाईको तो इँग्लैण्ड भेजा और वह स्वयं स्पेन गया । यद्यपि अपने पूर्व अनुभवसे उसे मालूम हो चुका था कि लोगोंको अपनी बातपर विश्वास दिलाना कठिन है, पर तो भी उसने प्रयत्न नहीं छोड़ा । उसके भाईको तो समुद्री डाक

मिल गये, इस लिए उसे इँग्लैण्ड पहुँचनेमें विलंब हो गया, पर इससे पहले ही स्पेनके दरबारमें वह पहुँच गया। कोलंबसके अभाग्यवश उस समय स्पेनवाले मूर लोगोंके साथ युद्धमें प्रवृत्त थे, इस लिए वहाँ भी उसकी बात न सुनी गई । यद्यपि सभी स्थानोंसे विमुख फिरनेके कारण वह दुःखी और उदास हो गया था, पर तो भी वह अपने विचार-पर दृढ़ रहा और बहुत दिनोंतक इधर उधर सहायता पानेकी आशामें घूमता रहा। उसे केवल भारतका मार्ग ढूँढ़ निकालनेकी धुन थी । यदि उसकी यह धुन इतनी पक्की न होती और वह उसे छोड़कर किसी दूसरे काममें लग जाता तो अमेरिकाका पता लगनेमें न जाने और कितना विलंब होता । कोलंबसको अपने विचारों और बलपर पूरा पूरा विश्वास था; वह समझता था कि मैं भारतका मार्ग अवश्य ढूँढ़ निकालूँगा । इसी लिए वह हतोत्साह नहीं हुआ और बराबर अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए प्रयत्न करता रहा । अन्तमें स्पेनके राजाने उसके प्रस्तावपर विचार कर-नेके लिए उसे फिर अपने यहाँ बुलाया । पहले तो वह यों ही किसी राज्यकी ओरसे भारतकी खोजमें निकलनेके लिए तैयार था; पर इतने दिनों तक निष्फल-मनोरथ रहनेके कारण उसने अब कई शर्तें भी साथमें लगा ली थीं । उसने प्रतिज्ञा कर ली थी कि मेरी यात्रासे होनेवाले लाभका दसवाँ भाग जो मुझे देगा और ढूँढ़े हुए देशोंका जो मुझे प्रधान शासक बनावेगा उसीकी ओरसे मैं यात्रा करूँगा । पहले तो लोग उसके विचारोंकी हँसी उड़ाते थे, अब उसकी इन शर्तोंकी हँसी उड़ाने लगे । पर कोलंबस ऐसा आदमी नहीं था जिसे किसी प्रकारका परिहास, विघ्न या विफलता अपने निश्चयसे डिगा दे । लगातार अठारह वर्षतक वह इधर उधर भटकता फिरा, पर तो भी उसने भारत-यात्राका विचार नहीं छोड़ा। इसी प्रकार वह अपनी प्रतिज्ञाओंपर भी दृढ़ रहा । यही दृढ़ता उसकी श्रेष्ठता प्रकट करती है और इसीके कारण उसका नाम इतिहासमें चिरकालतक अमर रहेगा ।

सन् १४९२ में वह फिर स्पेन गया। इस बार उसकी सारी शर्तें भी मान ली गई और उसकी यात्राका प्रबन्ध भी होने लगा। अज्ञात सागरमें इतनी विकट यात्रा करनेके लिए उसे साथी नहीं मिलते थे। बड़ी कठिनतासे लालच देकर कुछ मल्लाह उसके साथ जानेके लिए तैयार किये गये। यात्राके लिए उसे छोटे छोटे तीन जहाज मिले, जिनपर नब्बे मनुष्य थे और एक वर्षके लिए सामग्री थी। ३ अगस्त सन् १४९२ को वह स्पेनसे रवाना हुआ। एक सप्ताह बाद ही तूफानके कारण जहाज बेकाम हो गये, इस लिए एक टापूमें ठहरकर उसने उनकी मरम्मत की। इसके बाद वह फिर वहाँसे आगे बढ़ा। रास्तेमें ही उसके साथी मल्लाह हताश हो चले, सब लोग समझने लगे कि कोलंबसके कारण हम लोगोंके भी प्राण इसी अज्ञात समुद्रमें जायँगे। कई बार वे बहुत बिगड़े और उन लोगोंने कोलंबसको उठाकर समुद्रमें फेंक देनेका भी विचार किया। उस अवस्थामें यदि कोई और मनुष्य होता तो या तो वह स्वयं ही घबराकर लौट पड़ता और या कमसे कम मल्लाहोंके डरसे ही आगे बढ़नेका विचार न करता। पर कोलंबस मानों धैर्य्य और अध्यवसायका जीता जागता पुतला था। वह स्वयं शान्त रहा और उसने दूसरोंको भी सदा समझा बुझाकर शान्त रखा। उसके इस धैर्य्य और अध्यवसायका यह फल हुआ कि लोगोंको एक नये संसारका पता लग गया—उन्हें एक नया महाद्वीप मिल गया। अमेरिकाका पता लग जानेसे विज्ञान, विद्या और कला आदिमें संसारने कितनी उन्नति की है, इसके यहाँ बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। पर इस उन्नतिका मूल कारण वही एक कोलंबस है जो विघ्नों और विफलताओंकी कुछ भी परवा न करके सदा अपने विचारपर दृढ़ रहा और बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ झेलकर अन्तमें सफल-मनोरथ हुआ।

पाँचवाँ प्रकरण।

उपयोगी परामर्श।

[अपनी शक्तिका परिचय और जीवनका उद्देश्य--मनुष्यको अपने प्रति अन्यायी या अत्याचारी न होना चाहिए--अपनी शक्तियोंको कभी व्यर्थ नष्ट न करो--शक्ति और स्वास्थ्यका नाश धन-सम्पत्तिके नाशसे कहीं बढ़कर है--शक्ति कैसे नष्ट होती है--फैशनकी बुराइयाँ--कोरे ठाठ-बाटकी हानियाँ--व्यर्थकी चिन्ताएँ--चित्तकी शान्तिका परिश्रमके साथ सम्बन्ध--सफल-मनोरथ होनेके समय हताश होना--धैर्य्यके अभावके कारण विफलता होती है--उच्चाकांक्षा और निकृष्ट संतोष--आंतरिक शक्तियोंका सदुपयोग--कर्त्तव्य और परिश्रमके विचारसे कार्य्य होना चाहिए--जल्दबाजी--आत्मोत्कर्ष-साधन--ज्ञान बढ़ाते रहना चाहिए--समयका सदुपयोग--अध्ययन और चिन्तन--आधुनिक शिक्षाके दोष--शिक्षा कैसी होनी चाहिए--सब बातों और मनुष्योंसे शिक्षा लेनी चाहिए--मिलके अनुसार ज्ञानार्जनके उपाय।]

संसारमें ऐसे लोग बहुत ही कम मिलेंगे जो अपने आपको सदा वशमें रखते हों, सब काम बहुत ही उत्तमतापूर्वक करते हों, जीवनकालमें आनेवाली सभी समस्याओंकी मीमांसा धैर्य्य और दृढ़तापूर्वक करते हों, व्यवहारमें निपुण और साथ ही सच्चे हों, और विद्या, बुद्धि, धन, बल और अवसरों आदिका ठीक ठीक उपयोग करते हों। इन सब बातोंके लिए सबसे पहली आवश्यकता इस बातकी है कि मनुष्य आत्म-ज्ञान प्राप्त करे। अर्थात् वह अच्छी तरह इस बातको समझ ले कि मैं क्या हूँ, मुझमें कितनी शक्ति है और मेरा जीवन किस लिए है।

संसारके और पदार्थोंकी तरह मनुष्यमें भी ईश्वरका अंश तो है ही, पर साथ ही उसमें और भी कई विशेषतायें, और भी अनेक गुण हैं। ईश्वरने उसे संसारके समस्त जीवोंमें श्रेष्ठ बनाया है। ऐसी दशामें अपने आपको अयोग्य, अकर्मण्य और भाग्यहीन आदि समझना प्रकारान्तरसे

ईश्वरपर दोषारोपण करना है और किसी प्रकारकी अनीति या अनाचारमें प्रवृत्त होना मानों उस ईश्वरके सामने अपराधी बनना है। संसारमें आजकल जितने दोष दिखलाई पड़ते हैं उनका मुख्य कारण यही है कि मनुष्य न तो अपनी शक्तिसे परिचित होता है और न उसे अपने जीवनके उद्देशका ज्ञान होता है। जो मनुष्य सदा अपने आपको दुर्बल, अयोग्य और नीच समझता है वह संसारमें कभी कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। लोग कहते हैं कि मनुष्यके जैसे विचार होते हैं वह स्वयं भी वैसा ही होता है। उसकी प्रायः सभी अवस्थायें उसकी मानसिक अवस्थाके अनुरूप हो जाती हैं। ऐसी दशामें प्रत्येक मनुष्यको यह उचित है कि अपने आपको वह जैसा बनाना चाहे, वैसा ही समझे। यदि मनुष्य सदा अपने आपको सदाचारी, सत्यनिष्ठ, कर्त्तव्य-परायण, कर्म्मठ और भाग्यवान् समझे तो वह बहुधा वैसा ही हो जायगा। न तो कभी अपने आपमें कोई दोष आने देना चाहिए और न कभी यह समझना चाहिए कि मुझमें कोई दोष है। प्रत्येक मनुष्यके सर्वगुण-संपन्न होनेका यही सबसे अच्छा, सीधा और सहज उपाय है।

संसारमें बहुतसे लोग ऐसे भी होंगे जो औरोंके साथ बहुत ही अच्छा व्यवहार करते होंगे, किसीके साथ बेईमानी न करते होंगे, किसीपर अन्याय या अत्याचार न करते होंगे; पर स्वयं अपने साथ वे बहुत ही अन्यायपूर्ण व्यवहार करते होंगे। अपनी शक्तियोंका दुरुपयोग करके, अपने आपको नीचा बनाकर, मनुष्य अपने साथ अन्याय ही करता है। स्वयं अपने साथ अनुचित व्यवहार करना भी उतना ही बुरा है, जितना कि दूसरोंके साथ अनुचित व्यवहार करना। प्रत्येक मनुष्यका यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपनी शारीरिक और मानसिक अवस्थां यथासाध्य उन्नत रक्खे। केवल इसी कर्त्तव्यका पालन न करनेसे ही बहुतसे लोगोंका जीवन बुरी तरह नष्ट होता है।

आपने बहुतसे ऐसे लोग देखे होंगे जिन्होंने अपने सारे जीवनमें कभी किसी प्रकारकी उन्नति नहीं की, जो अपनी युवावस्थासे लेकर वृद्धावस्था

तक ज्योंके त्यों बने रहे। स्वयं उनकी समझमें यह बात नहीं आती कि हम उन्नति क्यों नहीं कर सकते। पर यदि आप उनकी दशापर थोड़ा विचार करेंगे तो आपको मालूम हो जायगा कि वे अपने स्वास्थ्यका ध्यान नहीं रखते, अपने विचार शुद्ध रखनेका प्रयत्न नहीं करते, स्वयं उन्नति करनेकी कभी चेष्टा नहीं करते। जो बड़े बड़े काम करनेमें समर्थ हैं वे लोग छोटे छोटे काम करनेमें भी असमर्थसे जान पड़ते हैं। कारण यही है कि अपने प्रति मनुष्यका जो कर्त्तव्य है उसका वे पालन नहीं करते; वे अपने साथ अन्याय करते हैं।

ऐसी ऐसी पुस्तकें देखनेमें आती हैं जिनके विचारोंमें जान ही नहीं होती। ऐसे ऐसे व्याख्यान सुननेमें आते हैं जिनमें कुछ तत्त्व ही नहीं मिलता। कारण यही है कि स्वयं लेखक या वक्तामें जरा भी मानसिक बल नहीं होता। शिष्योंपर शिक्षकके उपदेशोंका इसी लिए प्रभाव नहीं पड़ता कि स्वयं उसमें किसी प्रकारका उत्साह नहीं होता। रोजगारियोंको रोजगारमें घाटा होता है और नौकरी करनेवाले जन्मभर जहाँके तहाँ पड़े रहते हैं। लाभ या उन्नति कहाँसे हो जब कि वे सदा दुःखी, उदास और मुर्देसे ही रहते हों?

यूरोप और अमेरिकाके बड़े बड़े व्यापारियों और कल-कारखानोंके मालिकोंका तथा बड़े बड़े काम करनेवाले सभी मनुष्योंका यह सिद्धान्त रहता है कि जहाँ तक हो सके, खर्च कम किया जाय और काम अधिक निकाला जाय। उन्नति या लाभ करनेका मुख्य सिद्धान्त यही है। इसी सिद्धान्तको हमें अपनी शक्तियोंपर भी घटाना चाहिए। जहाँतक हो सके हमें शक्तियोंका नाश कम करना चाहिए और उनसे काम अधिक निकालना चाहिए। लेकिन आजकल या तो लोग अपनी शक्तियोंसे जरा भी काम नहीं लेते हैं या बहुत अधिक काम लेकर उन्हें नष्ट कर देते हैं। या तो लोग काम ही नहीं करते और या इतना अधिक काम करते हैं कि अपना स्वास्थ्य बिगाड़ लेते हैं। सांसारिक व्यवहारके लिए शरीर और मन ये ही दोनों पूँजियाँ हैं। जो इन्हें रक्षित नहीं रखता वह कभी कोई बड़ा

काम नहीं कर सकता। अपने शारीरिक और मानसिक बलका निरर्थक नाश करनेवालेकी उपमा उसी मनुष्यसे दी जा सकती है जो अपनी सम्पत्ति बुरे कार्य्योंमें नष्ट करके भिखारी बन जाता है।

बड़े बड़े वैज्ञानिकोंने परीक्षा करके पता लगाया है कि गैस बनानेके लिए जो कोयला काममें लाया जाता है उसकी प्रकाशक-शक्तिका केवल एक शतांश उपयोगमें आता है; सौमेंसे बाकी निन्नानवे अंश शक्ति उसके खानसे निकलकर इंजिन तक पहुँचनेमें ही नष्ट हो जाती है। अर्थात् एक मन कोयलेमें जितनी प्रकाशक-शक्ति होती है, केवल उसका सौवाँ भाग काममें आता है, बाकी सब व्यर्थ नष्ट हो जाता है।

प्रायः यही दशा मनुष्यकी शक्तिकी भी होती है। उसका बहुत बड़ा अंश व्यर्थ नष्ट हो जाता है और बहुत थोड़ा काममें आता है। जब युवक पहले पहल संसारमें प्रवेश करता है तब उसमें बहुत अधिक बल, बहुत अधिक उत्साह होता है। उस समय वह समझता है कि संसारमें कोई काम ऐसा नहीं है जो मैं न कर सकूँ। वह समझता है कि मुझमें अनन्त शक्ति है। पर संसारमें प्रवेश करते ही उसकी शक्तिका बुरी तरह नाश होने लगता है। युवकोंके समय और शक्तिका नाश जितने रूपोंमें और जितना अधिक होता है, उसका वर्णन प्रायः असम्भव ही है। हाँ, पाठक थोड़ेसे विचारसे ही इसका बहुत अच्छा अनुमान अवश्य कर सकते हैं। जो युवक पहले अपने आपको बहुत शक्ति-सम्पन्न समझता था, कुछ ही दिनों बाद वह अपने आपको बिलकुल अशक्त समझने लगता है। शक्तिके इस ह्रासका यह कारण नहीं है कि उसका उपयोग हो गया, बल्कि यह कारण है कि उसका दुरुपयोग और नाश हो गया। मूर्खता या अज्ञानताके कारण इस शक्तिका नाश करके लाखों आदमी पृथ्वीका भार बन गये हैं और दिनपर दिन बन रहे हैं।

किसी बड़े भारी सेठ, महाजन, जमीनदार या नवाबके मरनेपर उसका लड़का एक ही रातमें मद्य-पान और वेश्या-गमन आदिमें हजारों रुपये खर्च कर सकता है और इस प्रकार धीरे धीरे लाखों-करोड़ों रुप-

योंकी सम्पत्ति नष्ट कर सकता है। लेकिन सम्पत्तिके इस नाशको संजीवनी शक्तिके उस नाशके मुकाबलेमें कुछ भी न समझना चाहिए जो मद्य-पान और वेश्या-गमनमें होता है। और यदि इसके साथ उस दूषित प्रभावका महत्त्व भी मिला लिया जाय जो उसके दुराचारके कारण समाजपर पड़ता है तो इस नाशको और भी अधिक भयंकर और हानिकारक मानना पड़ेगा। क्योंकि नष्ट किया हुआ धन फिर भी किसी प्रकार प्राप्त किया जा सकता है, पर नष्ट की हुई शारीरिक शक्ति फिरसे प्राप्त नहीं की जा सकती और न समाजपर पड़नेवाले उस दुष्ट प्रभावका कोई प्रतीकार हो सकता है।

संसारमें जितने बुरे अथवा निरर्थक काम हैं उन सबसे हमारी शक्तिका नाश होता है। यह नाश हम जान बूझकर करते हैं और यदि हम उससे बचना चाहें तो उनके बदलेमें आप-ही-आप हमारा बहुत कुछ लाभ हो सकता है। एक बड़े भारी डाक्टरका कहना है कि साधारणतः किसी काममें जितनी शक्ति लगानेकी आवश्यकता होती है लोग उससे प्रायः दस-गुनी शक्ति उसमें लगा देते हैं। बहुत से लोग मामूली कलम पकड़नेमें भी इतना जोर लगाते हैं मानों वे हाथमें मुगदर लिये हुए हैं। दस्तख़त करनेमें वे प्रायः उतना ही जोर लगाते हैं जितना किसी पत्थरको दूर फेंकनेमें लगाना चाहिए। एक डाक्टरका मत है कि कदाचित् सौमें एक आदमी भी ऐसा न निकलेगा जो अपने अंगोंसे ठीक ठीक काम लेना और उन्हें आराम देना जानता हो। इसी प्रकार एक दूसरे डाक्टरका मत है कि लोग साधारणः जितना भोजन करते हैं प्रायः उसके एक तृतीयांशसे ही उनके शरीरका भली भाँति पोषण हो सकता है। जो दो तृतीयांश भोजन छोड़ दिया जायगा उसके कारण उनके शारीरिक बलका ह्रास नहीं होगा बल्कि नित्य होनेवाले रोगोंमें कमी हो जायगी।

बहुतसे युवक थोड़ी देरतक खड़े रहने, बैठने, कुछ दूर चलने, या छोटा मोटा काम करनेमें ही थक जाते हैं। इसका कारण भी शारीरिक शक्तिका नाश ही है। पर जिस मनुष्यकी शक्ति व्यर्थ नष्ट नहीं होती,

वह बड़े बड़े कठिन और परिश्रमके कार्य्य करके भी नहीं थकता। साधारणतः युवकोंको दिन चढ़ते ही सुस्ती और थकावट मालूम होने लगती है और उसे दूर करनेके लिए उन्हें पान, सुरती, सिगरेट और चाय आदिका व्यवहार करना पड़ता है। शरीरपर इन चीजोंका प्रभाव पहले तो कुछ उत्तेजक होता है, पर पीछेसे वह और भी शिथिल कर देता है। और यही शिथिलता आगे चलकर बुरे कामोंमें पड़ने, भूलें करने, तथा इसी प्रकारके और और दोषोंका कारण होती है। किसी दिन सन्ध्याके समय आप इस बातका विचार कीजिए कि आज दिन-भर मैंने अपनी शक्तिका कितना नाश किया है तो आपको आश्चर्य होगा। आपने किसीके साथ व्यर्थ झगड़ा किया होगा, व्यर्थकी चिन्ता अपने पीछे लगा ली होगी, दूसरोंके दोष ढूँढ़ने और शिकायतें करनेमें बहुतसा समय बिताया होगा, बहुतसी शक्ति भाँग, सिगरेट और पानकी नजर की होगी तथा इसी प्रकारके और अनेक काम किये होंगे जिनसे आपकी शक्तिका व्यर्थ नाश हुआ होगा और शरीरमें बहुत कुछ थकावट आ गई होगी। शक्तिके इस नाशका परिणाम यह होता है कि मनुष्य आत्म-संयमन नहीं कर सकता, कर्त्तव्यपरायण नहीं रह सकता, अपनी मर्य्यादाका ध्यान नहीं रख सकता और इसी प्रकारके और काम नहीं कर सकता जिनसे मनुष्यके चरित्रका संगठन होता है।

किसी कामको बे-सिलसिले या बे-कायदे करनेसे भी शक्तिका नाश होता है। किसी कामके लिए पहलेसे ही बहुत चिन्तित हो जाना भी शक्ति नष्ट करता है; इसका परिणाम यह होता है कि जब वह काम सामने आ जाता है तब हममें उसके करनेकी शक्ति नहीं रह जाती। बहुतसे कामोंमें एक साथ हाथ डाल देनेसे भी शक्तिका बहुत कुछ ह्रास होता है। हमारा विचार सब कामोंके लिए बँट जाता है और किसी एक कामपर हम पूरा पूरा ध्यान नहीं दे सकते। बहुतसे लोगोंकी यह आदत हुआ करती है कि वे सदा बहुतसी बातें सोचा करते हैं, बड़े बड़े बाँधनू बाँधते हैं और मन ही मन खूब तर्क वितर्क करते

हैं। ऐसे लोग कभी अपने विचारपर दृढ़ नहीं रहते। उनकी दृढ़ताके इस अभावका कारण भी उनकी शक्तिका ह्रास ही है। वे सदा मानों एक प्रकारकी स्वप्नावस्थामें रहते हैं। उनके पैर तो जमीनपर ही होते हैं पर दिमाग आसमानमें चक्कर लगाया करता है। अगर बहुतसी बातोंपर व्यर्थ बहुत अधिक विचार न करके शक्ति रक्षित रक्खी जाय और उसका उपयोग किसी एक ही बातको अच्छी तरह सोचने या एक ही कामको दृढ़तापूर्वक करनेमें लगाया जाय तो बहुत कुछ लाभ हो सकता है। बीती हुई बातोंके लिए चिन्ता और दुःख करनेसे शक्तिका अपव्यय होता है। मनुष्यको सदा प्रत्येक कार्य्य यथासाध्य परिश्रम और उत्तमतापूर्वक करना चाहिए और यदि उसमें किसी प्रकारकी त्रुटि हो जाय तो पहले उस त्रुटिका कारण ढूँढ़ निकालना चाहिए; और यदि वह कारण निश्चित हो जाय तो उसकी ओरसे भविष्यमें सदा सचेत रहना चाहिए। दिनरात उसकी चिन्तामें ही अपना शरीर घुलाना बड़ी भारी मूर्खता है। बीती हुई बातें याद करके अपना दिमाग कभी परेशान नहीं करना चाहिए, बल्कि आगेके लिए अच्छी बातें सोचनी चाहिए। प्रत्येक कार्य करनेसे पहले मनुष्यको यह सोच लेना चाहिए कि इसका परिणाम कहाँतक शुभ होगा और उससे हमारा तथा औरोंका कहाँतक हित हो सकेगा। अगर तुम संसारमें रहकर कुछ काम करना चाहते हो तो अपनी शक्तिको सदा नष्ट होनेसे बचाओ। इस सिद्धान्तका यदि लोग अच्छी तरह ध्यान रक्खें तो उन्हें कभी दुःखी, दरिद्र, विफल-मनोरथ या हताश न होना पड़े।

समय, शक्ति और धनका बहुतसा नाश आजकल फैशनके कारण भी हुआ करता है। धनवान् पुरुष लोगोंको अपना वैभव दिखलानेके लिए तरह तरहके ठाठ-बाट रचते हैं, और साधारण लोग भी अपनी हैसियत बहुत बढ़ाकर लोगोंको दिखलानेका प्रयत्न करते हैं। धनी लोग तो किसी प्रकार अपना निर्वाह कर डालते हैं, पर साधारण लोगोंपर उनके कार्य्यों और व्यवहारों आदिका जो दूषित प्रभाव पड़ता है उसके कारण

बहुधा उन्हें अनेक प्रकारके पापतक करने पड़ते हैं। बहुतसे लोग दूसरोंको अपनी हैसियत बहुत बढ़ाकर दिखलानेके लिए ही जाल फरेब और बेईमानी करते हैं, झूठ बोलते हैं, किसी न किसी तरहकी चोरी करते हैं, लोगोंसे ऋण लेते हैं और इसी प्रकारके दूसरे अपराध करते हैं। यदि हमारे पास धन हो तो उसका दुरुपयोग करके हमें दूसरोंके सामने कोई ऐसा बुरा उदाहरण नहीं उपस्थित करना चाहिए जो उन्हे असन्तुष्ट, दुःखी या पापोंमें प्रवृत्त करे।

साधारण स्थितिके लोग कुछ तो देखादेखी फैशनके फेरमें पड़ जाते हैं और कुछ उन्हें इस बातका ध्यान होता है कि लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे! यही—'लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे' समाजको बड़ी हानि पहुँचाता है। इसी भयसे हम तरह तरहकी कठिनाइयाँ झेलते हैं और असुविधाओंमें पड़ते हैं। लोगोंके इस भयके दास बनकर हम अपनी बड़ी दुर्दशा करते हैं। हम अपने साथ तरह तरहके ऐसे खर्च लगा लेते हैं जो हमारी आर्थिक स्थितिको देखते हुए कभी उपयुक्त नहीं होते। पहली टोपी अच्छी है, तो भी एक और टोपी हम केवल इसी लिए खरीद लेते हैं कि जिसमें लोग यह न कहें कि इनके पास एक ही टोपी है। अपनी वास्तविक दशा छिपाने और झूठी हैसियत दिखलानेके लिए हमें इतना अधिक व्यय करना पड़ता है जितनेमें एक परिवारका अच्छी तरह निर्वाह हो सकता है। ऐसा करना केवल आर्थिक दृष्टिसे ही हानिकारक नहीं है बल्कि नैतिक दृष्टिसे भी बहुत बुरा है; क्योंकि इसमें हम लोगोंको व्यर्थ धोखा देते हैं और साथ ही अपनी दुर्दशा भी करते हैं। इस प्रकार ठाठ-बाट रखनेसे उसके उद्देश्यकी भी पूर्ति नहीं होती। क्योंकि आजकल सभी लोग बड़े ठाठ-बाटसे रहते हैं, और कोरा ठाठ-बाट कभी वास्तविक योग्यताका परिचायक नहीं समझा जाता; और लोगोंको वास्तविक योग्यताका पता भी कभी न कभी लग ही जाता है।

यह समझना बड़ी भारी मूर्खता है कि केवल ठाठ-बाटसे ही मनुष्यकी वास्तविक योग्यता जानी जाती है। मनुष्यका वास्तविक भूषण

उसका सदाचार और विद्या आदि हैं। एक अँगरेजी कहावतका अभिप्राय है कि तुम धन उपार्जन करो, सारा संसार तुम्हें भला आदमी कहेगा। बहुत ठीक। जिसके पास कुछ धन हो वह संसारमें भला आदमी कहला सकता है; पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि सारे संसारका धन उसकी भल-मनसाहत और वास्तविक योग्यतामें तनिक भी वृद्धि नहीं कर सकता। लुच्चा आदमी यदि करोड़पती हो जाने पर भी बराबर कुकर्म करता रहेगा तो वह लुच्चा ही रहेगा; चार आदमी उसे भला-मानुस कह लें, पर केवल धनके कारण उसमें भल-मनसाहत कभी आवेगी नहीं। भल-मनसाहत तभी आवेगी जब वह कुकर्म्म छोड़कर सत्कर्म्म करेगा। जो मनुष्य भला आदमी बनना चाहता हो, उसे उचित है कि वह सदा सत्यनिष्ठ और सदाचारी रहे और सीधी-सादी तरहसे अपना जीवन व्यतीत करे। ऐसा मनुष्य कभी किसीसे ईर्ष्या या द्वेष नहीं करता, किसीकी खुशामद नहीं करता, किसीसे नहीं दबता, सदा स्वतंत्र और प्रसन्नचित्त रहता है। पर इसके विपरीत आचरण करनेवाला मनुष्य सदा दुःखी और चिन्तित रहता है, उसे कभी शान्ति नहीं मिलती और सदा धुकधुकीसी लगी रहती है। इस लिए प्रत्येक मनुष्यको सदा अपनी आर्थिक स्थितिका ध्यान रखते हुए जीवन-निर्वाह करना चाहिए और अपनी शक्तिके बाहर कोई व्यर्थ काम नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त हमें ऐसे लोगोंसे मिलना जुलना भी न चाहिए जो अपने वित्तके बाहर खर्च करते हों; क्योंकि केवल उनकी संगतिके कारण ही कभी कभी हमारे लिए अपनी शक्तिसे बाहर खर्च करना अनिवार्य्य हो जायगा। जीवन सदा वास्तविक रूपमें होना चाहिए, दिखौआ या बनावटी नहीं। ओलीवर क्रामवेलने एक बार अपना एक चित्र बनवाया था। जब चित्रकारने चेहरेकी झुर्रियाँ ठीक करके चित्रित आकृतिको और सुन्दर बनाना चाहा तो उसने कहा था—"चित्रमें मेरी आकृति बिलकुल ज्योंकी त्यों रहे, नहीं तो मैं इसका दाम ही नहीं दूँगा।" यही अपने आपको ज्योंका त्यों प्रकट करना वास्तविक मनुष्यता है।

लोग कहा करते हैं—" गतं न शोचामि । " अर्थात् जो बात बीत गई हो, उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए । वास्तवमें अपनी पिछली भूलों आदिके लिए व्यर्थ चिन्ता करना बहुत ही हानिकारक है । इस व्यर्थ चिन्तासे हमें मानसिक क्लेश भी होता है और हमारे समयका भी नाश होता है । इस लिए उचित है कि जो बात बीत गई हो, उसका ध्यान छोड़ दिया जाय । कल यदि हमने कोई मूर्खतापूर्ण कार्य्य किया हो, कोई अच्छा अवसर खो दिया हो, जरासा अविचार या शीघ्रता आदिके कारण अपनी भारी हानि कर ली हो, तो आज उसका स्मरण करके हम अपने आपको चिन्तित क्यों करें और अपने आपके काममें हरज क्यों डालें ? बहुतसे लोग ऐसे मिलेंगे जो यदि अपना बहुतसा समय और शक्ति बीती हुई बातोंका चिन्तन करनेमें ही न बिता दें तो बहुत अच्छे अच्छे काम कर सकते हैं ।

गेहूँसे गेहूँकी और जौसे जौकी सृष्टि होती है । नागफनी लगाकर कोई गुलाबकी आशा नहीं रख सकता । यही दशा हमारे विचारोंकी भी है । हम सदा चिन्तित और दुःखी रहकर कभी किसी अच्छी बातका विचार मनमें नहीं ला सकते । यदि हम अपने मनरूपी क्षेत्रमें चिन्ता और दुःखके बीज बोएँगे, तो उनसे होनेवाले पौधोंमें फूल और फल भी वैसे ही लगेंगे । ऐसी दशामें यह मानना पड़ेगा कि जो मनुष्य दिनरात सोच-फिकमें पड़ा रहता है, सदा अपने भाग्यकी या दुनियाकी शिकायत किया करता है अथवा और किसी प्रकार अपने विचारोंको सुन्दर न होने देकर सदा कलुषित ही रखता है वह अपना बड़ा शत्रु है । संकीर्ण हृदयवाले और अकर्म्मण्य लोग ही सदा इस बातकी शिकायत किया करते हैं कि दुनियामें सच्चे आदमियोंकी कदर नहीं होती, सीधे आदमियोंका गुजारा नहीं होता, भलमनसाहतसे काम नहीं निकलता, गरीबका काम नहीं चलता, आदि आदि । उदार हृदयवाले और कर्म्मठ मनुष्य कभी इन व्यर्थकी बातोंका ध्यान भी नहीं करते ।

जो मनुष्य कोई काम कर सकनेके योग्य होता है वह न तो स्वयं कभी अपने अभाग्यकी शिकायत करता है और न कभी ऐसे आदमियोंके साथ सहानुभूति दिखलाता अथवा उसकी सहायता करता है जो सदा इस प्रकारकी शिकायत किया करते हैं। वे जानते हैं कि इस प्रकारकी शिकायत व्यर्थ होती है, केवल व्यर्थ ही नहीं बल्कि हानिकारक भी होती है; क्योंकि ऐसी शिकायतका सुननेवालोंपर भी बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है—वे भी कुछ न कुछ हताश और अकर्मण्य हो जाते हैं। प्रायः समझदार आदमी ऐसे शिकायत करनेवालोंसे दूर ही रहना पसन्द करते हैं। एक बड़े अँगरेज राजनीतिज्ञ और कारवारी आदमीको एक वार एक आदमीकी आवश्यकता हुई। उसने विज्ञापन दिया जिससे बहुतसे प्रार्थनापत्र आये। एक आदमीको उसने चुना और वेतन तथा कार्य्य आदिके विषयमें सब बातें निश्चित कर लीं। उसी अवसरपर उस आदमीने अपने पिछले जीवनकी कुछ बातें उसे सुनाईं। उसने अपनी कई विफलताओंका हाल सुनाकर अपने भाग्यहीन होनेका भी जिक्र कर डाला। इसपर उस राजनीतिज्ञने कह दिया कि भाई, तुमसे हमारा काम न हो सकेगा। उस आदमीने पूछा—क्यों? राजनीतिज्ञने उत्तर दिया—"मैं कभी भाग्यहीनोंको और विशेषतः ऐसे भाग्यहीनोंको जो सदा अपने भाग्यहीन होनेकी शिकायत किया करते हों, कभी अपने यहाँ नहीं रखता।"

काम करनेवाले आदमियोंको निकम्मे आदमियोंके साथ कभी सहानुभूति नहीं होती, इस कारण अकर्म्मण्य मनुष्योंके साथ कर्म्मण्य मनुष्योंका व्यवहार कुछ अन्यायपूर्ण और निष्ठुरतापूर्ण सा जान पड़ता है। पर यदि सच पूछिए तो इसमें कर्म्मण्य मनुष्यका दोष नहीं है, वास्तवमें अकर्म्मण्य मनुष्य उस अन्याय और निष्ठुरताका पात्र ही होता है। यदि अकर्मण्य मनुष्य अपने दुर्भाग्यका रोना न रोता रहे तो बहुत कुछ काम कर सकता है। मनुष्यका शारीरिक और मानसिक संगठन ही ऐसा है कि वह जितना प्रसन्न रहता है, उतना ही अधिक और उत्तम कार्य्य कर

सकता है। दुःख और चिन्ता आदिके समय उससे कोई काम ही नहीं हो सकता। पहले हम कुछ ऐसे लोगोंके उदाहरण दे आये हैं जिन्होंने विपत्तिकालमें भी बड़े अच्छे अच्छे काम किये हैं। इससे यह न समझना चाहिए कि दुःख और चिन्ताके समय भी मनुष्य अच्छे काम कर सकता है। दुःख और चिन्ता और बात है और विपत्ति और बात है। जिन लोगोंने विपत्ति-कालमें भी अच्छे काम किये हैं वे सदा धीर, साहसी और प्रसन्न रहे। उन्होंने विपत्तिकी कुछ भी परवा न की और बराबर अपना काम किया।

परिश्रमका मनकी शक्तिके साथ बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध है। दुःख और चिन्ता आदिसे सदा उनके कामोंमें बहुत बड़ी बाधा होती है। दुःख और चिन्ता आदिसे शारीरिक शक्तिका बहुत नाश होता है, और शक्तिके उस नाश या ह्रासके समय जो काम हम करेंगे वह कभी पूरा नहीं होगा। दुःख और चिन्ता आदिसे तो यों ही हम अपना शरीर शिथिल कर लेते हैं, कार्य्य करनेकी शक्ति हममें रह ही नहीं जाती। जिस तरह सितार बजानेके लिए उसके प्रत्येक तार और प्रत्येक परदेको सुरमें रखनेकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार काम करनेके लिए हमें अपने प्रत्येक अंगको संजीवनी शक्तिसे पूर्ण और मनोवृत्तियोंको शान्त रखनेकी आवश्यकता है।

बहुतसे लोग किसी कामके लिए परिश्रम तो खूब करते हैं पर ज्यों ही वह काम पूरा होनेको होता है त्यों ही वे हताश होकर उसे छोड़ बैठते हैं। किसी कार्यको आरम्भ करनेके समय तो उनमें बहुत अधिक उत्साह होता है और वे परिश्रमपूर्वक बहुतसे अंशोंमें कोई काम कर भी डालते हैं; पर ज्यों ही उनके सफलमनोरथ होनेका समय आता है त्यों ही वे अधीर हो जाते हैं, साहस छोड़ बैठते हैं और इस प्रकार संसारमें कष्टोंकी वृद्धि करते हैं। यदि किसी प्रकार चित्र खींचा जा सके तो दिखलाई पड़ेगा कि सफलता-देवीके मन्दिरके चारों ओर, मन्दिरके हातेके बाहर ही ऐसे हजारों लाखों आदमी हताश होकर पड़े हैं जो यह

नहीं जानते कि हम अपने उद्दिष्ट स्थानके बहुत ही समीप पहुँच गये हैं। यदि किसी प्रकार उनकी आँखोंके सामनेका परदा हटा दिया जाय, किसी प्रकार उन्हें मालूम हो जाय कि हमारे सफलमनोरथ होनेमें अब कितनी थोड़ी कसर रह गई है, तो उनके आश्चर्य्यका ठिकाना न रहेगा। ऐसे लोगोंसे यदि आप उनके विफल-मनोरथ होनेके सम्बन्धमें प्रश्न करें तो उनमें कोई कहेगा कि "मुझे अपने जीवनमें कोई अच्छा अवसर नहीं मिला," कोई कहेगा,—"मुझे कोई सहायक नहीं मिला।" कोई कहेगा,—"माता-पिताने बाल्यावस्थामें मुझे शिक्षा नहीं दी।" कोई कहेगा,—"मेरे बापदादाने सारी संपत्ति नष्ट कर दी" इत्यादि इत्यादि। पर ऐसे लोगोंको यह नहीं मालूम कि उन्हींके सामने अनेक ऐसे दरिद्र और असहाय परिश्रम करके सफलता-देवीके मन्दिरमें पहुँच गये हैं जिन्होंने सड़कोंके लेम्पोंकी रोशनीमें पढ़ा है और दूसरोंकी छोटी छोटी सेवायें करके और चने खाकर अपनी बाल्यावस्था बिताई है।

संसारमें बहुतसे लोग केवल धैर्य्य और अध्यवसायके अभावके कारण ही विफल-मनोरथ होते और दुःखी बने रहते हैं। जितनी अधिक माथा-पच्ची वे लखपती और करोड़पती होनेकी सहज तरकीबें ढूँढ़नेमें करते और जितना अधिक समय वे बिना परिश्रम किये सफल होनेका उपाय ढूँढ़नेमें लगाते हैं यदि उतनी माथा-पच्ची वे उस काममें लग कर उसे पूर्ण करनेके उपायोंमें लगा दें और उतना अधिक समय अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिए परिश्रम करनेमें लगावें तो उन्हें कभी निराश या दुःखी न होना पड़े। कार्य्यका आरम्भ तो सभी लोग कर सकते हैं, पर आरम्भ किये हुए कार्य्यको भली भाँति पूरा करनेवाले विरले ही होते हैं। लेकिन कार्य्यकी समाप्ति—उद्देश्यकी पूर्त्ति—ही मनुष्यको श्रेष्ठ बनाती है।

सम्पन्न या शक्तिशाली होने अथवा किसी प्रकारकी प्रधानता या श्रेष्ठता सम्पादन करनेकी कामना मनुष्यमें स्वाभाविक हुआ करती है। पर तो भी संसारमें बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जो अपने बाल-बच्चोंके लिए साधारण दाल-रोटी आदिकी ही चिन्ता और प्रबन्ध करके शान्त हो

जाते हैं; इससे आगे उनमें और कोई अभिलाषा नहीं होती । इसका कारण क्या है ? बात यह है कि प्रत्येक मनुष्यमें ईश्वरका अंश होता है और जिस मनुष्यकी मानसिक और शारीरिक अवस्था साधारणतः अच्छी होती है, उस मनुष्यको वह ईश्वरीय अंश उन्नति करने और आगे बढ़नेके लिए प्रेरित करता है । अपने समाज, जाति, देश और यहाँ तक कि सारे संसारके प्रति हमारा कुछ न कुछ कर्त्तव्य हुआ करता है । मानव-जातिका कल्याण और संसारके सुखोंकी वृद्धि करना हमारा प्रधान कर्त्तव्य होता है और इसी कर्त्तव्यका ज्ञान चाहे प्रत्यक्ष रूपसे हो और चाहे अप्रत्यक्ष रूपसे हो, हमें सदा आगे बढ़ने, सदा उन्नति करनेके लिए प्रेरित करता रहता है । पर जिन लोगोंकी शारीरिक या मानसिक शक्तियाँ किसी प्रकार निर्बल पड़ जाती हैं, उन्हें अपने इस कर्त्तव्यका ज्ञान नहीं होता और वे अपने परम आवश्यक दैनिक कार्य्य चला कर ही सन्तुष्ट हो रहते हैं; इससे आगे और कुछ करनेकी उनमें कामना नहीं रह जाती ।

प्रत्येक मनुष्य अपने परिवार, समाज, जाति, देश और संसारका कुछ न कुछ ऋणी हुआ करता है और उस ऋणसे मुक्त होना उसका परम कर्त्तव्य है । बहुतसे अवसरोंपर यही कर्त्तव्य हमें अनेक प्रकारके कार्य्य करनेके लिए बाध्य करता है । वह कर्त्तव्य ही हमें यह भी बतलाता है कि उसका पालन हमें स्वयं करना चाहिए; हमारे कर्त्तव्योंका पालन दूसरोंके किये हो ही नहीं सकता । बड़े बड़े धनवानोंको भी बिना कोई काम किये, बिना किसी प्रकारका कर्त्तव्य-पालन किये सन्तोष ही नहीं होता । इसका कारण यही है कि ' कर्त्तव्य ' ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे उन्हें कुछ न कुछ करनेके लिए प्रेरित और उत्तेजित करता रहता है । वही कर्त्तव्य हमें बतलाता है कि आलसी, अकर्मण्य और निरुद्यमी होना बहुत ही बुरा, निन्दनीय और घृणित है—स्वयं बिना परिश्रम किये, केवल दूसरोंके भरोसे रहकर खाना, पहनना और सोना बड़ा भारी पाप है । हममें ईश्वरका जो अंश है यदि हम कोई काम न करें तो वह हमें अपराधी बनाता है और हममें कर्त्तव्यपालनकी बुद्धि उत्पन्न करता है।

इसीसे मनुष्यमें विद्या, धन या बल प्राप्त करने, तरह तरहके नये आविष्कार करने, यथासाध्य दूसरोंका कल्याण करने तथा इसी प्रकारकी दूसरी बातोंकी कामना उत्पन्न होती है।

संसारमें जितने बहुत बड़े काम होते हैं उनके कर्ताओंका उद्देश्य, उन बड़े कामोंके द्वारा केवल अपना पेट पालना ही नहीं होता। एडीसन साहबने केवल पेट भरनेके लिए ही विद्युत्सम्बन्धी अनेक प्रकारके आविष्कार नहीं किये; राममूर्त्ति नायडूने केवल पेट भरनेके उद्देश्यसे इतना बल नहीं प्राप्त किया और न महात्मा तिलकने उदर-पोषणकी इच्छासे गीता-रहस्य लिखा। इन लोगोंके अन्तःकरणमें कोई गुप्त और अमानुषी शक्ति काम कर रही थी और उसी शक्तिने कार्य्य-रूपमें परिणत होकर संसारको अपने अस्तित्वका परिचय दिया। उन लोगोंमें एक ऐसी विशाल कामना या उच्चाकांक्षा थी जो किसी प्रकार दबाये दब नहीं सकती थी; और उसीने उनसे इतने बड़े बड़े काम कराये। वही कामना या आकांक्षा मनुष्यको सदा प्रयत्नशील रखती है, उसे उद्योगी और उद्यमी बनाती है और भीतरी आदर्शको बाहर निकालकर स्वयं देखना तथा संसारको दिखलाना चाहती है।

जिस चीजका सदा उचित उपयोग होता रहता है वह प्रायः अच्छी दशामें रहती है और जिस चीजसे काम न लिया जाय वह खराब या नष्ट हो जाती है। तलवारसे काम न लीजिए तो उसमें मोरचा लग जायगा और हाथों-पैरोंसे काम न लीजिए तो वे दुर्बल हो जायँगे। यही दशा हमारी आन्तरिक शक्तियोंकी भी है। जो मनुष्य अपनी कामनाओं और आकांक्षाओंसे काम नहीं लेता, उसकी कामनायें और आकांक्षायें भी आप-ही-आप दबकर मुर्दा हो जाती हैं। संसारमें बहुतसे लोग जो केवल साधारण दाल-रोटीका प्रबन्ध करके ही निश्चिंत हो बैठते हैं उसका कारण यही है कि वे अपनी आकांक्षाओंका नाश कर देते हैं। पर वे लोग यह नहीं समझते कि शुभ आकांक्षाओंका नाश कर देना आत्म-हत्यासे भी बढ़कर पाप है। इससे हमारी अपनी हानि होती है, हमारे

समाज और देशकी हानि होती है और समस्त संसार तथा मानव-जातिकी हानि होती है ।

मनुष्यमें उच्चाकांक्षाओंका होना कभी बुरा या निन्दनीय नहीं है, बल्कि उनका न होना ही बुरा और निन्दनीय है। एक बार कोई छोटी, साधारण पर शुभ आकांक्षा करो और देखो कि उसकी पूर्त्तिपर तुम्हारा मन कितना सन्तुष्ट और प्रसन्न होता है, तुममें कितना अधिक नया बल आता है और आगे कैसी अच्छी अच्छी आकांक्षायें तुममें उत्पन्न होती हैं। संसारमें कुछ कर दिखलानेका यही सबसे अच्छा उपाय है । बड़े बड़े काम आकांक्षाओंकी इसी प्रकारकी वृद्धिसे हुआ करते हैं ।

बड़े बड़े सेठों, साहूकारों और महाजनोंको लीजिए । वे लाखों करोड़ों रुपयोंके मालिक होते हैं, पर तो भी सदा व्यापारमें लगे रहते हैं, दिन-रात रुपये पैदा करनेके लिए मेहनत करते रहते हैं । खाने पहनने, बाल-बच्चोंका भरण-पोषण करने और सुखसे जीवन बितानेके लिए तो उनके पास यथेष्ट धन होता है; तब फिर वे दिन रात इतना परिश्रम क्यों करते हैं ? आप कह सकते हैं कि केवल धनका लालच ही उनको दिन-रात बैलकी तरह जुते रहनेके लिए विवश करता है । कुछ कंजूस और लालची धनी व्यापारियोंके सम्बन्धमें तो यह बात बहुत ठीक उतरती है, पर संसारके सभी बड़े बड़े व्यापारियोंके सम्बन्धमें यह कथन ठीक नहीं घटता। सभी व्यापारी कंजूस और लालची नहीं होते । उनके व्यापारिक कार्य्योंमें दिनरात लगे रहनेका मुख्य कारण यही होता है, कि बिना परिश्रम और कार्य्य किये, बिना अपनी सारी शक्तियोंका सदुपयोग किये उनको सन्तोष ही नहीं होता; बिना परिश्रम और कार्य्य किये वे जीवित ही नहीं रह सकते । उन्हें धनकी चिन्ता कम और कार्य्यकी अधिक होती है । आप उनकी सारी सम्पत्ति छीन लीजिए और उन्हें देशसे निकाल दीजिए, तो भी उन्हें अधिक कष्ट नहीं होगा; क्योंकि दूसरे देशमें जाकर और निर्धन रहकर भी वे अपनी शक्तियोंका उपयोग कर सकेंगे—परिश्रम और कार्य्यमें लग सकेंगे। लेकिन यदि आप उन्हें

सब प्रकारका शारीरिक सुख देकर भी केवल कार्य्य और परिश्रमसे वंचित रखना चाहें तो उन्हें बहुत ही अधिक कष्ट होगा, वे उस दशामें सम्भवतः कभी न रह सकेंगे।

बात यह है कि उच्च कोटिके मनुष्य सदा कर्त्तव्य और परिश्रमके विचारसे ही आदिसे अंत तक सब काम करते हैं । कर्त्तव्य और परिश्रम ही उनका पुरस्कार होता है । मनुष्यमें जो स्वाभाविक उच्चाकांक्षा होती है, यदि बलपूर्वक उसका नाश न कर दिया जाय तो वह मनुष्यसे अवश्य परिश्रम और कर्त्तव्य कराती है और इसके फलस्वरूप उसे महात्मा या महान् पुरुष बना देती है । यथेष्ट धन, बल या विद्या आदि प्राप्त कर चुकनेके उपरान्त भी यही आकांक्षा उसे बराबर आगे बढ़ाये चलती है । आगे बढ़नेमें मनुष्यका अपना भी लाभ होता है और दूसरोंका भी । मनुष्यके उच्चाकांक्षी होनेकी—सदा परिश्रमपूर्वक कर्त्तव्य पालन करते रहनेकी—सबसे अधिक आवश्यकता इसी लिए है । केवल अपने निर्वाहके लिए यथेष्ट धन आदि संग्रह करके काम-धन्धा छोड़ बैठना और आगे परिश्रम या उन्नति न करना कभी वास्तविक मनुष्यत्व नहीं हो सकता । यह तो एक प्रकारसे बड़ा भारी स्वार्थसाधन हुआ । हमने अपना काम तो चला लिया, पर औरोंके प्रति हमारा जो कर्त्तव्य है उसका पालन हमने कहाँ किया—हमपर जो ऋण है उसका परिशोध हमने कहाँ किया ?

प्रत्येक मनुष्यका यह एक परम पवित्र कर्त्तव्य है कि वह अपनी सारी शक्तियोंका जितना अच्छा और जितना अधिक उपयोग कर सके, करे और संसारकी अच्छा बातोंको जहाँ तक बढ़ा सके, बढ़ावे । और यह एक प्राकृतिक नियम है कि जो मनुष्य संसारकी अच्छी बातोंकी जितनी ही अधिक वृद्धि करता है, स्वयं उसे भी उतना ही अधिक लाभ होता है—स्वयं उसमें भी उतनी ही अधिक पूर्णता आती है । पर जो मनुष्य संसारके कल्याणका विचार छोड़कर स्वार्थी, लालची या अकर्मण्य हो जाता है वह संसारमें नीच, निन्दनीय और घृणित समझा जाता है । ऐसा मनुष्य कभी सुखी या शान्त नहीं रह सकता;

और यदि वह किसी प्रकार अपनी अवस्थाको ही सुखपूर्ण मानने लगे तो उसका यह मानना भी कभी यथार्थ नहीं हो सकता।

कुछ लोगोंमें उच्चाकांक्षायें तो होती हैं पर उनके साथ ही एक दोष भी होता है। वह दोष यह है कि लोग बहुत बड़े बड़े कामोंको एक ही हल्लेमें और चटपट कर डालना चाहते हैं। वे लोग यह नहीं समझते कि किसी कामको उचित रीतिसे करनेके लिए निरन्तर धैर्य्य-पूर्वक परिश्रम करनेकी आवश्यकता होती है; और संसारमें इसी निरन्तर तथा धैर्यपूर्वक किये हुए परिश्रमकी ही शोभा भी है। जो मनुष्य सदा उन्नति करनेके प्रयत्नमें लगा रहता है, सदा अपना ज्ञान बढ़ाता रहता है, अच्छे अवसरोंका सदा उपयोग करता रहता है, अपने अवकाशका समय भी किसी न किसी अच्छे काममें ही बिताता है, वही आगे चलकर कभी न कभी कोई बहुत बड़ा काम करनेमें भी समर्थ हो सकता है। क्योंकि वह सदा अपनी उन्नति और उत्कर्ष करनेमें लगा रहता है। पर जो मनुष्य बातें तो बड़ी लंबी चौड़ी सोचता है, पर सारा समय सोच-विचारमें ही बिता देता है और कभी काममें नहीं लगता वह जहाँका तहाँ रह जाता है, बल्कि प्रायः और भी अवनत दशामें पहुँच जाता है।

जो मनुष्य संसारमें कोई बड़ा काम करना चाहता हो उसे चाहिए कि वह सदा अपनी उन्नति करे—आत्मोत्कर्षसाधनमें लगा रहे। मनुष्यकी योग्यता, कार्य्य-कुशलता और सामर्थ्य आदिका यही सबसे अच्छा चिह्न है। यह न समझना चाहिए कि केवल बाल्य या युवा अवस्था ही शिक्षाके लिए उपयुक्त अवस्था है। नहीं, मनुष्यका सारा जीवन ही कुछ न कुछ सीखने और सदा अपना ज्ञान बढ़ानेके लिए बना है। मनुष्य स्वभावतः जिज्ञासु हुआ करता है; उसे सदा सब बातोंका ज्ञान प्राप्त करनेकी चिन्ता लगी रहती है। आजकल संसार, विद्या, कला और ज्ञान आदिमें जो इतना उन्नत दिखलाई पड़ता है, उसका मुख्य कारण यही है कि मनुष्यकी ज्ञान-पिपासा कभी शान्त नहीं होती; जो ज्ञान उसे प्राप्त होता है वही उसे और भी अग्रसर होनेके लिए प्रेरित करता

है। इस प्रकार उसके ज्ञानका भाण्डार बढ़ता जाता है। यथासाध्य उस ज्ञानकी वृद्धि करना प्रत्येक मनुष्यका प्रधान कर्त्तव्य है। अपना ज्ञान बढ़ाना, आत्मोत्कर्ष करना ही इस कर्त्तव्यके पालनका प्रधान मार्ग है।

संसारमें सीखने योग्य असंख्य और अनन्त बातें हैं। जो बातें वास्तवमें सीखने योग्य हैं, स्कूलोंमें तो उनका नाम भी नहीं होता; हाँ कालेजोंमें उनकी थोड़ी बहुत चर्चा अवश्य होती है। वास्तविक शिक्षा स्कूल और कालेज छोड़नेके बाद ही आरम्भ होती है। स्कूल-कालेजोंमें वे बातें सिखलाई नहीं जातीं, केवल उनके सीखनेका मार्ग दिखलाया जाता है। उसी मार्गपर चलकर अपने शेष जीवनमें मनुष्य ज्ञान अर्जन कर सकता है। पर आजकल ज्ञानकी प्राप्तिके लिए बहुत ही थोड़े लोग उद्योग करते हैं, अधिकांश पेट-पूजा और धन-संग्रहमें ही लग जाते हैं। संसारकी और और चिन्तायें लोगोंको आ घेरती हैं और वे ज्ञानकी प्राप्तिकी ओरसे उदासीन हो जाते हैं। ऐसे मनुष्योंसे हम केवल दो बातें कहना चाहते हैं। एक तो यह कि मनुष्यका जीवन भोजन और वस्त्र आदिकी चिन्ताके लिए नहीं है; बल्कि भोजन और वस्त्र आदिकी चिन्ता जीवनकी रक्षाके लिए है। केवल भोजन और वस्त्र आदिकी चिन्तामें ही अपना सारा समय बिता देना, जीवनका बड़ा ही हीन और नीच आदर्श है। मनुष्यका जीवन वास्तवमें नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति करने, संसारका ज्ञान-भाण्डार बढ़ाने और मानव-जातिका कल्याण करनेके लिए है। एक विद्वान्का कथन है कि जीवन केवल व्यतीत करनेके लिए नहीं है, बल्कि श्रेष्ठ बननेके लिए है। और हम उसी दशामें श्रेष्ठ बन सकते हैं जब कि हमसे दूसरोंको लाभ पहुँचे। दूसरोंको लाभ पहुँचानेके लिए ही हमें अपना उत्कर्ष, अपनी उन्नति करनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। यों तो संसारमें लाखों करोड़ों आदमी यों ही पैदा होते और मर जाते हैं पर जीवन उन्हीं मनुष्योंका श्रेष्ठ समझा जाता है जिनसे उनकी जाति, उनके देश और अन्तमें समस्त संसारका कल्याण होता है। ऐसे लोगोंके जीवनपर यदि आप-

ध्यान दें, तो आपको वह बहुत ही उन्नत और उत्कृष्ट जान पड़ेगा। यह उन्नति और यह उत्कर्ष आपसे ही आप नहीं हो जाता, उसके लिए मनुष्यको बहुत कुछ प्रयत्न करनेकी आवश्यकता होती है। और दूसरी बात इस सम्बन्धमें यह है कि आत्मोत्कर्षकी सिद्धि कभी व्यर्थ नहीं होती। जो मनुष्य सदा अपनी उन्नति करता रहता है उसे आगे चलकर बहुत कुछ आर्थिक लाभ भी होता है और आत्मिक संतोष भी। जो मनुष्य केवल अपनी युवावस्था तक प्राप्त की हुई थोड़ी बहुत शिक्षाको ही यथेष्ट समझेगा और आगे अपना ज्ञान बढ़ानेका प्रयत्न न करके केवल पेट पालनेकी चिन्तामें लग जायगा, वह न तो कभी विशेष आर्थिक लाभ ही कर सकेगा और न कभी उसे आत्मिक शान्ति या मानसिक सन्तोष ही होगा। पर जो मनुष्य सदा अपने ज्ञानकी वृद्धि करता रहेगा, प्रत्येक अवसर और प्रत्येक घटनासे कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण करता रहेगा, वह आगे चलकर यथेष्ट आर्थिक लाभ भी उठा सकेगा और दूसरोंका कल्याण भी कर सकेगा। और उसकी आत्माको इसके परिणामस्वरूप जो शान्ति और जो सन्तोष होगा वह अलग।

जो मनुष्य सदा अपना ज्ञान बढ़ानेके प्रयत्नमें लगा रहता है वह मानों सदा अपनी उन्नतिके प्रयत्नमें ही लगा रहता है। उसकी बढ़ी हुई जानकारी व्यापार और व्यवहार सभी बातोंमें उसकी बहुत सहायता करती है। पर जो लोग इस ओर ध्यान नहीं देते वे मानों अपना सारा जीवन नष्ट कर देते हैं। आजकलके युवकोंका अधिकांश समय निकम्मी और व्यर्थकी बातोंमें नष्ट होता है। समयका यह नाश जीवनका ही नाश है। यदि समयका उपयोग किसी प्रकार अपना ज्ञान बढ़ाने और अपनी उन्नति करनेमें किया जाय तो उसीको लोग जीवनका सदुपयोग करना कहेंगे। जीवनके सदुपयोग और दुरुपयोगमें केवल यही भेद है कि सदुपयोगमें हम प्रत्येक अवसर और प्रत्येक क्षणसे कुछ न कुछ लाभ उठाते हैं और दुरुपयोगमें अच्छे अच्छे अवसर खो देते हैं और बहुमूल्य समय यों ही नष्ट कर देते हैं। जस्टिस महादेव गोविन्द रानडेने इतनी श्रेष्ठता

क्योंकर सम्पादित की ? इसी लिए कि वे सदा अपना ज्ञान बढ़ानेका प्रयत्न किया करते थे । वे सदा कुछ न कुछ पढ़ा या सोचा करते थे । अन्तिम अवस्थामें आप प्रायः कुछ बीमार रहा करते थे; पर बीमारीकी दशामें भी आप सदा कुछ न कुछ पढ़ते ही रहते थे । अन्तिम बार, मृत्युसे कुछ दिन पहले, जब आपने हाईकोर्टसे छः महीनेकी छुट्टी ली तब भी आपका अधिकांश समय ज्ञानार्जनमें ही बीतता था । आपकी पढ़ाई देखकर घरके लोग घबरा जाते थे और कहा करते थे कि क्या दिनभर पढ़नेसे तबी-यत भी नहीं घबराती ? उस समय आप जल-वायुका परिवर्तन करनेके लिए महाबलेश्वर जानेको थे, जिस समय घरके लोगोंने कहा कि महाब-लेश्वर चलकर पढ़ाईका काम कम हो जाना चाहिए जिससे विश्रांति मिले । इसपर आपने उत्तर दिया था,—" विश्रान्तिका अर्थ क्या है ? जिस पढ़ाईमें मन लगता है, समाधान होता है और छोटी छोटी वेदनायें यों ही भूल जाती हैं, उसे छोड़नेसे क्या विश्रान्ति मिल सकती है ? विना कोई काम किये निरर्थक जीवन बितानेका समय यदि आ जाय तो तत्काल ही अन्त हो जाना इससे कहीं अच्छा है । " आपके शिष्य स्वर्गीय मि० गोखले भी अपना अधिकांश समय ज्ञानकी वृद्धि करनेमें ही व्यतीत करते थे । वे सारी सारी रात पुस्तकें पढ़ते रहते थे और तरह तरहके हिसाब लगाया करते थे, तब कहीं जाकर उनकी वक्तृतायें सर्वश्रेष्ठ हुआ करती थीं और उनसे देश-वासियोंका इतना उपकार होता था ।

जिस प्रकार थोड़ा थोड़ा धन संग्रह करके कुछ दिनोंमें मनुष्य बहुत धनवान् हो जाता है, उसी प्रकार थोड़ा थोड़ा ज्ञान बढ़ाते रहनेसे मनुष्य कुछ समयके उपरान्त बहुत बड़ा विद्वान् और ज्ञानवान् हो जाता है और इसी विद्या और ज्ञानकी सहायतासे मनुष्य पूर्णता प्राप्त करता है । यह विद्या और ज्ञान समयपर हमारे लिए अच्छी पूँजीका काम देते हैं और हम उनसे यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं । और ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों त्यों संसारकी विद्या और ज्ञानकी वृद्धि होती जाती है त्यों त्यों उसका महत्त्व और मूल्य भी बढ़ता जाता है । आजकल प्रति-

योगिता या चढ़ा-ऊपरीका जमाना है। जिस मनुष्यका ज्ञान जितना ही अधिक होगा वह उतनी ही अधिक बाजी मार ले जायगा। इस लिए जो मनुष्य संसारमें सब प्रकारकी उन्नति करना चाहता हो उसे उचित है कि वह अपने ज्ञानकी वृद्धि करे; अपना महत्त्व और मूल्य बढ़ावे। इससे बढ़कर मनुष्यके लिए संसारमें और कोई काम ही नहीं है। इसके लिए हम यही उचित है कि हम अपने आचरणके सुधार और ज्ञान, बल तथा धनकी वृद्धिका कोई अवसर व्यर्थ हाथसे न जाने दें। प्रत्येक अवसर, प्रत्येक क्षणका कुछ न कुछ सदुपयोग करें। आजकल समय बहुत ही अधिक मूल्यवान् पदार्थ समझा जाता है। पाठक जानते हैं कि रेलकी लाइनें प्रायः टेढ़ीमेढ़ी होती हैं और बहुत कुछ घूम फिरकर अपने उद्दिष्ट स्थान तक पहुँचती हैं। कुछ दिन हुए अमेरिकामें करोड़ों रुपये वहाँकी लाइनोंको सीधा करनेमें व्यय किये गये थे। क्यों ? इसी लिए कि सीधी लाइनपर रेलगाड़ी चलनेसे उद्दिष्ट स्थानतक पहुँचनेमें समयकी बहुत बचत होती है। आजकल संसारमें जो मनुष्य कुछ काम करना चाहता हो उसे समयका इतना ही अधिक ध्यान रखना चाहिए। नित्य नई नई मशीनोंका आविष्कार समयकी बचतके लिए ही किया जाता है, नई नई लाइनें समयकी बचतके लिए ही बनाई जाती हैं और यात्राके लिए नये नये साधन भी समयकी बचतके लिए ही तैयार किये जाते हैं। ऐसी दशामें प्रत्येक मनुष्यका यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपने बहुमूल्य समयको कभी नष्ट न होने दे और सदा उससे लाभ उठाता रहे।

समय ही प्रत्येक मनुष्यका धन और ज्ञान ही प्रत्येक मनुष्यका बल है। जो मनुष्य सदा समयका सदुपयोग करता है वह मानों धनी बननेका प्रयत्न करता है और जो ज्ञान प्राप्त करता है वह अपना बल बढ़ाता है। आपको बड़े बड़े धनवानों और विद्वानोंके अनेक ऐसे उदाहरण मिलेंगे जिनमें उन्होंने बाल्यावस्थामें दरिद्रताके कारण छोटी मोटी नौकरी करके अपना पेट चलाया हो और अवकाशके समय विद्या और ज्ञानकी प्राप्तिका उद्योग किया हो। उनके इसी उद्योगने आगे चलकर पूँजीका

काम दिया और उन्होंने उस विद्या और ज्ञानकी सहायतासे शेष जीवनमें बहुत उन्नति की। उन लोगोंमें आत्मोत्कर्ष करनेकी प्रबल इच्छा थी और इसी लिए वे सदा अपनी उन्नतिके प्रयत्नमें लगे रहते थे। वे निरन्तर आगे बढ़ते गये और अन्तमें उन्होंने सफलता प्राप्त कर ही ली। अपने आसपास ही आपको बहुतसे ऐसे मनुष्य दिखलाई देंगे, जिनकी मानसिक, शारीरिक और आर्थिक अवस्था तो साधारणतः बहुत अच्छी होगी, पर जिनके जीवनमें कभी कोई अच्छा परिवर्तन न हुआ होगा। इसका कारण यही है कि उन्होंने अपनी शक्तियों और समयका कभी सदुपयोग नहीं किया; उन्होंने आत्मोत्कर्ष साधनका कभी कोई प्रयत्न नहीं किया। वे अपनी वर्त्तमान स्थितिमें ही सन्तुष्ट रह जाते हैं, आगे बढ़नेकी वे कोई आवश्यकता ही नहीं समझते; अथवा यदि समझते भी हैं तो उसके लिए कभी कोई प्रयत्न नहीं करते। बहुतसे ऐसे मनुष्य जो यदि थोड़ासा प्रयत्न करते तो बहुतसे लोगोंको अपने यहाँ नौकर रख लेते, केवल आत्मोत्कर्षकी कामनाके अभाव और अपनी शक्तियोंका सदुपयोग न करनेके कारण ही जन्मभर दूसरोंकी नौकरियाँ करते रहते हैं।

ज्ञान बढ़ानेके सबसे अच्छे साधन दो हैं,—एक *अध्ययन* और दूसरा *चिन्तन*। बहुतसे लोग समझते हैं कि अध्ययन केवल बाल्य और युवावस्थामें ही हो सकता है—बूढ़ा तोता राम राम नहीं पढ़ सकता। लेकिन ऐसा समझना बड़ी भारी भूल है। जिन लोगोंने बाल्य या युवावस्थामें किसी कारण विद्या प्राप्त न की हो, वे प्रयत्न करने पर आगे चलकर भी उसे प्राप्त कर सकते हैं। इसमें आवश्यकता है केवल विद्याके प्रति अनुराग होने और उसे प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छाकी। इसी प्रकार वे लोग भी बड़ी भारी भूल करते हैं जो यह समझते हैं कि युवावस्थामें ही विद्यार्थी-जीवनका अंत हो जाता है; उसके उपरान्त अध्ययनका समय अथवा उसकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती। यदि सच पूछिए तो स्कूलों और कालेजों आदिमें तो किसी विषयका बहुत ही साधारण ज्ञान करा दिया जाता है और उसे प्राप्त करनेके कुछ ढंग बतला दिये जाते हैं। वास्तविक अध्ययन तो स्कूल या कॉलेज छोड़नेके उपरान्त ही हो सकता है।

आजकल शिक्षाके प्रचारपर तो बहुत जोर दिया जाता है, पर शिक्षाका वास्तविक अभिप्राय और महत्त्व बहुत कम लोग समझते हैं। पाठ्य पुस्तकें पढ़ लेना ही शिक्षा प्राप्त करना नहीं है। शिक्षा वही है जिसमें मनुष्यको अपने सांसारिक जीवनके लिए उपयोगी और कामकी बातोंका ज्ञान हो, अपना कर्त्तव्य भली भाँति समझमें आ जाय, धर्म, सदाचार और नीतिमें निष्ठा और दृढ़ता और समाज तथा देशके प्रति भक्ति और कर्त्तव्यबुद्धि उत्पन्न हो। बहुतसे ग्रेजुएट, लोगोंको शिक्षा आदि देनेके बहानेसे ही ठगते हुए देखे जाते हैं और बहुतसे यही नहीं जानते कि संसारमें जीवन किस प्रकार व्यतीत करना चाहिए। वे इधर उधर छोटी मोटी नौकरियाँ ही ढूँढ़ते फिरते हैं। बहुतसे पढ़े लिखे और सभ्य कहलानेवाले लोग दुराचारी और कुमार्गी हुआ करते हैं और बहुतसे शिक्षित देशद्रोही और समाज-शत्रु होते हैं। ऐसे लोगोंकी शिक्षा किस कामकी?

आजकलकी शिक्षामें एक और बहुत बड़ा दोष यह होता है कि आदमी काम करनेके योग्य नहीं रह जाता। उसकी कार्य्य करनेकी शक्ति बहुधा नष्ट हो जाती है। लोग पढ़ लिखकर शिक्षित तो अवश्य कहलाने लगते हैं, पर शिक्षित बननेमें ही वे अपनी सारी शक्तियोंका नाश कर देते हैं। यह दोष प्रायः संसारव्यापी हो रहा है और इसे दूर करना किसी एकाध व्यक्तिके लिए बहुत कठिन बल्कि प्रायः असम्भव है। इसके लिए संसारके बहुत बड़े राष्ट्रों और दिग्गज विद्वानोंके प्रयत्नकी आवश्यकता है, तो भी बहुतसे लोग यदि चाहें तो इस दोषसे बहुत कुछ बच सकते हैं और अपनी सन्तानको बचा सकते हैं। केवल पुस्तकें पढ़कर ही मनुष्य कभी संसारका काम नहीं चला सकता। उसे किसी प्रकारकी कला आदि जानने और व्यवहार-बुद्धिकी आवश्यकता होती है। आजकलके शिक्षितोंमें इन्हीं बातोंका अभाव हुआ करता है और इसी लिए वे सदा अधूरे ही बने रहते हैं।

दूसरी ओर वे लोग हैं जो कुछ हुनर भी जानते हैं और जिन्हें व्यवहारका भी ज्ञान होता है। पर वे लोग निरक्षर होते हैं और इस लिए वे भी अधूरे ही रहते हैं। एक बहुत बड़े विद्वानका मत है कि बड़े बड़े वैज्ञानिक आविष्कार करनेसे भी संसारका उतना अधिक कल्याण नहीं हो सकता जितना इन निरक्षरोंको साक्षर बनानेसे हो सकता है। बहुतसे निरक्षर अधेड़ ऐसे होते हैं जिन्हें कुछ पढ़ लिख लेनेकी बहुत लालसा होती है, पर वे लोग यही समझकर उस लालसाको बलपूर्वक दबाते हैं कि अब पढ़नेका समय नहीं रहा। पर यदि वे लोग चाहें तो अपनी फ़ुरसतके समय अथवा निरर्थक कामोंमेंसे थोड़ा बहुत समय निकालकर बहुत अच्छी तरह पढ़ लिख सकते हैं। पाश्चात्य देशोंमें बहुतसे विद्यालय ऐसे ही हैं जिनमें केवल कारखानों आदिमें काम करनेवाले मजदूरोंको ही शिक्षा दी जाती है। ऐसे लोग सहजमें बहुत कुछ पढ़ लेते हैं और उस पढ़ाईसे अच्छा लाभ उठाते हैं। सच पूछिए तो शिक्षाका महत्त्व भी धन या सम्पत्ति आदिसे कम नहीं है। प्राप्त विद्याको व्यवहारमें लगाकर मनुष्य अच्छा आर्थिक लाभ उठा सकता है और विद्या प्राप्त करनेका अवसर कभी समाप्त नहीं होता, वह सदा बना रहता है। जीवनकी प्रत्येक अवस्थामें विद्या प्राप्त की जा सकती है। अन्धे, बहरे, गूँगे, बूढ़े, रोगी सभी विद्योपार्जन करते हुए देखे जाते हैं। इसमें आवश्यकता केवल परिश्रम करने और समय लगानेकी होती है। अपना ज्ञान बढ़ाने और मानसिक शक्तियोंको विकसित करनेकी लालसा प्रत्येक मनुष्यमें होनी चाहिए। यह लालसा बहुत ही सुन्दर, पवित्र और लाभदायक है। इस लालसाको पूर्ण करनेके समय मनुष्यका मन बहुत ही प्रसन्न और संतुष्ट रहता है और भावी जीवनमें उससे बहुत कुछ लाभ भी होता है।

एक विद्वान्का कथन है कि मनुष्यको दो प्रकारकी शिक्षायें मिलती हैं; पहली शिक्षा तो वह होती है जो उसे दूसरोंसे मिलती है और दूसरी महत्त्वपूर्ण शिक्षा वह है जो वह स्वयं अपने आपको देता है।

इससे सिद्ध है कि स्वयं अर्जित किये हुए ज्ञानका महत्त्व और उपयोग दूसरोंसे प्राप्त किये हुए ज्ञानकी अपेक्षा कहीं अधिक है । एक भी ऐसा मनुष्य न मिलेगा जिसने केवल शिक्षकहीसे शिक्षा प्राप्त करके किसी प्रकारके विज्ञान आदिमें बहुत अधिक उन्नति की हो । सभी उदाहरण ऐसे मिलेंगे जिनमें लोग स्वयं ही परिश्रम करके बहुत बड़े वैज्ञानिक या पंडित बने हों । और एक बात यह भी देखी आती है कि जिन लोगोंमें भारी विद्वान् या पण्डित होनेकी वास्तविक योग्यता होती है, उनकी बुद्धि प्रायः देरमें ही परिपक्व होती है । अतः जब तक मनुष्य पूर्ण परिश्रम न कर ले तब तक उसे कभी हताश न होना चाहिए ।

कुछ लोगोंका स्वभाव ऐसा होता है कि वे दूसरोंसे किसी प्रकारकी शिक्षा लेनेमें ही अपना अपमान समझते हैं । यह बड़ी भारी मूर्खता है । ज्ञानका संग्रह तो हमें प्रत्येक मार्ग, प्रत्येक साधन और प्रत्येक स्थानसे करना चाहिए । इसमें लज्जा, संकोच या अपमान आदिकी कोई बात नहीं है । वास्तविक लज्जा या अपमान तो ज्ञानका संग्रह न करनेमें ही है । साधारण दफ्तरोंमें भी ऐसे तुनुक मिजाज लोग मिलेंगे जो अपने साथके काम करनेवाले दूसरे आदमियोंसे कुछ सीखना बहुत बुरा समझते हों । ऐसे लोगोंकी सदा हँसी उड़ाई जाती है । वे कभी कोई बात सीख नहीं सकते, इस लिए जन्मभर उनकी दुर्दशा होती है । पर जो लोग स्वयं जिज्ञासु बनकर काम सीखते और अपना ज्ञान बढ़ाते हैं, वे बहुत शीघ्र अच्छी उन्नति कर लेते हैं ।

ज्ञान चाहे जिस प्रकारका हो, सदा उपयोगी होता है । ज्ञानकी सहायतासे ही मनुष्य अपने जीवन और स्वास्थ्यका पूरा पूरा ध्यान रख सकता है, अपनी जीविकाके निर्वाहका प्रबन्ध कर सकता है, माता-पिता, भाई-बन्धु, इष्ट-मित्र और समाज तथा देशके प्रति अपने कर्त्तव्योंको जान सकता, उनका पालन कर सकता और अपने आचार विचार आदि ठीक रख सकता है । रेल तार और जहाज आदि सब ज्ञानकी ही कृपाके फल हैं; यहाँतक कि संसारकी समस्त उपयोगी और आवश्यक बातें ज्ञानका

ही प्रसाद हैं। जिस मनुष्यको ज्ञान न हो उसका जीवन वास्तविक अर्थमें जीवन ही नहीं है। जिस ज्ञानका महत्व इतना अधिक हो उसकी प्राप्तिकी ओरसे उदासीन रहना केवल बड़ी भारी मूर्खता ही नहीं बल्कि बड़ा भारी पाप भी है।

प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता जान स्टुअर्ट मिलने ज्ञानार्जनके जो सबसे अच्छे उपाय बतलाये हैं, उन्हींको यहाँ देकर यह प्रकरण समाप्त किया जाता है। उसने कहा है—"प्रत्येक पदार्थके विषयमें जिज्ञासा करनी चाहिए; बिना बहुत अच्छी तरह सोचे समझे कभी अपना या पराया कोई सिद्धान्त ग्रहण नहीं करना चाहिए; यदि हमारे सामने किसी प्रकारका वाक्छल होता हो अथवा असंबद्ध या पेचीली बातें कही जाती हों, तो उन्हें अवश्य ताड़ लेना चाहिए और सबसे बढ़कर किसी शब्दका उपयोग करने अथवा विषयसे सहमत होनेसे पहले उसका पूरा और ठीक अभिप्राय समझ लेना चाहिए।" ये ही सब बातें हैं जिनका जानना बहुत ही आवश्यक है, बहुत कुछ सहज है और सबसे बढ़कर परम कर्त्तव्य है।

छठा प्रकरण ।

उपयोगी परामर्श ।

(क्रमागत ।)

[धैर्यकी आवश्यकता--महत्त्व--उपयोग--नैतिक साहस--कुछ उदाहरण--गुरु गोविन्दसिंहके पुत्रोंका बलिदान--धैर्यकी आवश्यकता सभी कामोंमें होती है--' प्रसिद्धि, ' ' सर्वप्रियता ' और ' नेतृत्व '--विचारस्वातंत्र्य--' जीहजूर ' और ' ठकुरसुहाती '--मानसिक बल और दृढ निश्चय--रानडेका उदाहरण--साहस और धैर्यका सत्यनिष्ठाके साथ सम्बंध--आत्म-संयमन या मनोनिग्रह--आवश्यकता, महत्त्व और उपयोग--सदाचार और मनोनिग्रह--मनोनिग्रहके अभावसे होनेवाले दोष--कुछ उदाहरण--बातचीतमें सावधानता--मनोनिग्रहसे होनेवाले राष्ट्रीय लाभ--मनोनिग्रह और अपव्यय--स्वावलम्बन--महत्त्व और उपयोग--स्वावलम्बनके लिए कर्त्तव्य-ज्ञान--कर्त्तव्य-पालन--स्वावलम्बी ही आदर्श हैं ।]

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

--भर्तृहरि ।

संसारके प्रायः सभी कार्य्योंमें और विशेषतः शुभ तथा महान् कार्योंमें कभी न कभी ऐसा अवसर आता है जब कि मनुष्यको कठिनाइयाँ सहनेके लिए धैर्य और भावी आपत्तियोंसे न डरकर बराबर आगे बढ़ते रहनेके लिए साहसकी आवश्यकता होती है । और जो मनुष्य ऐसे विकट अवसरोंपर अपने इन गुणोंका पूरा पूरा परिचय देता है वही संसारमें कुछ काम भी कर दिखलाता है और वही अपनी अक्षय कीर्ति भी छोड़ जाता है ।

भगवान् मनुने "धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं" आदि धर्मके जो दस लक्षण बतलाये हैं उनमें सबसे पहले धृति अर्थात् धैर्य्यको ही रक्खा है। जो मनुष्य सन्मार्ग और सत्य न छोड़कर धैर्य्यपूर्वक सब प्रकारके दुःख सहता है वही महात्मा कहलानेके योग्य है। ऐसा मनुष्य ईश्वरीय कोपको भी तुच्छ समझता है और सदा अपनी श्रेष्ठता तथा मर्य्यादा बनाये रखता है। संकटके समय वह पर्वतके समान अचल और अटल रहता है और विपत्तियों तथा कठिनाइयोंके तीर उसके पैरोंपर आकर गिरते हैं। वही धैर्य्य सब दशाओंमें उसका सहायक होता है और सब प्रकारकी विपत्तियोंसे उसे अच्छी तरह बचा ले जाता है। जिस प्रकार वीरपुरुष मृत्यु या शत्रुओंकी परवा न करके रण-भूमिमें जाते और वहाँसे विजयी होकर लौटते हैं उसी प्रकार धीर पुरुष संसारकी कठिनाइयों और विपत्तियोंको तुच्छ समझकर सदा आगे बढ़ता रहता है और अन्तमें विजय प्राप्त करता है। धैर्य्य महात्मा पुरुषोंका स्वभावसिद्ध गुण है। कविने कहा है,—

> विपदि धैर्य्यमथाभ्युदये क्षमा,
> सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
> यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,
> प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

अर्थात् विपत्तियोंके समय धैर्य्य, सम्पन्नावस्थामें क्षमा, सभामें वक्तृत्व, युद्धमें पराक्रम, कीर्त्तिकी रुचि और विद्याका व्यसन ये सब बातें महात्माओंमें स्वाभाविक होती हैं।

जिस प्रकार धैर्य्यका होना मनुष्यके लिए इतना लाभदायक है उसी प्रकार उसका अभाव हानिकारक भी है। धीर मनुष्य विजयी होकर कीर्त्ति प्राप्त करता है, पर कायर मनुष्य परास्त होकर केवल अपयशका ही भागी नहीं होता बल्कि अनेक अवसरोंपर बहुत पीड़ित और अपमानित भी होता है। अधीर होकर मनुष्य अपने ऊपर और भी नई नई

आपत्तियाँ बुला लेता है, आपत्तियोंसे बचनेकी बुद्धि और शक्ति खो देता है, उसे कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य कुछ भी नहीं सूझता, निराशा उसे चारों ओरसे घेर लेती है, वह घोर अन्धकारमें पड जाता है और उसकी इतनी दुर्दशा केवल इसी लिए होती है कि उसमें धैर्य्यका अभाव होता है। अतः मनुष्यको कभी और किसी दशामें अधीर न होना चाहिए।

धैर्यका एक बहुत ही आवश्यक और उससे बहुत कुछ मिलता जुलता एक और अंग है जिसे साहस कहते हैं। यहाँ हमारा अभिप्राय उस साहससे नहीं है जो शारीरिक बलके कारण होता है और जिसकी सहायतासे लोग युद्ध-क्षेत्रमें जाकर सैकड़ों हजारों प्राणोंका नाश करते हैं; बल्कि उस मानसिक साहससे है जो मनुष्यको कभी नीति-पथसे डिगने नहीं देता और सदा कर्त्तव्य-परायण बनाये रखता है। इस साहसको धैर्य्यका आवश्यक अंग इस लिए कहते हैं कि बिना इसके धैर्य्यका काम अधूरा रह जाता है। विपत्तिकालमें धैर्य केवल हमारी रक्षा करता है पर साहस हमें उन्नति पथपर अग्रसर करता है। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे अवसरोंपर भी जब कि हमें धैर्य्यकी आवश्यकता नहीं होती, साहस हमें बहुत कुछ सहायता देता है। यदि हमारे सामने कभी कोई कठिन कर्त्तव्य आकर उपस्थित हो जाय तो उसके पालनमें हमें साहससे ही पहले काम लेना पड़ेगा। जहाँ कहीं सच बोलने या न्याय करनेका काम पड़ेगा; जहाँ कहीं प्रलोभनोंसे बचनेकी आवश्यकता होगी, जहाँ कहीं बल और बुद्धिकी परीक्षा होगी वहाँ सबसे पहले नैतिक साहसकी ही आवश्यकता होगी। जिस मनुष्यमें यह गुण न होगा वह अपने शेष गुणोंकी रक्षा भी किसी प्रकार न कर सकेगा।

साक्रेटीस या सुकरात बहुत बड़ा विचारशील और सत्यनिष्ठ था, पर अपने विचारों और सत्यनिष्ठाकी रक्षा उसने अपने नैतिक साहसके द्वारा ही की थी। अधिकारियोंने उसपर मिथ्या अभियोग लगाया था और उसे अन्यायपूर्ण दण्ड किया था। यदि उसमें नैतिक साहस न होता

तो बहत्तर वर्षकी अवस्थामें वह उनका मुकाबला करने और अंतमें जहर पीनेके लिए कभी तैयार न होता और उस दशामें आज उसकी इतनी कीर्त्ति भी न होती । यूरोपमें जिस समय धर्म्मान्धता बहुत बढ़ी हुई थी, उस समय दर्शन और विज्ञान आदिका अध्ययन और अन्वेषण करनेवाले लोग काफिर और धर्म्मद्रोही माने जाते थे । ऐसे लोगोंको राज्यकी ओरसे बहुत ही कठोर दण्ड दिये जाते थे । बहुतोंको आजन्म जेलमें रहना पड़ता था और बहुतेरे जीते ही जला दिये जाते थे । पर बहुधा वे अपना धैर्य्य और साहस नहीं छोड़ते थे और अपने सिद्धान्तपर दृढ़तापूर्वक अड़े रहते थे । परिणाम यह होता था कि उनके अनुयायियोंकी संख्या बराबर बढ़ती जाती थी और उनके आरम्भ किये हुए अनुसन्धान बराबर जारी रहते थे । आज दिन यूरोपमें ऐसे लोग महात्मा और शहीद समझे जाते हैं ।

जिस समय महाराष्ट्रके रत्न समर्थ रामदास स्वामी विरक्त हुए थे उस समय उनके घरके लोगों और सम्बन्धियोंने उन्हें गृहस्थीके जंजालमें फँसाये रखनेके लिए अनेक प्रयत्न किये थे, पर उन्होंने साहसपूर्वक उनका विरोध किया और अपना स्वीकृत मार्ग न छोड़ा । परिणाम यह हुआ कि वे स्वयं बहुत बड़े महात्मा हुए और हजारों लाखों मनुष्योंके पथ-प्रदर्शक बने । जिस समय तुकाराम भक्तिमार्गमें लगे थे उस समय उनके घरके लोगोंने उन्हें बहुत कष्ट दिया था और उन्हें गृहस्थाश्रममें लानेके लिए अनेक उपाय किये थे । यहाँ तक कि एक बार उन्हें मार तक खानी पड़ी थी । पर उन्होंने नैतिक साहसका परिचय दिया, सब विपत्तियाँ सहीं, पर अपना निश्चय और सिद्धान्त नहीं छोड़ा । शिवाजी और उनके पितापर इतनी आपत्तियाँ आईं, मोगलोंने उन्हें इतने कष्ट पहुँचाये, पर तो भी शिवाजीने साहस नहीं छोड़ा और अन्तमें महाराष्ट्र साम्राज्यकी स्थापना कर ही दी । समर्थ रामदास और तुकारामकी तरह गुरु नानकको भी विरक्त होनेके समय बहुतसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था, पर केवल धैर्य्य और साहसकी सहायतासे ही वे उन

कठिनाइयोंको पार कर सके थे और अन्तमें सिख-सम्प्रदाय स्थापित कर सके थे। एक वार शिवनभूके राजाने उन्हें बहुत कुछ धन-सम्पत्ति, अपने राज्यका बहुत बड़ा अंश तथा सुख-सामग्री देकर उन्हें भगवद्भक्तिसे विमुख करना चाहा था; पर उन्होंने उसे संसारके सुख आदिकी निस्सारताका ही उपदेश दिया और एक पैसा भी न लिया। उनका उपदेश इतना उत्तम और मार्मिक था कि अंतमें वह राजा उनका शिष्य हो गया। उसे शिष्य करनेके उपरान्त गुरु नानक शिवनभूमें प्रायः ढाई वर्षतक रहे और वहीं रहकर उन्होंने प्राण-संकलीकी रचना की। मगधके राजा बिम्बसारने भी, महावग्गके अनुसार महात्मा बुद्धको वैभवका बहुत लोभ दिलाया था। उसने कहा था—"आपका यह रूप और यह अवस्था भिक्षुक बनने योग्य नहीं है। आप कृपा कर यह राज्य ग्रहण करें और ऐश्वर्यका भोग करें।" पर वे तो पहले ही अपने बहुत बड़े राज्य और वैभव आदिका परित्याग करके अपने अपूर्व साहस और अनुपम त्यागका परिचय दे चुके थे; तब भला बिम्बसारका लोभ उन्हें कैसे डिगा सकता था? अतः उन्होंने उत्तर दिया—"सुखभोगकी कामना विपके समान है, इसमें अनन्त दोष हैं। इनसे मनुष्यकी कभी तृप्ति नहीं होती। स्वयं मेरे यहाँ विपुल ऐश्वर्य और सुन्दर स्त्रियाँ तथा आमोद् प्रमोदकी सब सामग्रियाँ उपस्थित थीं; परन्तु मैं उन सबका त्याग करके परम कल्याणकारी उत्तम निर्वाण-पद प्राप्त करनेके लिए घरसे निकला हूँ। फिर मैं आपके इस राज्य और ऐश्वर्यको लेकर क्या करूँगा?" मीराबाईकी भगवद्भक्तिमें बाधा डालने और उनकी साधुसेवा आदि कम करनेके लिए उनके देवर राणा विक्रमाजीतने उन्हें बहुत कष्ट पहुँचाये और यहाँ तक कि उन्हें विप दिलाया, पर तो भी वे जो व्रत धारण कर चुकी थीं उसे उन्होंने आजन्म नहीं छोड़ा। भगवद्भक्ति छुड़ानेके लिए प्रह्लादजी आगमें जलाये गये, पहाड़ परसे गिराये गये, उन्होंने बड़े बड़े कष्ट सहे; पर भगवद्भक्ति नहीं छोड़ी। धर्मवीर बालक हकीकतरायने मर जाना स्वीकार किया पर अन्यायका सहन और धर्मपरिवर्त्तन उससे

न हो सका । स्वामी दयानंद, राजा राममोहनराय आदि भी परम साहसी और वीर ही थे; इन लोगोंको संसारके उलटे प्रवाहका विरोध करना पड़ा था और यह विरोध उन्होंने बहुत दृढ़तापूर्वक किया था । स्वामी दयानन्दको तो जगह जगहपर कुवाच्य सुनने पड़ते थे, ईंटों-पत्थरों और कीचड़ आदिकी वर्षा सहनी पड़ती थी; अनेक प्रकारसे अपमानित होना पड़ता था; पर तो भी उन्हें जो कुछ सत्य और न्याय जान पड़ता था उसके प्रचारके लिए उन्होंने किसी प्रकारकी कठिनाईका ध्यान नहीं किया ।

इस प्रकारके उदाहरणोंकी बहुत बड़ी माला तैयार की जा सकती है, पर उसे छोड़कर हम केवल सुमेरका वर्णन कर देना ही यथेष्ट समझते हैं । जिस समय गुरु गोविन्दसिंह अपनी माता और सात तथा नौ वर्षके दोनों पुत्रोंको साथ लेकर आनन्दगढ़का किला छोड़कर बाहर निकले, उस समय अचानक ही मुसलमानोंने उनपर आक्रमण कर दिया । उसी आक्रमणमें उनकी माता और दोनों पुत्र उनसे अलग हो गये । साथके और सब लोग तो छूट गये, केवल एक पुराना रसोइया इन लोगोंके साथ रह गया । इन तीनोंको अपने मकानपर ले जाकर उस रसोइयेने पहले तो उनकी जवाहिरातकी पेटी चुरा ली और तब उन लोगोंको मुसलमान कोतवालके हाथ पकड़वा दिया । कोतवालने उन लोगोंको अपने हाकिम सूबा सरहिन्दके पास भेज दिया । सूबा सरहिन्दको गुरु गोविन्दसिंहने अनेक वार परास्त किया था, इस लिए उनके परिवारके लोगोंसे बदला लेनेका उसने यह बहुत अच्छा अवसर समझा । सूबाने दोनों बालकोंको अपने दरबारमें बुलाया और उनसे कहा कि तुम लोग स्वयं मुसलमान हो जाओ और नहीं तो बलपूर्वक मुसलमान बनाये जाओगे । पर नौ वर्षके बड़े बालक जोरावरने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया कि हम अपना धर्म कदापि नहीं छोड़ सकते । सूबाने दोनों बालकोंको बहुतेरा समझाया, तरह तरहके झूठे सच्चे लालच दिये, डराया, धमकाया और यहाँ तक कि प्राणदण्ड भी सुनाया; पर दोनों बालकोंने उसकी एक बात भी

नहीं मानी; दोनों अपनी बात और अपने सिद्धान्तपर डटे रहे। केवल यही नहीं बल्कि प्राणदण्डकी बात सुनकर नौ वर्षके बालक जोरावरने भरे दरबारमें सूबासे कहा कि अगर तुम्हें अपनी बहादुरीका घमंड हो तो मुझे तलवार दो और तब देखो कि मुझे मारना सहज है या कठिन। सूबाके साथ जोरावरका बहुत देरतक वाद-विवाद होता रहा; पर जोरावरने अपना धर्म्म छोड़कर मुसलमान होना स्वीकार नहीं किया। उसका सात वर्षका छोटा भाई भी बराबर तन कर खड़ा रहा और तनिक भी विचलित न हुआ। सात और नौ वर्षके बालक और इतना नैतिक साहस! शत्रुओंसे भरे हुए दरबारमें इतनी दृढ़ता और इतनी निर्भीकता! इसी लिए हमने इन्हें धीर और साहसियोंकी उदाहरण-मालाका सुमेर कहा है।

अस्तु, दोनों बालकोंकी दृढता देखकर सूबा और उसके सब दरबारी अवाक् रह गये। पर सूबा बदला लेना चाहता था। इस लिए उसने उन दोनोंको एक घण्टे तक सोचने और अपना भविष्यत्कर्त्तव्य निश्चित करनेका अवसर दिया। इसी बीचमें उसने एक बार छोटे बालक फतहसिंहको अलग ले जाकर भी पूछा कि तुम मुसलमान होगे या प्राण दोगे? उसने स्पष्ट कह दिया कि हम लोग कभी अपना धर्म्म नहीं छोड़ेंगे, चाहे प्राण रहें और चाहे जायँ। अंतमें विवश होकर सूबाने काजियोंसे पूछा कि इन बालकोंको कौनसा दण्ड दिया जाना चाहिए। सब लोगोंने बहुत कुछ सोच विचार कर यह निश्चय किया कि दोनोंको एक स्थानपर खड़ा करके उनके चारों ओर ईंटोंकी चुनाई आरम्भ कर देनी चाहिए और साथ ही बराबर बीच बीचमें उनसे पूछते भी जाना चाहिए कि अब भी तुम्हें मुसलमान होना स्वीकार है या नहीं। यदि वे बराबर इनकार ही करते जायँ तो इस प्रकार उन्हे दीवारमें चुन देना चाहिए। सात और नौ वर्षके दोनों बालक फिर लाकर सूबाके सामने खड़े किये गये और उन्हें दिये जानेवाले दण्डका स्वरूप समझाकर पूछा गया कि बतलाओ, और खूब सोच समझकर बतलाओ कि

भी तुम्हें मुसलमान होना स्वीकार है या नहीं। उन्होंने उत्तर दिया—हम लोग पहले ही खूब सोच समझ चुके हैं। हमें मुसलमान होना स्वीकार नहीं है। तुरन्त शहरपनाहकी दीवार एक जगहसे गिरवा दी गई और दोनों बालक वहाँ खड़े कर दिये गये। ईंटोंकी चुनाई होने लगी। जब घुटनों तक चुनाई हो चुकी तब उनसे कहा गया कि यदि अब भी तुम लोग मुसलमान होना स्वीकार करोगे तो बच सकते हो। पर क्या कभी धीर और साहसी अपना सिद्धान्त और न्यायपथ छोड़ सकते हैं? दोनों बालकोंने "अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।" वाली उक्ति चरितार्थ कर दिखलाई। दूसरी बार कमर तक और तीसरी बार गले तक चुनाई हो जाने पर भी उनसे वही प्रश्न किया गया, पर वे अपने निर्णयपर दृढ रहे। एक बार बड़े भाईने छोटे भाईकी ओर उसके मनकी अवस्था जाननेके लिए देखा। छोटे बालकने कहा—भइया, कोई चिन्ता नहीं है। पिताजीने कहा है,—

चित चरण कमलका आसरा,
चित चरण कमल सँग जोड़िए।
मन लोचे बुरयाइयाँ गुरु,
शब्दी यह मन होड़िए॥
बाँह जिन्हाँकी पकड़िए,
सिर दीजिए बाँह न छोड़िए।
गुरु साँचा सतगुर बोल्या,
घर पैए धरम न छोड़िए।
चिन्ता ताकी कीजिए, जो अनहोनी होय।
यह मारग संसारमें, नानक थिर नहिं कोय॥

धन्य! धन्य! ऐसी दृढ़ता और निर्भीकता! इतना धैर्य और साहस! पराकाष्ठा हो गई। ईंटें बराबर चुनी जा रही थीं, और बारबार वही

प्रश्न उनसे होता था। गले तक, ठोड़ी तक, नाक तक, माथे तक और अन्तमें दोनों बालकोंके सिरके ऊपर भी ईंटें चुन दी गई, पर बालक तनिक भी विचलित न हुए, जरा भी न घबराए, पहाड़की तरह अपने निश्चयपर अटल रहे। क्यों ? इसी लिए कि उनमें धैर्य और साहसका बल था। इससे अच्छा दूसरा उदाहरण और आदर्श कदाचित् मिल ही नहीं सकता। युद्धक्षेत्रमें जाकर तो कायरों और काठके पुतलोंमें भी साहस और वीरताका संचार हो जाता है; पर वास्तविक वीर वही होता है जो केवल अपने मनोदेवताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए एकान्त स्थलमें–जहाँ उसे कोई सहायक दिखलाई नहीं देता, कोई उत्साह-वर्द्धक शब्द सुनाई नहीं पड़ता–रहकर भारी विपत्तियाँ सहने और अपने प्राण तक दे देनेके लिए तैयार होता है। वह सब कुछ स्वीकार करता है, पर अपने मनोदेवताके सामने कभी अपराधी बनना स्वीकार नहीं करता। समय कभी ऐसे मनुष्योंकी कीर्त्ति और यशका नाश नहीं कर सकता; बल्कि प्रायः उनकी वृद्धिमें सहायक होता है।

यूरोपमें अनेक स्त्रियाँ ऐसी हो गई हैं जिन्हें विधर्मियोंने केवल धार्मिक मतभेदके कारण ही जीते जी जला दिया था, अंग अंग काट डाले थे; पर वे कभी विचलित नहीं हुईं, अपने धर्म्मपर सदा दृढ़ रहीं। राजपूतानेके बीसियों पचासों जोहार प्रसिद्ध हैं जिनमें सैकड़ों हजारों नहीं बल्कि लाखों तक स्त्रियाँ विधर्मियोंसे अपने धर्म्मकी रक्षा करनेके लिए दहकती हुई चितामें हँसती हँसती कूद पड़ीं। अनेक स्त्रियोंने तो चितामें बैठकर अपने हाथसे उसमें आग लगाई। ऐसे अपूर्व धैर्य और साहसकी समता कहाँ है ? मनुष्य कदाचित् मृत्युसे ही सबसे अधिक भयभीत होता है। मरनेको ही वह सबसे बड़ी विपत्ति समझता है। पर जो मनुष्य सत्य और धर्म्मका महत्त्व समझता है, उसके सामने जीवन और मरण दोनों समान हैं। मरना तो एक न एक दिन सभीको है। यदि सत्यकी रक्षा करनेमें प्राण निकलें तो और भी अच्छी बात है। ऐसा मरना बीमारीमें सड़-गलकर मरनेसे लाख दरजे अच्छा है। जिस समय सर थामस

मोरको अपने सिद्धान्तोंपर दृढ़ रहनेके कारण प्राण-दण्डकी आज्ञा दी गई, तब वे इतने प्रसन्न जान पड़े कि मानों उन्होंने बड़ी भारी विजय प्राप्त की हो। अन्तिम समयमें नारफोकके ड्यूकने उनसे कहा—"राजाओंसे विरोध करना अच्छा नहीं होता, राजाको क्रुद्ध करनेसे प्राण गँवाने पड़ते हैं।" इसपर मोरने बहुत ही अच्छा उत्तर दिया था। कहा था—"बस इतना ही न? तब तो मुझमें और आपमें केवल इतना ही अन्तर रह गया कि मैं आज मरूँगा और आप कल मरेंगे।"

यह बात नहीं है कि धैर्य्य या साहसकी आवश्यकता हमें उसी समय हो जब कि हमें किसी बड़े भारी शक्तिसम्पन्न अत्याचारीका सामना करना पड़े अथवा युद्ध-क्षेत्रमें जाकर शत्रुकी बड़ी भारी सेनापर विजय प्राप्त करनेकी आवश्यकता हो। नहीं, हमें अपने जीवनमें पग पगपर धैर्य्य और साहसकी आवश्यकता होती है। यदि हम छोटेसे छोटा काम भी आरम्भ करें तो उसकी समाप्ति तक हमें धैर्य्यपूर्वक परिश्रम करनेकी आवश्यकता होगी। सच बोलने, झूठ, खुशामद या लोभ आदिसे बचने और न्याय-पथपर दृढ़ रहनेके लिए बहुत कुछ साहसकी आवश्यकता होती है। बहुतसे लोग अपनी हैसियतसे बढ़कर खर्च करते हैं और इसी लिए सदा दुःखी रहते हैं। उनमें इतना साहस नहीं होता कि वे अपनी वास्तविक दशाको अनावृत रक्खें। उन्हें उसपर झूठे परदे डालने पड़ते हैं। ऐसे लोग यदि साहस करके अपनी हैसियतके अन्दर खर्च करें और इस बातकी परवा न करें कि लोग क्या कहेंगे तो संसारका बहुत कुछ दुःख कम हो सकता है। आजकल युवकोंमें एक बड़ा भारी रोग देखा जाता है जिसे संकोच, मुरौवत या मुलाहजा कहते हैं। उन्हें अपना बहुतसा धन और समय केवल इसीके कारण नष्ट करना पड़ता है और कभी कभी नीति-भ्रष्ट भी होना पड़ता है। हमारे कहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि लोग शील छोड़ दें; हमारा अभिप्राय केवल यही है कि वे व्यर्थकी अथवा हानिकारक बातोंसे बचनेके लिए उचित समयपर दूसरोंकी बातें टालने और 'नहीं' कहनेके योग्य हो जायँ। बहुतसे लोग

किसी कामको अनुचित समझते हुए भी कभी कभी साहसके अभावके कारण ही उसे करनेके लिए तैयार हो जाते हैं। कर्त्तव्यका ज्ञान होते हुए भी वे केवल इसी लिए उसके विरुद्ध आचरण करते हैं कि उनमें मुरौवत तोड़नेका साहस नहीं होता। ऐसा मनुष्य यदि दुर्भाग्यवश बुरी संगतमें पड़ जाय तो स्वयं भी बहुत कुछ अनर्थ करता है और दूसरोंके लिए भी बहुत बुरा उदाहरण खड़ा कर देता है।

सदाचारी बननेके लिए मनुष्यको मनोदेवताका आज्ञाकारी बननेकी आवश्यकता होती है और मनोदेवताकी आज्ञाका पालन उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि मनुष्यमें साहस और दृढ़ निश्चय न हो। मनोदेवताका निर्णय जानकर पहले अपनी इच्छाशक्तिपर जोर डालना चाहिए और तब साहस करके दृढ़तापूर्वक उसके अनुसार कार्य्य करने लग जाना चाहिए। ऐसे अवसरपर यदि मनुष्य जरा भी चूक जाय, मनोदेवताके निर्णयके विरुद्ध काम कर बैठे तो समझ लेना चाहिए कि उसकी दुर्दशा और अवनति आरम्भ हो गई।

प्रत्येक मनुष्यको अपनी शक्तियों आदिका निष्ठा, स्वतंत्रता और दृढ़तापूर्वक प्रयोग करना चाहिए। नहीं तो वह कभी कर्म-क्षेत्रमें रहने-योग्य नहीं हो सकता। हम बहुतसी बातें सोचते विचारते हैं और तरह तरहके बाँधनू बाँधते हैं। पर उन्हें कार्य्यरूपमें परिणत करनेमें केवल इसी लिए समर्थ नहीं होते कि हममें साहसका अभाव होता है, हम उसके लिए अपनी शक्तियोंका उपयोग करनेसे घबराते हैं। पर जो लोग साहस करके अपनी शक्तियोंका उपयोग आरम्भ कर देते हैं वे अवश्यमेव विजयी और सफल-मनोरथ होते हैं।

आजकल लोगोंमें 'प्रसिद्धि' प्राप्त करने और 'सर्वप्रिय' बननेका रोग भी बेतरह बढ़ता जाता है और यह रोग नैतिक साहसका बुरी तरह नाश कर रहा है। लोग झूठ-सच, न्याय-अन्याय और उचित अनुचितका ध्यान छोड़कर केवल प्रसिद्धि और सर्वप्रियताके पीछे लग जाते हैं। वे समझते हैं कि लोगोंकी हाँमें हाँ मिलाने और ठकुरसुहाती कहनेसे

मनुष्य प्रसिद्ध और सर्वप्रिय बन जाता है। इसके अतिरिक्त केवल लोगोंका मान रखने और उनका जी न तोड़नेके लिए हाँमें हाँ मिलाना फैशन और शिष्टसमाजका व्यवहार समझा जाता है। ऐसे लोगोंसे समाजकी उस समय और भी अधिक हानि होने लगती है जब कि वे सर्वप्रियता प्राप्त करनेके उपरान्त नेतृत्वके पीछे पड़ते हैं। लेखक एक ऐसे 'शिक्षित, सभ्य और प्रतिष्ठित' महाशयको जानता है जो सदा सब बातोंमें केवल 'हाँ हाँ, अवश्य' ही कहना जानते हैं। आप बुरेसे बुरा प्रस्ताव उनके पास लेकर जाइए, वह 'हाँ हाँ, अवश्य' के, अतिरिक्त और कुछ भी न कहेंगे और वह भी ऐसी निष्ठासे और सिर हिलाकर कि इस काममें हमें इनसे भी बड़ी भारी सहायता मिलेगी। विशेष आश्चर्य और दुःख तो उस समय होता है जब कि समाज अन्धा होकर ऐसे लोगोंका भक्त बन जाता है और बड़े बड़े विद्वान् और बुद्धिमान् उनका यथेष्ट आदर करने लगते हैं। वे भी हाँमें हाँ मिलानेको ही बड़ी बहादुरीका काम समझ लेते हैं जिससे वे अच्छे अच्छे काम यों ही पड़े रह जाते हैं जो दूसरी दशामें उत्तमतापूर्वक उनके द्वारा हो सकते थे। भला सोचिए तो ऐसे मनुष्योंसे समाजकी कितनी हानि होती है। जो मनुष्य वास्तवमें समाजका परम दूषित अंग और प्रायः विष होता है वही सब जगह आदृत भी होता है। ऐसे लोग भले आदमियोंको भी खुशामद-पसन्द बना देते हैं और उन्हें अनुचित मार्गपर चलाने लगते हैं। साधारण मनुष्योंमें इतना साहस नहीं होता कि वे उनके विरुद्ध कुछ कह सकें और बड़े लोग उनकी बाते सुन कर ही भूल जाते हैं। बस चलिए, हो गया।

पर जो मनुष्य सच्चे और सात्विक होते हैं वे इस प्रकार प्राप्त की हुई प्रसिद्धि, सर्वप्रियता और प्रतिष्ठा आदिको बहुत घृणित और तुच्छ समझते हैं। वे स्वयं सदा सत्य बोलते हैं और कभी इस बातकी परवा नहीं करते कि लोग हमारी बातोंसे प्रसन्न होंगे या अप्रसन्न। झूठी बातें बनाकर लोगोंको प्रसन्न करनेकी अपेक्षा सत्यतापूर्वक यथा-

शक्ति अपने कर्त्तव्योंका पालन करना कहीं अच्छा है । जो मनुष्य इस प्रकारका आचरण करते हैं वे ही अन्तमें वास्तविक प्रसिद्धि और सर्वप्रियता प्राप्त करते हैं । साधारण प्रसिद्धि और सर्वप्रियता आदिमें एक बड़ा भारी दोष यह है कि उनके कारण कर्मठ मनुष्य भी निकम्मा हो जाता है । उसे अभिमान होने लगता है और वह किसी कामका नहीं रह जाता । अभी हालमें महात्मा गाँधीका एक स्थानपर लोगोंने बहुत अधिक स्वागत किया था, इसपर आपने कहा था कि इतना अधिक आदर सम्मान करके नेताओंको बिगाड़ना नहीं चाहिए । और वास्तवमें ऐसे लोग बहुत देखे जाते हैं जो आरम्भमें तो लोगोंके पथ-प्रदर्शनका काम अच्छी तरह करते हैं, पर जहाँ एकाध बार हाथी या जोड़ीपर चढ़ाकर इधर उधर घुमाये गये तहाँ उनका दिमाग ही फिर जाता है । तब भला ऐसा सम्मान किस कामका जो काम करनेवाले आदमियोंको ही हाथसे खो दे ।

प्रत्येक मनुष्यमें स्वतंत्रतापूर्वक विचार और कार्य्य करनेकी शक्ति होनी चाहिए; इनके लिए उन्हें दूसरोंका मुँह ताकनेकी आवश्यकता न होनी चाहिए । एक विद्वान्का मत है कि जो मनुष्य स्वयं किसी विषयपर अपनी सम्मति स्थिर करनेका साहस नहीं कर सकता वह कायर है; जो जान बूझकर अपनी सम्मति स्थिर नहीं करता वह अकर्मण्य या सुस्त है और जिसमें सम्मति स्थिर करनेकी शक्ति ही नहीं है वह मूर्ख है । बहुतसे लोग प्रायः दूसरोंके विचारोंके अनुसार ही चलते हैं और बिना किसीकी सहायताके स्वयं कोई काम नहीं कर सकते । और इसी लिए बहुत अच्छी योग्यता रखने पर भी वे कभी कोई अच्छा या बड़ा काम नहीं कर सकते । सबसे पहले मनुष्यमें विचार करनेकी शक्ति होनी चाहिए और तब विचारको कार्य्यरूपमें परिणत करनेकी । स्वयं अपनी कोई सम्मति स्थिर न करके केवल बहुतसे लोगोंकी हाँमें हाँ मिला देना बहुत हानिकारक और कभी कभी बड़ा भारी पापसा हो जाता है । क्योंकि प्रायः बड़े बड़े अनर्थ घोर विरोध करनेसे ही रुक सकते हैं ।

जो मनुष्य ईमानदार होता है वह जाल-फरेब और धोखेबाजीसे बहुत चिढ़ता है। इसी प्रकार सच्चा मनुष्य झूठसे, न्यायशील मनुष्य अन्याय और अत्याचारसे और शुद्ध-हृदय मनुष्य पापोंसे बहुत घबराता है। पर उसके केवल चिढ़ने या घबरानेसे ही काम नहीं चल सकता। यदि उसमें विरोध करनेकी शक्ति या दृढ़ता न हो तो उसका चिढ़ना या घबराना किस कामका? महात्मा और समर्थ पुरुष उसका घोर विरोध करते हैं और उसे जड़से खोदकर फेंकनेमें अपनी ओरसे कभी कोई बात उठा नहीं रखते और वास्तवमें ऐसे ही लोग सर्वसाधारणके नेता भी होते हैं। बोर्डकी मीटिंगमें सरकारी चेयरमेनके या काउन्सिलमें लाट साहबके आतंकमें आकर 'जी हुजूर' कहनेसे मनुष्य कभी नेता नहीं हो सकता, पर जो मनुष्य साहसी, निर्भीक, न्यायपरायण और स्वतंत्रचेता होता है वह कभी दूसरोंकी हाँमें हाँ नहीं मिलाता। यदि वह असमर्थ भी हो तो कमसे कम अपना पूरा असन्तोष अवश्य प्रकट कर देता है। सन् १९०० या १९०१ में बम्बईकी लेजिस्लेटिव काउन्सिलमें एक बिल उपस्थित किया गया था जो काश्तकारोंको अपनी भूमि हस्तान्तरित करनेके अधिकारसे वंचित रखनेके सम्बन्धमें था। बम्बई प्रान्तके सभी लोग इस बिलका विरोध करते थे; पर सरकारी अफसरोंका कहना था कि यह सारा आन्दोलन केवल महाजनोंके कारण हो रहा है। प्रजाकी प्रार्थना थी कि यह बिल मुलतवी कर दिया जाय; पर जब उसकी प्रार्थनाका कोई फल न हुआ तब मि० गोखले और फीरोजशाह मेहता काउन्सिलके कमरेसे उठकर बाहर चले आये। उनकी देखा देखी और भी कई गैर-सरकारी मेम्बर अपने अपने स्थानसे उठ गये थे।

जिस मनुष्यमें साहसके साथ साथ बल और दृढ़-निश्चय भी हो उसके सामने कठिनाइयाँ कभी ठहर ही नहीं सकतीं। दृढ़ निश्चय और अध्यवसायकी सहायतासे छोटे लोग भी बहुत बड़े बड़े काम कर सकते हैं। ऐसे ही मनुष्य वीर कहलाते हैं और यह वीरता उन्हें क्रूर नहीं बल्कि सहृदय और दयालु बना देती है। संसारके सब क्षेत्रोंमें ऐसे मनुष्योंका

आदर उसके शत्रु और विरोधी भी करते हैं। केवल धैर्य्य, अध्यवसाय और उत्तम व्यवहारोंकी सहायतासे योग्य मनुष्य ऐसे बड़े बड़े काम निकाल लेता है जो अन्य उग्र उपायोंसे कभी हो ही नहीं सकते। जस्टिस रानडेके एक मित्र और सहपाठी श्रीयुत माधवराव कुंटे थे जो अच्छे विद्वान् और योग्य थे। सन् १८८५ में जब रानडे पूनेमें जज थे तब कुंटे महाशय भी वहीं थे। उन दिनों वहाँकी म्यूनिसिपेलटियोंमें प्रजाके चुने हुए मेम्बर भेजनेका आयोजन हो रहा था। रानडे चाहते थे कि लोगोंमें कमसे कम अपने नगरका प्रबन्ध करनेकी योग्यता उत्पन्न हो और अच्छे अच्छे लोग म्यूनिसिपेलटीके मेम्बर बनें, पर कुंटे महाशय इसके विरोधी थे। उनमें वक्तृत्व-शक्ति अच्छी थी। अतः महल्ले महल्लेमें अनेक सभायें करके उन्होंने रानडेको खूब गालियाँ दीं और लोगोंको अपने पक्षमें कर लिया। सरकारी अफसरोंने समझ लिया कि लोग सुधारको अच्छा नहीं समझते। रानडेने देखा कि अब काम बिगड़ना चाहता है। उस समय यदि वे किसी उग्र उपायका अवलंबन करते अथवा यह समझकर चुप रह जाते कि अब बहुतसे लोग मेरे विरोधी और कुंटेके पक्षपाती हो गये हैं, तो न जाने उसका कितना बुरा परिणाम होता। अतः एक दिन वे कुंटे महाशयकी एक सभामें पहुँच गये और सबके पीछे एक दरवाजेके पास बैठ गये। उस समय कुंटे व्याख्यान दे रहे थे। रानडेको देखकर पहले तो कुंटे कुछ घबराये और तब उनकी तरफ पीठ करके व्याख्यान देने लगे। पीठ फेरने पर भी उनसे बोला न गया और वे बैठ गये। तब रानडे उनके पास जा बैठे। जब सभा विसर्जित हो गई तब रानडेने प्रेमपूर्वक कुंटेसे कहा कि चलो, हवा खा आवें। कुंटेने बहुत ही रुखाईसे कहा—मैं तुम्हारी गाड़ीमें नहीं चढूँगा। यह कहकर कुंटे जाकर अपनी गाड़ीमें बैठ गये। रानडे भी उनके पीछे हो लिये और बोले—अच्छा, मैं ही तुम्हारी गाड़ीमें चढूँगा। दोनों बहुत दूरतक बातें करते हुए निकल गये और घर लौटनेसे पहले ही दोनोंका मत-भेद दूर हो गया और फिर किसीने नवीन सुधारका विरोध नहीं किया। उस

समय रानडेकी थोड़ीसी हिम्मत और थोड़ीसी सहनशीलता ही काम कर गई।

जिस मनुष्यमें सत्यनिष्ठा न हो, उसका साहस, धैर्य्य और अध्यवसाय कभी वास्तविक और कामका नहीं होता, और जिस मनुष्यमें ये सब बातें होंगी वह उदार और महानुभाव भी अवश्य होगा। सच्चे साहससे मनुष्यकी उदारता बढ़ती है और धैर्य्यसे शान्तिकी वृद्धि होती है। जो मनुष्य वास्तवमें वीर और साहसी होता है वह कभी किसीपर क्रोध नहीं करता। भीष्मपितामहने प्रतिज्ञा की थी कि मैं पाण्डवोंको नष्ट कर दूँगा। भीष्मकी प्रतिज्ञाका क्या पूछना है। उसका टूटना कब सम्भव था! अतः कृष्णको बहुत चिन्ता हुई। सोच समझकर उन्होंने युक्ति निकाली। युक्तिपूर्वक भीष्मसे ही द्रौपदीको कहलवा दिया– 'अखण्ड सौभाग्यवती हो।' जब पीछेसे भीष्मको कृष्णकी यह चाल मालूम हो गई तब वे कृष्णपर बिगड़े या नाराज नहीं हुए। बल्कि उन्होंने बहुत ही शान्तिपूर्वक कृष्णको ही यह युक्ति बतला दी कि युद्धमें तुम शिखण्डीको आगे कर देना; वह पिछले जन्मका 'स्त्री' है। प्राचीन वीर आर्य्योंकी यह उदार नीति थी कि वे बालक, स्त्री, ब्राह्मण, अनाथ आदिपर शस्त्र नहीं उठाते थे। युद्धमें शिखण्डीको आगे देखकर और उसे पूर्व जन्मकी स्त्री जानकर भीष्मने भी उसपर हथियार नहीं उठाये, बल्कि स्वयं प्राण दे दिये और इस प्रकार दुर्योधनके पक्षकी हार आरम्भ हुई।

साहस और धैर्य्यके अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्यमें आत्म-संयमनकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता है। यह गुण इतना आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है कि एक विद्वान्ने इसे ही सब गुणोंका मूल और पशुत्व तथा मनुष्यत्वका वास्तविक अन्तर बतलाया है और बात भी ठीक ही है। यदि मनुष्य आत्म-संयमन बिलकुल छोड़ दे और जब जीमें जो कुछ आवे वही कहता या करता जाय तो फिर उसके पशु-तुल्य होनेमें क्या सन्देह रह जाय? अपनी इन्द्रियोंकी अनुचित चंचलताको रोकना और अपने

आपको बुरे मार्गमें प्रवृत्त होनेसे बचाना ही आत्म-संयमन है। अपने मनको जीतना समस्त संसारपर विजय प्राप्त करनेसे कहीं बढ़कर उपयोगी और लाभदायक है। जो मनुष्य अपने मन और अपनी जबानको वशमें नहीं रख सकता, जो अपने कार्य्योंको नियंत्रित नहीं कर सकता, उसकी विद्या बुद्धि और शक्ति आदि सब व्यर्थ है।

हर्बर्ट स्पेन्सरका मत है कि मनुष्यको आदर्श बनानेके लिए आत्म-संयमन बहुत बड़ा साधन है। जो मनुष्य अपने चंचल मनकी इच्छाओंको अपने वशमें रखता है वही सब प्रश्नोंपर अच्छी तरह विचार कर सकता है और वही बुरे कार्य्योंसे बच और अच्छे कार्योंमें लग सकता है। पर जो मनुष्य अपने चंचल मनका दास होता है उसे किसी प्रश्नपर विचार करनेका अवसर ही नहीं मिलता, तब भला वह अच्छे काम कैसे कर सकेगा? मनमें तरंग उठते ही, इच्छा होते ही वह उसके पीछे हो लेता है और उसके अनुसार कार्य्य कर चलता है। विवेकसे वह कभी काम ही नहीं लेता; और विवेकका उपयोग करनेके कारण ही वह मनुष्य होकर भी पशु बन जाता है।

आत्म-संयमन या मनो-निग्रहके अभावके कारण ही बहुधा अनेक अनेक प्रकारकी विपत्तियाँ आती हैं। महाभारतमें लिखा है,—

> रथः शरीरं पुरुषस्य दृष्ट-
> मात्मा नियतेन्द्रियमाहुरश्वान्।
> तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वै-
> र्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः॥

अर्थात्–मनुष्यका शरीर रथ है, मन सारथी है और इंद्रियाँ घोड़े हैं; घोड़ेके अपने अधीन रहनेपर जिस प्रकार कुशल रथी यात्रा करता है, उसी प्रकार इंद्रियोंके अपने अधीन रहनेपर मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा सुख-पूर्वक समाप्त करता है। यदि मनको अपने वशमें रक्खा जाय तो वह हमारा बहुत अच्छा मित्र हो जाता है और हमें समय समय

पर उत्तम मार्ग दिखलाकर और कर्त्तव्य बतलाकर सब प्रकारसे हमारी सहायता करता है। और यदि उसे स्वतंत्र छोड़ दिया जाय तो वह हमें कुमार्गमें लगा देगा और शत्रु बनकर बहुधा हमारा नाश कर देगा। मन ही हमारे बंधनका कारण है और मन ही मोक्षका।

यह बात पहले ही बतलाई जा चुकी है कि सब प्रकारके सद्गुण सीखनेका पहला स्थान घर, दूसरा पाठशाला और तीसरा संसार है। अतः मनोनिग्रहका अभ्यास घरसे आरम्भ होना चाहिए और पाठशाला तथा संसारमें उसकी वृद्धि होनी चाहिए। यह बात बहुतसे अंशोंमें ठीक है कि मनोनिग्रह या आत्मसंयमनका हमारे शारीरिक बल और स्वास्थ्यके साथ बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है; अर्थात् दुर्बल मनुष्योंकी अपेक्षा सबल मनुष्य आत्म-निग्रह करनेमें अधिक समर्थ होते हैं, पर साथ ही इसमें भी सन्देह नहीं कि स्वास्थ्य बहुधा मनोनिग्रहके अभावके कारण ही बिगड़ता है। जिन लोगोंका स्वास्थ्य बिगड़ गया हो, वे यदि मनोनिग्रहपूर्वक आरोग्यशास्त्रके नियमोंका पालन करें तो उनका शरीर बहुत शीघ्र स्वस्थ हो सकता है और ज्यों ज्यों उनके शरीरमें बल आता जायगा त्यों त्यों उनका मनोनिग्रह भी बढ़ता जायगा। यह बात प्रायः सभी लोग जानते हैं कि प्रसन्न रहनेसे मनुष्यका शरीर और मन दोनों सबल होते हैं। अतः आत्म-निग्रहमें समर्थ होनेके लिए सदा प्रसन्न रहनेकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। जो लोग सदा कुढ़ते चिढ़ते अथवा दुःखी रहते हैं वे कभी अपने मनको पूर्ण रूपसे वशमें नहीं रख सकते। यदि दुःखोंकी ओर विशेष ध्यान न देकर प्राप्त सुखोंसे ही मनुष्य संतुष्ट हो रहे तो इस सम्बन्धमें उसे बहुत कुछ लाभ हो सकता है।

सदाचारका तो मनोनिग्रह मानों मूल ही है। आजतक जितने बड़े बड़े साधु-महात्मा और बड़े लोग हो गये हैं वे सब जितेन्द्रिय थे। जितेन्द्रियता और आत्म-निग्रहके बिना मनुष्यमें साधुता या महत्ता आ ही नहीं सकती। धर्माचरण करनेके लिए मनोनिग्रहकी बहुत बड़ी आवश्यकता हुआ करती है; क्यों कि मनोनिग्रहका अभाव ही मनुष्यको पापों

और दुष्कर्मोंमें रत करता है । अतः आत्म-निग्रह लोगोंके लिए परलोक-साधनका भी बहुत श्रेष्ठ और आवश्यक उपाय है. । जिस प्रकार आत्म-निग्रहसे परलोक-साधन होता है, उसी प्रकार उससे इस लोकमें भी बहुत सुख मिलता है । विना मनोनिग्रहके मनुष्य सुशील, सदाचारी, व्यवस्थित, उदार और शान्त नहीं हो सकता; और बिना इन सब बातोंके जीवन-यात्रा बहुत ही दुःखपूर्ण हो जाती है ।

राजकार्य्य करनेवाले बड़े बड़े पदाधिकारियों, प्रजाके पथ-प्रदर्शक नेताओं तथा इसी प्रकारके और बड़े बड़े काम करनेवालोंमें बहुत अधिक मनो-निग्रह होना चाहिए । जब तक आत्म-निग्रह न हो तब तक बड़े बड़े बुद्धिमानोंको भी इन कामोंमें यश नहीं मिल सकता । क्योंकि इन कामोंमें लोगोंपर अपना प्रभाव डालने और उन्हें अपने वशमें रखनेकी आवश्यकता होती है; और जो मनुष्य स्वयं अपने आपको ही वशमें न रख सकेगा वह दूसरोंपर क्या अधिकार चलावेगा ? जो मनुष्य दूसरों-पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहता हो, उसे उचित है कि वह पहले अपने मनपर प्रभुत्व जमावे ।

बड़े बड़े राजकुलोंका नाश प्रायः आत्मसंयमनके अभावके कारण ही होता है । आत्मसंयमके अभावमें मनुष्य जुआरी, शराबी, वेश्या-गामी और दुर्व्यसनी हो जाता है और ये ही सब बातें कुल, शील, मर्यादा और वैभव आदिके नाशका कारण होती हैं । महाराज शिवाजीमें आत्म-निग्रह पूर्ण रूपसे था, इसी लिए वे शत्रुओंका पराभव और साम्राज्य स्थापन करनेमें समर्थ हो सके थे। पर उनके पुत्र संभाजीमें यह गुण नहीं था, इसलिए उनका तथा राज्यका नाश हो गया । महाराज रणजीतसिंहके पुत्र खड्गसिंहमें भी इसी गुणका अभाव था । लखनऊकी नवाबीका नाश इसी गुणके अभावके कारण हुआ था । लखनऊके कुछ अंतिम नवाब, जब जो कुछ जीमें आता था, वही कर बैठते थे; कभी आगा-पीछा या भला-बुरा कुछ भी न सोचते थे । जब नैपोलियन एक एक करके बहुतसे देश जीतने लगा तब उसका मन चंचल करनेके लिए

उसके शत्रु उसके पास सुन्दर सुन्दर स्त्रियाँ भेजने लगे। पर नेपोलियन कभी विचलित नहीं हुआ। उसने अपने मनको सदा वशमें रक्खा और अंतपर्यन्त बराबर विजयी होता रहा। हमारे यहाँके पुराणों और इतिहासोंमें ऐसी अनेक कथायें हैं जिनमें लोगोंको भारी तपस्या आदि करते देखकर उन्हें इन्द्रासन-प्राप्तिसे वंचित रखनेके लिए इन्द्रने अप्सरायें भेजीं और उनकी सहायतासे वह सफल-मनोरथ भी हुआ। तात्पर्य यह कि *किसी विषयमें पूर्ण सफलता प्राप्त करनेके लिए मनोनिग्रहकी आवश्यकता* होती है और जहाँ मनोनिग्रह टूटा वहाँ कार्य्य-सिद्धिमें भारी बाधा पड़ी।

दुष्कर्म्मों और प्रलोभनोंसे बचने, अपमानित या पीड़ित होने पर क्षमा करने, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि मनोवृत्तियोंको रोकने तथा इसी प्रकारके और दूसरे कामोंके लिए मनो-निग्रहकी बहुत आवश्यकता होती है। यदि ऐसे विकट अवसरोंपर मनुष्य आत्मनिग्रह न दिखलावे तो बड़े बड़े अनर्थ हो सकते और प्रायः होते ही हैं। कभी कभी क्रोध करके किसीको दुर्वचन कहकर अथवा किसीको हानि पहुँचाकर हम अपनी तथा दूसरोंकी बहुत भारी हानि कर बैठते हैं; जिसके लिए हमें जन्मभर पछताना पड़ता है। यदि हम यह चाहते हों कि हमें कभी दुःखी होना या पछताना न पड़े तो हमें अपने मन और जीभको सदा वशमें रखना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य मधुरभाषी तो नहीं हो सकता, हाँ अल्पभाषी अवश्य हो सकता है। यदि हमारा जी ठट्ठा करने अथवा व्यंग्यपूर्ण बातें करनेको चाहे और हम अपनी उस इच्छाको न रोक सकें तो बहुत सम्भव है कि किसी समय मित्रोंके साथ हमारी बड़ी भारी शत्रुता खड़ी हो जाय। जब कुछ दुष्टोंने सभामें पाण्डवोंकी हँसी उड़ाई तब उसपर कर्णको हँसी आगई। उसी हँसीके कारण अर्जुन बहुत दुःखी हुए थे और उन्होंने उसके वधकी प्रतिज्ञा की थी। मय-दानववाली सभामें दुर्योधनकी दुर्दशा देखकर द्रौपदी भी केवल हँसी ही थीं; और उसी हँसीके परिणामस्वरूप इतना बड़ा महाभारत और इतना नाश हुआ था। यदि सीता सोनेका मृग पानेके लिए इतना हठ न करतीं तो रामचन्द्रको लंकापर चढ़ाई करके युद्ध करनेकी आवश्यकता न पड़ती।

बातचीत करते समय प्रत्येक मनुष्यको बहुत सावधान रहना चाहिए, और कभी कोई ऐसी बात मुँहसे न निकालनी चाहिए जिससे किसी दूसरेका जी दुखे। दूसरोंका जी दुखानेवाली बात कहनेकी अपेक्षा चुप रहना कहीं अच्छा है। इस सम्बन्धमें प्रसिद्ध ग्रीक विद्वान् पिथागोरसका उपदेश सदा स्मरण रखने योग्य है। वह कहता है—"चुप रहो; अथवा चुप रहनेसे बढ़कर कोई अच्छी बात कहो।" या तो मनुष्यको मौन रहना चाहिए और या खूब सोच समझकर बोलना चाहिए। जिस समय बोलनेकी आवश्यकता हो उस समय चुप रहनेसे भी प्रायः उतनी ही हानि होती है जितनी निरर्थक और अनावश्यक बातें करनेसे। कभी कभी सत्य और न्यायकी रक्षाके लिए ही बोलने बल्कि क्रोध या असन्तोष तक प्रकट करनेकी आवश्यकता होती है। यदि हम किसीको भारी अन्याय या अत्याचार करते हुए देखें तो हमें उसपर अवश्य क्रोध प्रकट करना चाहिए। सच्चे और न्यायशील मनुष्यको स्वभावतः ऐसे अवसरोंपर क्रोध आ जाता है। लेकिन ऐसे अवसरोंपर भी शान्ति, धैर्य्य और सहनशीलता आदिकी भी कुछ न कुछ आवश्यकता हुआ ही करती है। क्योंकि यदि मनुष्यमें शान्ति और सहन-शीलता न होगी तो वह आवश्यकतासे अधिक क्रुद्ध हो जायगा और सम्भव है कि लोगोंको उसका क्रोध ही दूसरेके अन्यायकी अपेक्षा अधिक असह्य हो जाय और यह प्रसंग विशेषतः ऐसी अवस्थामें अवश्य आया करता है जब कि क्रोधकी मात्रा अन्यायकी मात्रासे बहुत बढ़कर होती है।

अतः यह बात भी बहुत ही आवश्यक है कि मनुष्य शान्त स्वभावका हो; और स्वभावकी शान्तिके लिए मनुष्यमें बुद्धिमत्ता और संसारके अनुभवकी आवश्यकता होती है। बहुधा यही देखा जाता है कि मनुष्यको जितने ही अधिक विकट अवसरोंका सामना करना पड़ता है और जितना ही उसका सांसारिक अनुभव बढ़ता जाता है उतना ही वह आत्मनिग्रही और बुद्धिमान् होता जाता है। जो लोग

आशिक्षित और अज्ञानी होते हैं और जिन्हें संसारका कोई अनुभव नहीं होता वे क्षमाशील भी नहीं होते, परन्तु इसके विपरीत सुशिक्षित और अनुभवी मनुष्य उदार, दयालु और क्षमाशील होते हैं।

आत्मनिग्रहसे केवल व्यक्तिगत लाभ ही नहीं होता बल्कि अन्य सद्गुणोंकी तरह उससे देश या राष्ट्रका भी बहुत बड़ा लाभ होता है। जिस देशके लोगोंमें आत्मनिग्रह नहीं होता उस देशमें दुर्गुणों और दुर्व्यसनोंकी बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है और वह देश शीघ्र ही बहुत अवनत हो जाता है। उदाहरणार्थ नशोंको ही लीजिए। सबसे पहले किसी नशेकी आदत लगाना ही इस बातका दृढ़ प्रमाण है कि मनुष्यमें आत्म-निग्रह नहीं है। दूसरी बात यह है कि नशेबाज आदमी आगे चलकर दूसरे अवसरोंपर भी आत्मनिग्रह प्रकट नहीं कर सकता। नशेसे जितनी शारीरिक, आर्थिक और राजनीतिक हानियाँ होती हैं उनको यहाँ गिनानेकी आवश्यकता नहीं। अफीमके कारण चीनवालोंकी जो दुर्दशा हुई और अबतक थोड़ी बहुत हो रही है वह किसीसे छिपी नहीं है। पाश्चात्य सभ्यतासे इस देशमें जहाँ अनेक सद्गुणोंका प्रचार हुआ है, वहाँ लोगोंमें कई दुर्गुण भी फैले हैं और मद्य-पान उनमेंसे एक है। हमारे यहाँ मद्य-पानकी गणना पाँच महापातकोंमें की गई है। पर आजकल बहुतसे लोग ऐसे भी मिलेंगे जो उसे दोष न मानकर उलटे गुण और नहीं तो कमसे कम फैशनके लिए आवश्यक अवश्य मानेंगे। ऐसे मनुष्योंका ईश्वर ही रक्षक है। जो मनुष्य जान बुझकर विषयभोगमें लिप्त होगा, दुर्व्यसनोंको अपने गले लगावेगा वह कहाँतक सदाचारी हो सकता है? व्यक्ति अथवा समाज जब एक बार विषय-वासनामें फँस जाता है तब उसका सुख, बल, स्वतंत्रता, शूरता आदि सब गुण नष्ट हो जाते हैं। जब बहुतसे लोग किसी दुर्व्यसनमें फँस जाते हैं, तब सबसे बड़ी हानि यह होती है कि लोग उसकी बुराइयाँ भूल जाते हैं। दुर्व्यसन उनके लिए साधारण और नित्यका काम हो जाता है और अपने नियमानुसार सदा बढ़ता ही रहता है, कभी कम नहीं होता। पर

यदि मनुष्यके ज्ञानकी यथेष्ट वृद्धि हो और वह उस दुर्व्यसनको छोड़ना ही चाहे तो उसे एक मात्र मनो-निग्रहकी आवश्यकता होगी, और इसीमें उसका तथा उसके देशका हित भी है। कभी कभी अपने देशके आर्थिक लाभके लिए ही मनो-निग्रहकी बहुत बड़ी आवश्यकता हुआ करती है। किसी जमानेमें अमेरिकावालोंको चीनकी चायका बहुत शौक था। इससे देशकी बहुत कुछ आर्थिक हानि होती थी। इस लिए सब लोगोंने मिलकर चीनकी चाय छोड़ देना ही निश्चय किया। इससे उनका बहुत कुछ आर्थिक लाभ हुआ, और उनके मनोनिग्रहका जो अभ्यास बढ़ा वह अलग। भारतवासी भी यदि चाहें तो इसी प्रकार मनो-निग्रहपूर्वक बहुतसे निरर्थक और हानिकारक पदार्थोंके व्ययसे बच सकते हैं और अपनी तथा अपने देशकी बहुत बचत कर सकते हैं।

प्रत्येक मनुष्यके लिए मनोनिग्रह दिखलानेका जुदा जुदा अवसर हुआ करता है। क्रोधी मनुष्यको अपना क्रोध दबानेके लिए, लोभीको लोभसे बचनेके लिए, दुर्व्यसनीको दुर्व्यसन छोड़नेके लिए अपने मनको वशमें रखनेकी आवश्यकता होती है। पर एक बात ऐसी है जिसमें आजकल प्रायः सभी लोगोंके मनोनिग्रह दिखलानेकी आवश्यकता है और वह बात अपनी योग्यताके अनुसार जीवन व्यतीत करना है। आजकल अपनी योग्यतासे बढ़कर व्यय करनेका रोग इतना भीषण रूप धारण कर रहा है कि उससे संसारके प्रायः तीन चौथाई लोग बहुत कष्ट पा रहे हैं। पहलेके एक प्रकरणमें इस विषयमें कुछ कहा जा चुका है। इस स्थलपर हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि दूसरोंकी देखादेखी अपना व्यय आदि बढ़ाना और अपने आपको विपद्ग्रस्त करना बुद्धिमत्ता नहीं है। यदि हममें थोड़ासा भी साहस और मनो-निग्रह हो तो उसका सबसे पहला उपयोग हमें इसी दोषसे बचनेके लिए करना चाहिए। कमसे कम रहन-सहन आदिके लिए तो हमें अपनेसे अधिक सम्पन्न लोगोंकी ओर कभी न देखना चाहिए। *बल्कि हमें केवल अपनी आर्थिक और पारिवारिक* अवस्थाका ध्यान रखना चाहिए। बड़े आदमियोंकी देखादेखी ठाटबाटसे

रहनेके लिए और अपनी अमीरी दिखलानेके लिए ही बहुतसे लोग ऋण लेते हैं और अंतमें वह झूठी अमीरी उन्हें भिखारी बनाकर छोड़ती है। कुछ दिनों तक लोगोंको झूठी अमीरी दिखाकर पीछे भिखारी बनने और अपनी सन्तानको दरिद्र बनानेकी अपेक्षा सदा साधारण स्थितिमें रहना और अपने परिवारको सुखी रखना कहीं अच्छा है। लेकिन आजकल प्रथा ही उलटी है। लोगोंको सस्ते और मोटे कपड़े पहननेमें तो लज्जा मालूम होती है; बजाजका तगादा सुनने या कमसे कम कर्जदार बने रहनेमें लज्जा नहीं मालूम होती। कुछ निर्लज्ज तो यहाँ तक कहा करते हैं कि कर्जदार होना तो आजकल फैशन है; और फिर हमारी सरकार तक कर्जदार है; यदि हम ही कर्जदार हुए तो कौन बड़ी बात है!

जो मनुष्य यह चाहता हो कि लोग उसे वास्तवसे अधिक सम्पन्न अथवा योग्य समझें, समझ लेना चाहिए कि वह झूठा और दगाबाज है। अपनी हैसियत बढ़ाकर लोगोंको दिखलाना दगाबाजीके सिवा और कुछ नहीं है। लेकिन जो मनुष्य सच्चा होगा यदि लोग उसे वास्तवसे अधिक सम्पन्न समझने लगें तो उसे उलटे बुरा मालूम होगा। ऐसा मनुष्य गरीब कहलाना पसन्द करेगा, पर कभी कर्ज नहीं लेगा। और वास्तवमें उन लोगोंकी अपेक्षा वह कहीं अधिक प्रतिष्ठित है जो दूसरोंपर अपनी हैसियत बढ़ाकर प्रकट करते हैं। क्योंकि वह झूठा या दगाबाज नहीं होता। एक विद्वानने तो झूठी शान दिखलानेवाले मनुष्यको झूठे या दगाबाज मनुष्यसे भी बढ़कर बुरा बतलाया है और इसके लिए उसने एक बहुत अच्छी युक्ति भी दी है। उसने कहा है कि झूठ बोलने-वाले मनुष्यकी झुठाई तो केवल बातोंमें होती है, पर ऐसे मनुष्यकी—जो लोगोंको अपनी अवस्थाके सम्बन्धमें धोखा देना चाहता हो—झुठाई उसके कृत्योंमें होती है। और फिर केवल खर्चकी अधिकता ही तो सम्पन्नताका चिह्न नहीं है। वास्तविक सम्पन्न तो वही है जिसका व्यय उसकी आयकी अपेक्षा कम हो। सम्पन्न होनेकी कामना करना बुरा नहीं है; पर उसकी पूर्णताके लिए प्रामाणिकतापूर्वक उद्योग करना चाहिए।

आत्मावलम्बन अथवा आत्मनिर्भरताके साथ साथ मनुष्यमें एक और गुणकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। वह गुण स्वावलम्बन है। यह गुण इतना आवश्यक उपयोगी, और महत्त्वपूर्ण है कि अँगरेजीके सुप्रसिद्ध लेखक मि॰ स्माइल्सने इसके लिए 'सेल्फ-हेल्प' नामका एक स्वतंत्र ग्रन्थ ही लिख डाला है*। ऐसे गुणके सम्बन्धमें सब बातें और और बातोंके साथ किसी पुस्तकके एक ही अध्यायमें ले आना यद्यपि बहुत ही कठिन है, तथापि जिस पुस्तकमें मानव-जीवनको सार्थक करनेके उपाय बतलाये गये हों उसमें इस गुणका भी कुछ न कुछ उल्लेख होना परम आवश्यक है। अतः उसके सम्बन्धमें कुछ मुख्य मुख्य बातें यहाँपर दे दी जाती हैं।

स्वावलम्बनका अर्थ है अपने बलपर काम करना। बहुतसे लोगोंकी यह आदत हुआ करती है कि वे सब कामोंमें और सब अवसरोंपर दूसरोंकी सहायता या संगकी अपेक्षा करते हैं—बिना दूसरोंकी सहायताके वे एक कदम भी नहीं चल सकते और इसी लिए उनका सारा जीवन नष्ट हो जाता है। बहुतसे लोग ऐसे भी होते हैं जो स्वयं कभी किसी प्रकारका परिश्रम या उद्योग नहीं करते और सदा रामआसरे पड़े रहते हैं। वे समझते हैं कि समय पड़नेपर कोई दैवी शक्ति आकाशसे उतरकर हमारे सब काम कर जायगी। ये दोनों प्रकारके मनुष्य कभी संसारमें कोई अच्छा या बड़ा काम नहीं कर सकते।

अँगरेजीके प्रसिद्ध कवि शेलीने एक अवसरपर कहा था कि ईश्वरने मनुष्यको ऐसी शक्ति दी है कि यदि वह चाहे तो आकाशके तारे तोड़ सकता है; पर इसके लिए उसे अपना हाथ उठाना चाहिए। यही 'हाथ उठाना' संसारके सब कामोंका मूलमंत्र है। पिछले पृष्ठोंमें एक स्थानपर कहा जा चुका है कि मनुष्य अपने आपको जैसा चाहे वैसा बना सकता

* इस ग्रन्थके आधारपर 'स्वावलम्बन' नामकी एक बहुत अच्छी पुस्तक हिन्दीमें भी लिखी जा चुकी है जो इसी हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजमें प्रकाशित हुई है और जिसके तीन संस्करण हो चुके हैं।

है। प्रत्येक मनुष्यको अपनी उन्नतिके लिए स्वयं प्रयत्नशील होना चाहिए; और सदा अपनी ही शक्तिके भरोसेपर कार्य्य करना चाहिए।

संसारमें प्रवेश करनेके समय प्रत्येक युवकको स्वावलम्बी होना चाहिए। स्वावलम्बनसे हमारा यह तात्पर्य्य नहीं है कि वह किसी विषयमें अपने मित्रोंसे सलाह या सम्मति ही न ले और सदा मनमानी करता रहे। बल्कि हमारा तात्पर्य्य यह है कि वह सदा अपने पैरोंपर दृढ़तापूर्वक खड़ा हो और कठिनाइयोंका निवारण तथा कार्य्योंका साधन स्वयं अपने हाथों करे। यदि उसे चार आदमियोंके साथ मिलकर भी काम करना पड़े, तो भी अपना अंश—अपना कर्त्तव्य—वह बिना दूसरोंकी सहायताके सदा स्वयं किया करे और एक प्रसिद्ध अँगरेजी कहावतके अनुसार ईश्वर भी सदा ऐसे ही लोगोंकी सहायता किया करता है।

जो मनुष्य सात्विक भावसे कोई बड़ा काम करना चाहता हो अथवा ईमानदारीसे बहुतसा धन एकत्र करना चाहता हो उसे दूसरोंपर नहीं बल्कि अपने आपपर निर्भर रहना चाहिए। मनुष्यकी उन्नति और पूर्णता सदा स्वावलंबनसे ही होती है। हमारे कार्य्य कभी हमारी योग्यताके वास्तविक परिचायक नहीं होते बल्कि हमारी योग्यताका वास्तविक परिचय हमारे कार्य करनेके ढंगसे मिलता है। ईश्वर यह नहीं देखता कि अमुक मनुष्यने कौनसा बहुत बड़ा काम किया है; बल्कि वह यह देखता है कि उसने किस प्रकार अपने कर्त्तव्योंका पालन किया है। और मनुष्यकी आत्माको वास्तविक सुख और सन्तोष भी उसी समय होता है जब कि वह यथाशक्ति किसी कार्य्यके लिए पूरा परिश्रम करता है और समझता है कि मैंने इसके लिए अपनी ओरसे कोई कसर नहीं छोड़ी। पर जो मनुष्य बातबातमें दूसरोंका मुँह ताकता है वह न तो कभी कोई काम ही कर सकता है और न उसकी आत्माको सुख या सन्तोष ही हो सकता है।

बड़े भारी तूफानके पीछे चारों ओर निस्तब्धता छा जाती है; घोर भीषण युद्धके उपरान्त मंगलमय शान्ति विराजने लगती है;

कठिन परिश्रम और प्रयत्नके उपरान्त विजयकी प्रसन्नता प्राप्त होती है। दृढ़ निश्चयसे इस प्रकार कार्य्य-सिद्धि अवश्य होती हैं; प्रत्येक कार्य्य करनेके लिए कोई न कोई उपाय और प्रत्येक स्थान तक पहुँचनेके लिए कोई न कोई मार्ग अवश्य निकल आता है। जिन लोगोंने स्वयं कठिन परिश्रम करके और बिना दूसरोंकी सहायताके विद्या या वैभव उपार्जन किया हो अथवा कोई बड़ा वैज्ञानिक आविष्कार किया हो, उनके जीवनचरित्र पढ़कर लोगोंमें एक विशेष प्रकारकी स्फूर्त्ति आ जाती है,-मानों उनमें नई संजीवनी शक्तिका संचार हो आता है। लोग समझने लगते हैं कि जिस प्रकार उन लोगोंने बड़े बड़े काम किये हैं, उसी प्रकार हम भी बड़े बड़े काम करनेमें समर्थ हो सकते हैं। आत्मावलंबनका उदाहरण इस प्रकार औरोंको भी आत्मावलंबनकी शिक्षा देता और उसके लिए उत्तेजित करता है।

मि० स्माइल्सने अपने 'स्वावलंबन' नामक ग्रंथके आरम्भमें ही लिखा है कि स्वावलम्बनका भाव ही प्रत्येक मनुष्यकी उन्नतिका मुख्य कारण है। जो मनुष्य दूसरोंकी सहायताकी अपेक्षा किया करता है वह बहुधा हानि ही उठाता है; पर जो मनुष्य सदा अपने भरोसेपर काम करता है वह केवल लाभ ही नहीं उठाता बल्कि अपनी शक्तिकी वृद्धि करता है और दूसरोंमें भी शक्तिका संचार करता है। मि० स्माइल्सने तो स्वावलम्बनको जातीय उन्नतिका बहुत ही आवश्यक और उपयोगी अंग माना है। उनका मत है कि यदि किसी देशके निवासियोंके सब कार्य्य वहाँकी सरकार कर दिया करे अथवा सब कामोंमें कमसे कम उन्हें सहायता ही देती रहा करे, तो वहाँके मनुष्योंमें स्वयं काम करनेका उत्साह घटता जायगा और धीरे धीरे वे बिलकुल ही शिथिल और अकर्मण्य हो जायँगे। तात्पर्य्य यह कि स्वावलम्बन मनुष्यको उन्नत और श्रेष्ठ बनाता है और परावलम्बन उसे अवनत और निकृष्ट कर देता है। स्वावलम्बन हमें ऊपर चढ़ाता है और परावलम्बन हमें नीचे ढकेलता है।

प्रसिद्ध अँगरेज लेखक मि० कारलाइलने एक स्थानपर प्रोफेसर ट्यूफेल्स ड्रौके आधारपर बहुत ही थोड़ेमें स्वालम्बनका सारा तत्त्व समझा दिया है। उसने कहा है—“ आज तक मनुष्य कभी ऐसी परिस्थितिमें नहीं पड़ा है जिसमें उसके लिए कर्त्तव्य और आदर्श न रहा हो। यदि आदर्श है तो वह तुम्हारी दीन हीन और तिरस्कृतसे तिरस्कृत दशामें भी है, और यदि नहीं है तो कहीं नहीं है। आदर्श भी तुम्हींमें है और बाधायें भी तुम्हींमें हैं; प्राप्त साधनोंसे काम लो, उस आदर्शको ढूँढ निकालो और अपना काम करते हुए स्वच्छन्दता और विश्वासपूर्वक रहो; और सदा इस सिद्धान्तका ध्यान रक्खो कि तुम्हारा आदर्श— तुम्हारा लक्ष्य तुम्हींमें है और उसीको ढूँढ़ निकालनेकी आवश्यकता है।”

उक्त कथनसे यह बात सिद्ध होती है कि स्वावलम्बनके लिए सबसे पहले अपने कर्त्तव्यका ज्ञान होना चाहिए और तब उस कर्त्तव्यके पालनके लिए हमारी सारी शक्तियोंका उद्योग होना चाहिए। हमारी परिस्थिति चाहे जैसी हो; पर हमारे लिए—सदा और सब दशाओंमें—कुछ न कुछ कर्त्तव्य हुआ करता है। अर्थात् कुछ ऐसे कार्य्य होते हैं जिन्हें हमारे सिवा और कोई कर ही नहीं सकता; और कुछ ऐसे अवसर होते हैं जिनका उपयोग हमारे सिवा और कोई कर ही नहीं सकता। जो लोग पड़े पड़े यह सोचा करते हैं कि ईश्वर किसी प्रकार यह अन्धकार दूर करके प्रकाश कर दे, हमारे दुःख दूर करके हमें सुखी बना दे, वे सदा दुःखी ही बने रहते हैं। पर जो लोग अपने कर्त्तव्योंका पालन करते हैं वे अपने आगेका अन्धकार स्वयं दूर कर लेते हैं। उन्हें सुखी होनेके लिए दूसरोंकी अपेक्षा नहीं करनी पड़ती। जो मनुष्य सदा अपने कर्त्तव्यपर दृष्टि रखता है और अपने लिए इसका पालन आवश्यक समझता है उसे कभी दूसरोंकी सहायताकी आवश्यकता ही नहीं होती। कर्त्तव्यनिष्ठ मनुष्यकी नैतिक, मानसिक अथवा साम्पत्तिक उन्नति अवश्यम्भावी होती है।

इँग्लैण्डमें सर मैथ्यू हेल नामक एक प्रसिद्ध महापुरुष हो गये हैं। उनके समयमें सन् १६६६ में एक बार इँग्लैण्डवालोंमें यह प्रवाद फैला कि बहुत शीघ्र सृष्टिका अंत होनेवाला है। उन दिनों हेल महाशय जज थे। एक दिन वे न्यायालयमें बैठे हुए अपना काम कर रहे थे; इतनेमें भीषण आँधी आई, बादल गरजने लगे और बिजली चमकने लगी। लोगोंने समझ लिया कि अब प्रलयमें विलम्ब नहीं है। सब लोग अपना अपना कामकाज छोड़कर ईश्वरकी प्रार्थना करने लग गये। सब लोग बहुत ही भयभीत हो गये थे; इस कारण बड़े बड़े दृढ-चित्त मनुष्य भी विचलित हो गये। पर हेल साहबपर इन सब बातोंका कुछ भी प्रभाव न पड़ा और वे नियमानुसार बराबर अपना काम करते रहे। उनका ध्यान केवल अपने कामपर था। कामके सामने उन्होंने प्रलयकी भी परवा नहीं की। वे समझते थे कि मैं अपने कर्त्तव्यका पालन कर रहा हूँ और यही समझना और यही करना यथेष्ट है। यदि इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य सोच ले कि हमारा मुख्य कार्य्य कर्त्तव्य-पालन ही है तो वह बहुतसी चिन्ताओं, बहुतसे दुःखों और बहुतसी तरद्दुदोंसे बहुत सहजमें ही बच सकता है। हमें कठिनाइयाँ उसी समय होती हैं जब हम अन्धोंकी तरह इधर उधर टटोलने लगते हैं और दूसरोंकी सहायता ढूढ़ते फिरते हैं। जिस नैतिक और मानसिक शिक्षाको लोग स्वावलम्बन कहते हैं उसका प्रधान और सबसे पहला अंग अपने कर्त्तव्यका ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करना और उसके पालनमें दत्तचित्त होना है।

बड़े बड़े राज्य स्थापित करनेवाले, बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ जीतनेवाले, लाखों करोड़ों रुपयोंकी सम्पत्ति उपार्जित करनेवाले और बड़े बड़े व्यापारी, विद्वान्, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक और आविष्कारक आदि सदा स्वावलम्बी मनुष्य ही होते आये हैं। अखण्ड अध्यवसाय, समयके सदुपयोग, सब कुछ सहन करनेवाले धैर्य्य, निरन्तर और अविश्रान्त परिश्रम, कभी शिथिल न होनेवाली शक्ति, पूर्ण दृढ निश्चय और अपने कार्य्यमें

एकान्त मनोयोगकी सहायतासे वे लोग सब प्रकारकी कठिनाइयाँ दूर कर लेते हैं और दुर्भाग्य अथवा दुर्घटनाओं आदिकी प्रायः एक भी नहीं चलने देते। ऐसे ही मनुष्य घोर दरिद्रतासे निकलकर करोड़-पति बनते हैं और संसारमें अच्छी ख्याति प्राप्त करते हैं। बड़े बड़े लोगोंने इसी प्रकार महत्त्व प्राप्त किया है; और अब भी जो लोग महत्त्व प्राप्त करना चाहते हों, उन्हें उचित है कि वे किसी उच्च उद्देशपर ध्यान रखकर कमर कस-कर उसकी पूर्त्तिमें लग जायँ। उनका उद्देश्य भी सिद्ध हो जायगा और वे महत्त्व भी प्राप्त कर लेंगे।

मानव-जीवनकी सार्थकताके लिए यद्यपि परिश्रम, साहस, दृढ़-निश्चय, सदाचार, सात्विकता, शारीरिक तथा मानसिक बल और इसी प्रकारके अन्य अनेक उत्तम गुणोंकी बड़ी आवश्यकता है तथापि स्वावलम्बनके सामने ये सभी गुण गौण और साधारण महत्त्वके हैं। वही मनुष्य वास्तवमें मनुष्य कहलाने योग्य है जो अपने कामोंके लिए सदा अपना ही भरोसा रखता है और सहायताके लिए कभी दूसरोंका मुँह नहीं ताकता। हाँ, यदि अपनी मर्य्यादाकी किसी प्रकारकी हानि किये बिना मनुष्य अपने मित्रोंसे सहायता अथवा सहानुभूति प्राप्त कर सकता हो तो उससे उसे कभी जानबूझकर वंचित भी न होना चाहिए। क्योंकि कभी कभी ऐसा भी होता है कि किसी कठिन कामको लोग दूसरोंकी सहायताके बिना आरम्भ ही नहीं कर सकते। पर जब एक बार वे दूसरोंकी सहायता पाकर काममें लग जाते हैं तब फिर आप ही उसमें बराबर उन्नति करते चले जाते हैं। पर तो भी इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि वास्तविक और महत्त्वपूर्ण विजय वही है जो केवल अपने ही बलपर और बिना दूसरोंकी सहायताके प्राप्त हो। कुछ लोग अवश्य ऐसे होते हैं जिनके लिए दूसरोंकी सहायताकी अपेक्षा करना अनिवार्य्य होता है; और जो केवल उसी समय अपनी शक्ति और सद्गुणोंका परिचय दे सकते हैं जब कि उन्हें दूसरोंसे थोड़ी-बहुत सहायता मिले। ऐसे लोगोंमें वास्तवमें या तो

कोई शारीरिक दोष होता है और या यथेष्ट नैतिक शिक्षाका अभाव होता है। ऐसे लोग किसी अंशतक सहायताके अवश्य पात्र होते हैं।

लेकिन जो लोग बिना किसी दूसरेकी सहायताके स्वयं दृढतापूर्वक अपने पैरोंपर खड़े हो सकते हैं और बिना विचलित हुए अपने कर्त्तव्यका पालन और उद्देश्यकी सिद्धि कर सकते हैं वे ही आदर्श और वे ही धन्य हैं। जो लोग स्वावलम्बी होते हैं वे सदा स्वतंत्रतापूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं और दुर्भाग्य या कठिनाइयाँ उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकतीं। लेकिन स्वावलम्बी होनेके लिए दो और बातोंकी आवश्यकता होती है। एक तो आत्म-मर्यादाका ध्यान और दूसरे आत्मशक्तिका ज्ञान। जिस मनुष्यको अपनी प्रतिष्ठाका ध्यान रहेगा और जिसे अपनी शक्तिका यथेष्ट ज्ञान होगा वह कभी दूसरोंकी सहायताके आसरे न रहेगा। आत्म-मर्य्यादाका ध्यान हमें स्वयं अपना कार्य्य करनेके लिए बाध्य करेगा और आत्म-शक्तिका ज्ञान हमें कठिनाइयोंकी परवा न करने देगा। और जब मनुष्यमें ये दोनों बातें आ जायँगी तब वह आपसे आप सब काम परिश्रम-पूर्वक और बिना किसीकी सहायताके करने लग जायगा।

सातवाँ प्रकरण ।

सुजनता और सुस्वभाव ।

[सुजनताका महत्त्व—सुजनता सदाचारका प्रधान चिन्ह है—वास्तविक और दिखौआ स्वभाव—स्वभावमें परिवर्त्तन—स्वभावकी चंचलता—वास्तविक स्वभावका पता कब लगता है—स्वभाव कैसा होना चाहिए—निष्कपटता और सत्यता—कपटी और झूठे मनुष्य—कुछ प्रकार—सम्पादकों और लेखकोंके झूठ—'सत्य' बड़ा भारी बल है—प्रेमिकता और मिलनसारी—महत्त्व और उपयोग—दया और परोपकार—अपने सुखका ध्यान छोड़ो—अपने आपको सुखी करनेका प्रयत्न व्यर्थ होता है—करुणाका महत्त्व और आवश्यकता—ईर्ष्याके दोष—एक ईर्ष्यालुकी कहानी—स्पर्द्धाके लाभ और आवश्यकता—श्रद्धाका महत्त्व और उपयोग—सन्तोष—आशा—कभी निराश और दुःखी मत होओ ।]

राजर्षि भर्तृहरिने कहा है,—" शीलं परं भूषणम् । " अर्थात् मनुष्यका शील अथवा सुस्वभाव उसके अन्यान्य गुणोंमें सबसे अच्छा भूषण है । अर्थात् अन्य गुणोंकी अपेक्षा सुजनताका महत्त्व बहुत अधिक है । जिस प्रकार कुरूप मनुष्य भी गहने आदि पहननेपर कुछ सुन्दर दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार अशिक्षित, निर्धन अथवा बुरा मनुष्य भी सुजनता और सुस्वभावके कारण अच्छा जान पड़ता है । यदि सुन्दर मनुष्य भी मैले कुचैले कपड़े पहनकर आवे तो लोग उसे जल्दी पास बैठाना नहीं चाहते, इसी प्रकार यदि किसी बड़े विद्वान् या धनवान्का स्वभाव भी दुष्ट हो तो लोग उसकी संगतिसे बचना चाहते हैं । लेकिन जो मनुष्य सभ्य और सज्जन होता है उसकी संगति बहुत ही प्रिय और सुखदायक होती है और सभी लोग उससे मिलने जुलने और उसके साथ रहनेके लिए उत्सुक होते हैं । सभ्यतासे मनुष्यकी शोभा तो होती है, साथ ही कार्य्योंकी शोभा भी बहुत बढ़ जाती है । सदाचाररूपी सोनेमें तो सुजनता मानों सुगन्धका ही काम देती है ।

संसारमें लोगोंको मनुष्यका परिचय उसके गुणों और योग्यताके कारण उतना अधिक नहीं होता जितना उसके सुस्वभाव और सुजनताके कारण होता है। संसारमें मनुष्यकी परीक्षा और उसकी योग्यताका अनुमान प्रायः उसकी सुजनताके ही कारण होता है और सुजनतासे ही उसके महत्त्वकी भी वृद्धि होती है। बात यह है कि विना सुजनताके मनुष्यके अच्छे अच्छे गुणोंका न तो विकास ही होता है और न सर्व-साधारणको उनका यथेष्ट परिचय ही मिलता है। ढूँढ़नेपर ऐसे बहुतसे गुणवान् और विद्वान् मिल जायँगे जिनकी बहुत कुछ हानि और दुर्दशा केवल सुजनताके अभावके कारण ही होती है। अर्थात् स्वयं मनुष्यका सुख बहुतसे अंशोंमें उसके सुस्वभावपर निर्भर है। जो मनुष्य शान्त और धीर होगा, जिसमें क्षमा और दया होगी, जो दूसरोंके साथ सहानुभूति और प्रीतिपूर्ण व्यवहार करेगा, स्पष्ट ही है कि सब लोग उससे प्रसन्न और सन्तुष्ट रहेंगे और उसके सुखी होनेमें बाधाकी बहुत ही कम सम्भावना रह जायगी।

सुजनताको ही प्रायः लोग सदाचारका प्रधान चिह्न मानते हैं और वास्तवमें उसीसे मनुष्यके विचार, संगति और रुचि आदिका बहुतसे अंशोंमें पता लगता है। जो लोग बदमाशीके कारण कूटनीतिसे (पालिसीसे) चलकर औरोंको धोखा देने अथवा सर्वप्रियता प्राप्त करनेके लिए दिखौआ सुजनताका व्यवहार करते हैं, उन्हें छोड़ दीजिए; लेकिन सुशिक्षाके कारण मनुष्यमें जो सुजनता आती है वह उसकी योग्यताकी ही परिचायक होती है। वास्तविक सुजनता विना सुशिक्षाके आ ही नहीं सकती। यदि सुशिक्षाके अभावके कारण मनुष्यके मनका यथोचित संस्कार न हुआ हो तो केवल उससे उठने बैठने आदिके अदब कायदेसे ही कुछ भी नहीं हो सकता। जबतक मनमें कोमलता, दया, विनय आदि गुण न हों, तबतक शरीरको विना सुगन्धिका फूल ही समझना चाहिए। साथ ही वास्तविक सुजनताके लिए सात्त्विकता और सत्यनिष्ठा आदिकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता हुआ करती है।

एक विद्वान्का मत है कि मनुष्यका वास्तविक स्वभाव कुछ अंशोंमें गुप्त रहता है। अर्थात् उसके बाहरी और दिखलाई पड़नेवाले तथा भीतरी और वास्तविक स्वभावमें बहुत अंतर होता है। यह बात तो प्रायः सभी लोग जानते हैं कि बहुतसे अनुचित कार्य्य ऐसे होते हैं जिन्हें सब लोगोंके सामने और प्रत्यक्ष रूपसे करनेके लिए तो कोई तैयार नहीं होता, पर लोगोंकी आँख बचाकर और गुप्त रूपसे लोग वैसे काम करते हैं और इसीसे वास्तविक स्वभावकी आंशिक गुप्तता सिद्ध होती है। पर तो भी स्वभावकी यह दोरंगी उतनी बुरी नहीं होती, क्योंकि इससे यह बात अवश्य सिद्ध होती है कि वह मनुष्य उस कामको अनुचित और निंदनीय तो समझता है; पर कुछ विशेष कारणवश उस कामको करता है। इसमें विवेककी उतनी हत्या नहीं होती, क्योंकि लोग बुरे कामको वास्तवमें बुरा ही समझते हैं। पर जो लोग केवल सर्वप्रिय बननेके लिए ही कूटनीतिका व्यवहार करते हैं और अपने हृदयकी कलुषता छिपानेके लिए ही दोरंगा व्यवहार करते हैं वे अपेक्षाकृत अधिक दुष्ट, नीच और पापी होते हैं। बहुतसे अवसरोंपर उन्हें अपने विवेककी हत्या करनी पड़ती है और सत्यपर परदा डालना पड़ता है; और यही काम अधिक निन्दनीय है।

पिछले प्रकरणमें आत्म-संयमनका महत्त्व बतलाया जा चुका है। अपने स्वभावको वशमें रखनेका भी महत्त्व ठीक ठीक उतना ही है और इससे लाभ भी प्रायः उतने ही होते हैं। यद्यपि मनुष्यका स्वभाव जन्मतः होता है, तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें सुधार या परिवर्तन नहीं हो सकता। बड़े बड़े साधुओं और महात्माओंकी जीवनियोंसे यही सिद्ध होता है कि मनुष्य यदि चाहे तो अपने स्वभावको वशमें रख सकता है। कनक और कान्ता आदिसे प्रायः लोगोंको स्वभावतः सुख मिलता है, और यह नहीं कहा जा सकता कि साधुमहात्मा लोग उस सुखका अनुभव न कर सकते हों, अथवा उस सुखमें लिप्त होनेकी उनकी इच्छा न होती हो। उन पदार्थोंसे उनको सुख भी मिल सकता है और आगेके लिए उनमें उनकी प्रवृत्ति भी हो सकती है। पर वास्तविक सुखमें उन्हें

बाधक समझकर वे आत्म-संयमन करके अपना स्वभाव ही ऐसा बना लेते हैं जिससे कुछ समयके उपरान्त मनमें उन पदार्थोंकी ओरसे विरक्ति हो जाती है। स्वभावके वशमें हो सकनेका यह बहुत अच्छा प्रमाण है।

यद्यपि स्वभाव बहुतसे अंशोंमें परिवर्त्तित हो सकता है अथवा अपने वशमें किया जा सकता है; तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वैसा करना बहुतसे अंशोंमें कठिन और दुस्साध्य होता है। कठोर व्यवहार अथवा दण्ड आदिसे तो वह कभी बदल ही नहीं सकता; हाँ युक्तियोंसे यदि बदल जाय तो बदल जाय। बहुत अधिक बल-प्रयोग करने या दबाव डालनेसे स्वाभाविक गुण कुछ समयके लिए रुक जायगा; पर ज्यों ही उस परसे दबाव हटेगा त्यों ही वह फिर अपना पूर्व रूप धारण कर लेगा। बल्कि बहुतसे अंशोंमें तो यह भी सम्भव है कि दबाव हटनेपर उसका जोर पहलेकी अपेक्षा और भी बढ़ जाय। बाल्यावस्थामें अच्छे अच्छे लोगोंकी देखरेखमें रहनेवाले अमीरों और राजाओंके दुर्गुणी लड़के स्वतंत्र होनेपर जो जो खराबियाँ करते हैं, उनपर ध्यान देनेसे हमारे इस कथनकी सत्यता प्रमाणित हो जायगी। बराबर समझाने बुझाने अथवा वाद-विवाद करनेसे थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ता है, पर वह स्थायी नहीं होता। उसके लिए निरन्तर अभ्यास अथवा अच्छी संगतिकी आवश्यकता है। स्वभावका सुधार बहुत ही धीरे धीरे और निरन्तर करते रहना चाहिए। जो मनुष्य रोज एक बोतल शराब पीता हो उसका शराब पीना उसी दशामें छुड़ाया जा सकता है जब कि उसमें नित्य थोड़ी थोड़ी कमी की जाय। एकदमसे शराब बन्द करके उसकी लत छुड़ानेका प्रयत्न करना प्रायः व्यर्थ ही होगा। इसके अतिरिक्त जो लोग अपने वर्त्तमान दुष्ट स्वभावको बदलना चाहते हों उन्हें उचित है कि वे उसके विपरीत और सुस्वभावमें प्रवृत्त होनेके लिए प्रयत्न करें। उस प्रयत्नमें बीच बीचमें विश्राम भी लेना चाहिए। बीच बीचमें विश्राम करनेसे तीन लाभ होते हैं। एक तो यह कि थकावट या घबराहट नहीं होती; दूसरे विश्रामके उपरान्त जो परिश्रम किया जाता है, उद्देश्य-सिद्धिके लिए वह बहुत

अधिक लाभदायक होता है और तीसरे यह कि जल्दबाजीके कारण होनेवाली भूलें उसमें नहीं होतीं। प्रायः भूलोंके कारण ही मार्गमें भारी भारी अड़चनें आ पड़ती हैं और कार्य्य सिद्ध नहीं होता। अड़चनोंको दूर करनेके लिए विचार करनेकी अवश्यकता होती है। जबतक चित्तमें स्थिरता न हो तबतक विचार नहीं हो सकता; और मनकी स्थिरता विश्रामके बिना असम्भव होती है।

जब एक बार हम अपना दुष्ट स्वभाव बदल डालें तब भी हमें अपने अच्छे स्वभावपर बहुत अधिक भरोसा रखना या इतराना न चाहिए और न स्वभावकी दुष्टताकी ओरसे लापरवाह होना चाहिए। पुराणों आदिकी अनेक कथाओंसे पता चलता है कि जो ऋषि और मुनि संसारके सब सुख छोड़कर बरसों तक जंगलोंमें निवास करते थे, समय पड़नेपर वे भी विचलित हो गये और उनकी प्रवृत्ति बदल गई। इस प्रकारके उदाहरण संसारमें भी नित्यप्रति देखनेमें आते हैं। इस लिए स्वभावकी स्थिरताका कभी विश्वास न करना चाहिए। हाँ, जहाँतक हो सके, बराबर उसको अपने वशमें रखनेका प्रयत्न करते रहना चाहिए। स्वभावको दोषोंसे बचानेके दो ही उपाय हो सकते हैं। जिन दुष्ट पदार्थों या बातोंसे हम बचना चाहते हों, निरन्तर उनसे घिरे रहकर भी हम अपने चित्तको इतना दृढ़ रक्खें कि हमपर उनका कोई प्रभाव ही न पड़ने पावे और इस प्रकार उनमें फँसनेकी सम्भावनाको नष्ट कर दें। अथवा आजन्म ऐसा अवसर ही न आने दें जिसमें कि वे दुष्ट बातें या पदार्थ हमारे सामने आवें। इसमेंसे पहला उपाय बहुत ही कठिन और दुस्साध्य तथा दूसरा उपाय सहज और सम्भव है। अधिकांश लोग प्रायः इसी दूसरे मार्गका अवलंबन करते हैं और यही उचित भी है।

मनुष्यके वास्तविक स्वभावका पता एकान्तमें ही अथवा ऐसी परिस्थितिमें ही लगता है जिसमें विरोध करने या बाधा डालनेवाली कोई शक्ति न हो। जिस दशामें खजाने तक किसीकी पहुँच ही न हो सकती हो उस दशामें भला किसीके चोर होने अथवा न होनेका क्या प्रमाण मिल

सकता है। अथवा जिस दशामें स्त्रीके दर्शन ही न हो सकते हों उस दशामें कोई अपने व्यभिचारी होने या न होनेका क्या प्रमाण दे सकता है। हाँ, खजाने तक पहुँच कर अथवा एकान्तमें किसी सुन्दरीको पाकर जो मनुष्य धन अथवा स्त्रीसे दूर रहे, वही सच्चा साधु है। इसी प्रकार विकट प्रसंग पड़नेपर भी जो अधीर न हो, बहुत बड़ी हानि होनेपर भी जिसे क्रोध न आवे और अपने शत्रुपर भी दया दिखला सके वही सच्चा सज्जन है। बहुतसे लोगोंका सदाचार अथवा सुजनताका व्यवहार लोक-लाजके कारण ही हुआ करता है, वास्तविक और हृदयसे उठा हुआ नहीं होता। प्रसिद्ध विद्वान् सेनिकाका मत है कि सच्चा सदाचरण वही है जिसमें मनुष्य ईश्वर और शासकके दण्डका भय न होनेपर भी पाप कर्म न करे। मनुष्यके वास्तविक स्वभावका पता उसी समयके आचरणसे लग सकता है जिस समय उसके सिवा और कोई वहाँ न हो। अतः जो लोग वास्तवमें सुजन बनना चाहते हों उन्हें उचित है कि वे सदा और सब दशाओंमें अपना स्वभाव और आचरण एकसा सात्विक और उचित रक्खें।

अब हम संक्षेपसे यह बतलाना चाहते हैं कि मनुष्यका स्वभाव वास्तवमें कैसा होना चाहिए और उसे सात्विक या श्रेष्ठ बनाये रखनेके लिए किन किन बातोंकी आवश्यकता है। सबसे पहली बात तो यह है कि मनुष्यको स्वभावतः सदा प्रसन्न रहना चाहिए। कुछ लोगोंका स्वभाव ऐसा हुआ करता है कि वे संसारकी सभी बातों और सभी घटनाओंको दुःखमय समझते हैं और कुछ लोग ऐसे होते हैं जो उन्हें सुखमय और लाभकारक मानते हैं। इसके अतिरिक्त एक प्रकारके ऐसे लोग भी होते हैं जो संसारका वास्तविक स्वरूप पहचाननेमें असमर्थ रहते हैं और इसी लिए वे न तो उसे सुखमय समझते हैं और न दुःखमय, और इसी लिए वे प्रायः उद्विग्नसे रहते हैं। संसारमें सुख भी है और दुःख भी। लेकिन सुखोंमें भी दुःखकी ही भावना करनेवाले लोग अधिक सदाचारी और संसारका कल्याण करनेवाले होते हैं। इस

सम्बन्धकी विशेष बातोंपर पूरा विचार एक अगले प्रकरणमें किया गया है। यहाँपर हम केवल इतना ही कह देना चाहते हैं कि जो मनुष्य स्वयं गुणवान् और गुणग्राही होता है, वह बहुधा दूसरोंके दोषोंकी ओर कभी ध्यान नहीं देता, केवल उनके गुण ग्रहण कर लेता है। पर जिस मनुष्यमें दोष अधिक होते हैं उसे संसारकी सभी बातोंमें यहाँतक कि अच्छी बातोंमें भी दोष ही दोष दिखलाई देते हैं और दोषदर्शी होना बहुत ही. बुरी बात है। जिस मनुष्यमें दोष ढूँढ़नेकी बुरी आदत पड़ जाती है, उसका संसारकी किसी बात या चीजसे समाधान नहीं होता। लेकिन जो मनुष्य सब बातों या पदार्थोंमें केवल गुण या भलाई ही देखता है उसपर यदि कोई बहुत बड़ी विपत्ति भी आ जाय तो भी वह कभी घबराता या निराश नहीं होता; बल्कि वह यही समझकर शान्तिपूर्वक उस विपत्तिको झेलता है कि आगे चलकर इसमेंसे कोई न कोई भलाई ही निकलेगी। ऐसे मनुष्यमें सन्तोष, आनन्द और श्रद्धा आदि अनेक. ऐसे शुभ गुण और भाव होते हैं जिनके सम्बन्धमें और लोगोंको ईर्ष्या-तक हो सकती है। एक विद्वान्‌का मत है कि ज्ञानवान् और अज्ञानी दोनोंपर दुःख और सुख समानरूपसे आते हैं। ज्ञानवान् मनुष्य न तो दुःखके समय घबरा जाता है और न सुखके समय इतरा या फूल जाता है। पर अज्ञानी मनुष्य थोड़े ही दुःखसे विह्वल हो जाता है और थोड़े ही सुखमें उसका दिमाग फिर जाता है। ज्ञानवान्‌का तो दुःख भी बहुधा सुखरूपमें परिणत हो जाता है और अज्ञानीका सुख भी दुःखदायक हो जाता है।

स्वभावको सात्विक बनाने तथा सदा प्रसन्न रहनेके लिए अनेक बातोंकी आवश्यकता होती है जिनमेंसे सदाचार, निष्कपटता, सत्यभाषण, प्रेम, श्रद्धा, दया, धैर्य्य, विनय, सन्तोष, नम्रता, परोपकारबुद्धि आदि आदि बातें प्रधान हैं। इनमेंसे सबसे पहला गुण सदाचार बहुत ही व्यापक है और मानवोचित प्रायः सभी गुण उसीके अंतर्गत आ जाते हैं। इस सम्बन्धमें आरम्भमें ही एक स्वतंत्र प्रकरण दिया जा चुका है; अतः यहाँ

कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। अब हम शेष गुणोंपर क्रमशः थोड़ा थोड़ा विचार करते हैं।

निष्कपटता और सत्यता ये ऐसे गुण हैं कि इनपर लोग सहजमें ही और आपसे आप मोहित हो जाते हैं। जो मनुष्य निष्कपट और सच्चा होता है उसकी बातोंमें किसी तरहका ढोंग या धोखा नहीं होता। बातें करते समय ऐसे मनुष्यका हृदय दृढ़ और बलिष्ठ होता है तथा दृष्टि स्थिर और निश्चल रहती है। उसका व्यवहार उदारतापूर्ण होता है। दूसरोंको झूठ बोलते देखकर या तो उसे लज्जा आती है और या क्रोध। स्वयं उसके शब्द उसके मनके विचारोंके मानों ठीक ठीक प्रतिबिम्ब होते हैं। उसकी बातें खरी, बेलाग, स्नेहपूर्ण और प्रभावयुक्त होती हैं। वह समय पड़नेपर दूसरोंको खरी बातें सुनानेसे नहीं चूकता और अपना वचन अवश्य पूरा करता है।

लेकिन जो मनुष्य कपटी या झूठा होता है वह ढोंग रचकर बातों बातोंमें लोगोंको यह दरसाना चाहता है कि मैं बिलकुल सच कह रहा हूँ। वह सदा दूसरोंको ठगनेके प्रयत्नमें ही लगा रहता है। वह दुःखके समय हँस भी सकता है और सुखके समय रो भी सकता है। उसकी बातों और व्यवहारोंका न तो एक दूसरेसे मेल होता है और न कुछ ठीक ठिकाना। वह बहुधा यही समझता है कि मेरी वास्तविक स्थिति लोगोंपर प्रगट नहीं होती। ऐसा मनुष्य बहुधा निर्लज्ज भी हुआ करता है। जब कभी लोगोंपर उसका झूठ या कपट खुल जाता है तब वह दूसरे झूठ या कपटसे अपने पिछले झूठ या कपटको छिपानेकी चेष्टा करता है। अपनी समझसे तो वह अपना झूठ या कपट छिपा लेता है और मानों बड़ी भारी बहादुरीका काम करता है; पर वास्तवमें उसकी झुठाई या कपटता लोगोंपर और भी अच्छी तरह खुल जाती है; वह लोगोंकी दृष्टिमें आगेकी अपेक्षा और भी अधिक गिर जाता है। कपटी और झूठे मनुष्य अपने कपट-व्यवहार तथा झूठी बातोंकी सहायतासे प्रतिष्ठा प्राप्त करनेमें जितना परिश्रम करते हैं, यदि वे चाहें तो निष्क-

पट व्यवहार और सच्ची बातोंकी सहायतासे अपेक्षाकृत थोड़े परिश्रमसे अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हैं।

कपटी और झूठ बोलनेवाले अनेक प्रकारके हुआ करते हैं। कुछ लोग शेख़ीके मारे, कुछ खुशामदके लिए, कुछ अपने सुभीतेके लिए, कुछ स्वार्थके लिए, कुछ भयके कारण, कुछ ईर्ष्या या द्वेषके कारण और कुछ यों ही व्यर्थ झूठ बोलते अथवा कपटताका व्यवहार करते हैं। एक विद्वान्ने तो आठसौ उनहत्तर तरहके झूठे गिनाये हैं। प्रायः सभी लोग ऐसे दो चार झूठोंको जानते होंगे जो किसी उद्देश्य या लाभके बिना केवल लत पड़ जानेके कारण ही दिनरात व्यर्थ झूठ बोला करते हैं। बहुत ही साधारण बातोंको भी वे बहुत बढ़ाकर, नमक-मिर्च लगा-कर और इस अन्दाजसे कहेंगे जिससे सुननेवाले समझ लें कि उस विष-यमें उन्हें पूरी पूरी जानकारी है। कुछ लोग अविचार अथवा लापरवाहीके कारण झूठ बोलते हैं। ऐसे लोगोंका झूठ बोलनेका उद्देश्य तो नहीं होता, पर हाँ उनकी बहुत ही थोड़ी बातें सच निकला करती हैं। ऐसे लोग बातें बहुत करते हैं और सब विषयोंमें अपना मत इतनी दृढ़तासे प्रतिपादित करते हैं कि लोगोंको उनके पूर्ण ज्ञाता होनेका विश्वाससा हो जाता है। पर उनका मत या निर्णय वास्तवमें बहुत ही दोषपूर्ण और भ्रमात्मक हुआ करता है। वे धैर्य्य और विचारपूर्वक किसी बातको नहीं सुनते और न किसी कामको देखते हैं। उनका मिथ्या भाषण किसी विशेष उद्देश्यसे नहीं होता बल्कि केवल इसी कारण होता है कि सोचने समझनेमें वे बहुत शीघ्रता करते हैं।

कुछ लोग केवल दूसरोंको प्रसन्न करनेके लिए ही झूठ बोला करते हैं। आपके दोष दिखलाकर वे आपको दुःखी नहीं कर सकते; बल्कि आपके छोटे छोटे गुणोंको भी बहुत बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करते और इस प्रकार आपको प्रसन्न कर देते हैं। इस प्रकारके झूठ बोलनेवाले लोग कभी कभी बहुत हानि पहुँचाते हैं। कुछ लोग केवल शिष्टा-चारके लिए ही झूठ बोलते हैं। ऐसे लोग कभी कभी अप्रिय सत्य न

बोल सकनेके कारण ही दूसरोंको भारी धोखा दे बैठते हैं। मान लीजिए कि आपके यहाँ कोई ऐसा मनुष्य नौकर है जो आलसी चोर अथवा अयोग्य है। उसके किसी दुर्गुण या अपराधके कारण ही आप उसे नौकरीसे अलग करते हैं। पर यदि वह आपसे, चलते समय, प्रशंसापत्र माँगता है तो अप्रिय सत्य न कह सकनेके कारण आप उसे एक सुन्दर प्रशंसापत्र लिख देते हैं। उस समय आपको इस बातका ध्यान नहीं रह जाता कि आपके उस प्रशंसापत्रपर विश्वास करनेके कारण आगे चलकर औरोंकी कितनी हानि हो सकती है।

झूठ बोलनेके असंख्य प्रकार हैं। यदि आप किसी बातको जानते हों और समय पड़नेपर स्वार्थवश न कहें और चुप रह जायँ तो वह भी एक प्रकारका झूठ ही है। जिस स्थानपर सत्य बोलना आपका कर्त्तव्य हो, उस स्थानपर बिलकुल चुप रह जाना भी झूठ ही है। यदि किसी बातका कोई अंश आप कहें और कोई बात छिपा रक्खें तो वह भी झूठ ही है। झूठ केवल मुँहसे ही नहीं निकलता, वह तो आचार, व्यवहार, संकेत और यहाँ तक कि जरासा कन्धा हिला देने या पलक झपका देनेसे भी हो जाता है। पर सबसे अधिक निकृष्ट और हानिकारक झूठा वह मनुष्य है जो केवल अपनी दुर्बलताके कारण झूठ बोलता है और जिसमें समय पड़नेपर अप्रिय सत्य बोलनेका साहस नहीं होता। ऐसे मनुष्य जहाँ तक हो सकता है कभी कोई ऐसी बात नहीं कहते जिसमें उन्हें अपने पक्षका कुछ समर्थन करना पड़े। इसी लिए एक विद्वानने कहा है कि दुर्बल या कायर मनुष्य सदा झूठे होते हैं। वे लोग दुष्ट या दुराचारी होनेके कारण झूठ नहीं बोलते बल्कि केवल इस लिए झूठ बोलते हैं कि उनमें सच बोलनेकी शक्ति या साहसका ही अभाव होता है।

ऐसी अवस्थामें जब कि सच बोलनेसे आपपर किसी प्रकारकी आपत्ति आती हो, आपकी बदनामी होती हो अथवा आपके स्वार्थको किसी प्रकार हानि होती हो और आप यह समझते हों कि जरासा झूठ बोलने या किसी बातको छिपा रखनेसे आप उस आपत्ति, बदनामी या हानिसे

बच जायँगे, तो सच बोलनेके लिए बड़े ही साहस और बलकी आवश्यकता होती है। यदि आपके विपक्षीका विशेष लाभ होता हो अथवा किसी मित्र या सम्बन्धीकी भारी हानि होती हो, तो उस समय सच बोलनेके लिए बड़े साहस और बड़े मनुष्यत्वकी आवश्यकता होती है। जिस समय झूठ बोलनेसे आप भारी आर्थिक हानिसे बच सकते हों अथवा झूठ बोलनेके कारण ही आपको कहींसे भारी रकम मिल सकती हो, उस समय सच बोलनेके लिए बड़े नैतिक साहसकी आवश्यकता होती है। पर इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि सच बोलकर अपनी हानि कर बैठना झूठ बोलकर दूसरोंको धोखा देनेकी अपेक्षा लाख दरजे अच्छा है।

आजकल समाचारपत्रोंमें झूठकी खूब धूम ही रहती है। भारतीय पत्र-सम्पादक तो उतना अधिक झूठ बोलना नहीं जानते, पर हाँ विलायती पत्रसम्पादक खूब झूठ बोलना जानते हैं। आजकल, जहाँ तक हो सकता है हर एक बातको खूब बढ़ा चढ़ाकर और खूब नमक मिर्च लगाकर प्रकाशित करनेकी प्रथा सी हो रही है। बातका बतंगड़ बनाना समाचारपत्र-सम्पादक खूब जानते हैं। विशेषतः अमेरिकाके सम्पादक तो बड़े ही झूठे होते हैं। उस देशके विज्ञापन-बाज और भी झूठे होते हैं। जो लोग अमेरिका हो आये हैं, उनका कथन है कि वहाँका बहुत कुछ कारबार केवल झूठ बोलकर ही चलाया जाता है। लोग अपनी चीजोंकी बिलकुल ही झूठी प्रशंसा करते हैं और समाचारपत्रोंमें लम्बे चौड़े विज्ञापन देते हैं, और यहाँ तक कि झूठे प्रशंसापत्र भी छापते हैं। वे लोग इस बातका ध्यान नहीं रखते कि हमारी चीजमें क्या गुण है अथवा वह कहाँतक उपयोगी है। वे केवल उसे बेचना चाहते हैं और बेचनेके लिए ही वे आपको इस बातका विश्वास दिलानेका प्रयत्न करते हैं कि वह चीज बहुत अच्छी है और बड़े कामकी है। उनकी देखादेखी इस देशमें भी झूठे विज्ञापनदाता बढ़ रहे हैं। हम एक ऐसे महात्माको जानते हैं जो एक ही पुस्तकके दस दस नाम रखकर और प्रत्येक नामके साथ अलग विषय बतलाकर विज्ञापनोंकी सहायतासे उसकी हजारों कापियाँ

बेच लेते हैं। कलकत्ते और बम्बईसे अनेक बिसातियोंके दो दो सौ पेजके सूचीपत्र छपते हैं। पर यदि आप किसी प्रकार उनके आफिस तक पहुँच सकें, तो आप देखेंगे कि वहाँ सिवा टेबुल कुरसीके और कुछ भी नहीं है। वे बहुतसी चीजोंको अपने ही कारखानेमें बना हुआ बतलाते हैं, पर ढूँढ़नेपर कारखानेका कहीं नाम भी नहीं मिलता। दवाओंका विज्ञापन देनेवालोंकी दशा इससे भी बढ़कर भयंकर होती है। वे एक ही ओषधिसे सैकड़ों हजारों बल्कि दुनिया भरके रोग दूर करनेका डंका पीटते हैं; पर रहती उनकी दवामें खाक भी नहीं। इसी प्रकार लेखक लोग भी बहुधा झूठ बोलनेका अभ्यास कर लेते हैं। विशेषतः जीवन-चरितोंके लेखक तो सच-झूठका और भी कम ध्यान रखते हैं। किसीकी जीवनी लिखते समय वे उसके अवगुणोंको तो बिलकुल छोड़ देते हैं और उसमें अनेक ऐसे गुणोंका आरोप कर बैठते हैं जो उसमें नामको भी नहीं होते। केवल झूठे गुणोंका आरोप करके ही वे अपने नायकको आकाशपर चढ़ा देते हैं।

आजकलके युवकोंका प्रायः यह विश्वाससा हो गया है कि अब सचका जमाना नहीं रहा। वे यही समझते हैं कि जो मनुष्य झूठा, दगाबाज, जालिया और स्वार्थी होता है वही संसारमें अच्छी तरह रहता है। प्रत्येक कार्य्यमें सफलता प्राप्त करने और यथेष्ट धन उपार्जन करनेके लिए वे इन्हीं गुणोंको बहुत आवश्यक समझते हैं। पर इससे बढ़कर भूल और कोई हो ही नहीं सकती, क्योंकि वास्तवमें यह बात ईश्वरी नियमके बिलकुल विरुद्ध है। हम कभी झूठ बोलकर या किसीको धोखा देकर उन्नति नहीं कर सकते। केवल झूठ या धोखेके भरोसेपर आजतक संसारमें कभी कोई स्थायी कार्य्य नहीं हुआ। झूठे या धोखेबाज मनुष्यको कभी कोई लाभ तो होता ही नहीं, उलटे जब उसका धोखा या झूठ खुल जाता है, तब लोग उसे घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं और प्रायः उसके शत्रु हो जाते हैं। मनुष्यमें यह बात बिलकुल स्वाभाविक होती है कि जिससे एक बार वह धोखा खा लेता अथवा

ठगा जाता है उसका वह फिर कभी आजन्म विश्वास नहीं करता । यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो झूठमें कोई ऐसी शक्ति ही नहीं है जिसके कारण वह सत्यके सामने जरा भी ठहर सके ।

झूठे या धोखेबाज मनुष्यको सदा इस बातका खटका भी लगा रहता है कि कहीं लोगोंपर उसका झूठ या छल प्रकट न हो जाय । पर जो मनुष्य सच्चा होता है उसमें बहुत कुछ दृढ़ता और शक्ति होती है । वह समझता है कि समय पड़नेपर मेरे इस सत्य-पक्षका समर्थन सारा समाज बल्कि सारा संसार कर सकता है । उसे सदा अपनी विजयका दृढ़ विश्वास रहता है । पर झूठे मनुष्यका जी सदा कचोटता रहता है । झूठ बोलनेके समय वह समझता है कि मैं कोई अनुचित और अन्यायपूर्वक कार्य्य कर रहा हूँ । उसकी आत्मा उसे दोषी बनाती है । लोग उसके साथ सम्बन्ध या व्यवहार करनेसे हिचकते हैं । जो लोग बहुत अधिक झूठे और दगाबाज होते हैं उनकी आकृतिमें ही कुछ ऐसा दोष आ जाता है जिसके कारण लोग उन्हें देखते ही उनसे घृणा करने लगते हैं । उनकी नस नससे बेईमानी टपकती है । पर जो मनुष्य सच्चा और सात्विक होता है उसे देखते ही लोगोंके मनमें श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न होती है । ऐसे मनुष्यका सब स्थानोंपर आदर होता है । सब स्थानोंपर लोग उसके मित्र और सहायक हो जाते हैं । उसे अपनी प्रतिष्ठाका सबसे अधिक ध्यान रहता है; सत्य और प्रतिष्ठाके सामने वह स्वार्थ और लोभको कोई चीज ही नहीं समझता । वह सदा न्याय चाहता है, चाहे उससे स्वयं उसकी हानि ही क्यों न हो । यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो विश्व और उसके प्राणियोंकी रचना ही एक मात्र सत्के आधारपर हुई है । आत्माको कष्ट पहुँचाये बिना कभी सत्यकी हत्या हो ही नहीं सकती । सत्य एक प्राकृतिक नियम और बल है । संसारका कोई नियम या कोई शक्ति उसका सामना नहीं कर सकती । इसी लिए कहा है—“ सत्यमेव जयते नानृतम ” । जो मनुष्य गणितशास्त्रके नियमोंको भंग करनेका प्रयत्न करे

उसे अवश्य ही आप भारी मूर्ख कहेंगे। ठीक उसी प्रकार सत्यके विपरीत आचरण करनेवालेको भी समझना चाहिए। सत्य एक प्राकृतिक नियम है। उसके विपरीत चलना मूर्खता, नीचता और ईश्वरके प्रति कृतघ्नता है। जिस प्रकार स्त्रीमें सतीत्वकी सबसे बड़ी आवश्यकता है, उसी प्रकार मनुष्यमें सत्यताकी सबसे अधिक आवश्यकता है। जिस प्रकार सतीत्वके नष्ट हो जानेपर स्त्रीका कोई मूल्य नहीं रह जाता, उसी प्रकार सत्यताके नष्ट हो जाने पर मनुष्यमें कुछ भी नहीं रह जाता। झूठे मनुष्यका सर्वोत्तम गुण, सर्वोत्कृष्ट अंश नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य सत्यपथसे गिर जाता है उसमें मनुष्यत्व रह ही नहीं जाता। मनुष्य सत्यपथसे जितना ही हटता जाता है, उतना ही वह पशुत्वको प्राप्त होता जाता है। जिस सत्यकी इतनी अधिक महिमा, इतना अधिक महत्त्व है, अपने स्वभावमें पूर्ण रूपसे उसका अरोप करना मनुष्यमात्रका परम कर्त्तव्य है।

मनुष्यको अपना स्वभाव सात्विक बनानेके उपरान्त दूसरी आवश्यकता उसे प्रेम-पूर्ण और मिलनसार बनानेकी होती है। जिस मनुष्यका हृदय प्रेमपूर्ण न हो उसे बहुतसे अंशोंमें मनुष्य ही न मानना चाहिए। प्रायः सभी धर्मोंमें प्रेमको परम धर्म और मानव-जीवनका सार माना है। यह प्रेम मनुष्यके दुःखोंको घटाने और सुखोंको बढ़ानेमें बड़ा भारी सहायक होता है। जिस मनुष्यमें प्रेमकी मात्रा जितनी ही अधिक होगी वह संसारकी विपत्तियोंसे भी उतना ही अधिक बचा रहेगा। इसके अतिरिक्त मनको और सात्विक बनानेके लिए भी प्रेमकी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। पिछले प्रकरणमें हम अमेरिकाके एक विकट अपराधी और एक स्त्रीका उदाहरण देकर यह बात बतला चुके हैं कि प्रेम-पूर्ण व्यवहारका प्रभाव मनुष्यपर कठोर दण्डकी अपेक्षा कहीं अधिक उत्तम होता है। प्रेमकी सहायतासे मनुष्य अपना मन भी पवित्र रख सकता है और दूसरोंका मन भी पवित्र और निर्मल कर सकता है। एक विद्वान्का मत है कि प्रेमसे कोमलता, सुख, शान्ति, ममता और सद्भाव आदि अनेक गुणोंकी उत्पत्ति होती है और इसीकी सहायतासे मनुष्य बुरी बातोंको

त्याग करके अच्छी बातें स्वीकार करता है। प्रेम हमारे सच्चे मित्रों और सहायकोंकी संख्या बढ़ाकर हमारे मार्गके समस्त कण्टकोंको दूर करता है। केवल सुविचारसे ही मनुष्यमें कभी सद्गुणोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। हमारा हृदय क्षेत्र है, सुविचार बीज है, प्रेम वह अमृत है जिससे क्षेत्र सींचा जाता है और सद्गुण उस क्षेत्रमें होनेवाले फल हैं। जबतक हमारा हृदय प्रेमामृतसे सींचा न जायगा तब तक उसमें कभी सद्गुण उत्पन्न ही न होगा। एक महात्माका उपदेश है कि यदि हमें ईश्वरसे कुछ माँगना हो तो सदा प्रेमकी भिक्षा ही माँगनी चाहिए।

प्रेम एक ऐसी अलौकिक शक्ति है जिससे मनुष्यके अनन्त लाभ होते हैं। प्रेमसे मानसिक विकार दूर होते हैं, विचारोंमें कोमलता आती है, सद्गुणोंकी सृष्टि होती है, दुःखोंका नाश और सुखोंकी वृद्धि होती है और यहाँतक कि मनुष्यकी आयु भी बढ़ती है। जो मनुष्य अपने हृदयसे प्रेमभाव निकाल देता है वह मानों अपने जीवनका सर्वोत्तम अंश नष्ट कर देता है। प्रेम ही मनुष्यको साहसी, धीर और सहनशील बनाता है। केवल प्रेमके बलपर ही कोमल स्त्रियोंने भीषण युद्ध करके विजय प्राप्त की है और प्रेमहीके सहारे उन्होंने विकट कष्ट सहे हैं। प्रेमहीके कारण माता अपने पुत्रके लिए अनन्त कष्ट सहती है और स्वयं सब प्रकारके दुःख भोगकर उसे सुख देती है। माताओंको बहुधा ऐसी अवस्थामें रहना पड़ता है जिसमें, यदि उन्हें प्रेमका सहारा न हो तो, वे बहुत शीघ्र बीमार हो जायँ। पर वह प्रेम उन्हें रोगी होनेसे बचाता है। उलटे शुद्ध प्रेम उन्हें बलिष्ठ और सुन्दर बनाता है। बिना प्रेमके अच्छीसे अच्छी सुख सामग्री हमें तनिक भी प्रसन्न नहीं कर सकती; पर प्रेमकी सहायतासे हम बिना और किसी सुख-सामग्रीके भी परम सुखी हो सकते हैं। तात्पर्य्य यह कि प्रेमसे संसारकी समस्त उत्तम बातोंकी सृष्टि होती है और समस्त बुरी बातोंका नाश होता है।

संसारमें सुख और प्रतिष्ठापूर्वक रहनेके लिए मिलनसार होनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है और मिलनसार वही मनुष्य हो सकता है

जिसका हृदय प्रेम-पूर्ण हो । संसारमें हमारे बहुतसे काम केवल मिलनसारीसे ही निकल जाते हैं । जिस मनुष्यका स्वभाव प्रेमपूर्ण और मिलनसार होता है उसे सब स्थानों और सब अवस्थाओंमें मित्र और सहायक मिल जाते हैं । हम नित्यप्रति यह देखते हैं कि मिलनसार मनुष्यके कठिनसे कठिन काम बहुत ही सहजमें हो जाते हैं; और जिस मनुष्यका स्वभाव मिलनसार नहीं होता उसके साधारण काम भी बेतरह रुक जाते हैं । और नहीं तो कमसे कम सांसारिक उन्नतिके लिए ही मनुष्यको मिलनसार होनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है । अतः प्रत्येक मनुष्यको अपना स्वभाव मिलनसार और प्रेमपूर्ण बनाना चाहिए ।

प्रत्येक मनुष्यके लिए दयालु और परोपकारी होना भी परम आवश्यक है । एक महात्माका कथन है कि जिस प्रकार मेघ जल बरसाकर पृथ्वीको शस्यपूर्ण करता है, उसी प्रकार दयाका व्यवहार भी दुःखी प्राणियोंपर कल्याणकी वर्षा करके संसारको सुखपूर्ण करता है । दया एक ऐसा सत्कार्य्य है जिसका शुभ परिणाम दोनों पक्षोंको मिलता है । जिस मनुष्यपर दया की जाती है वह तो सुखी होता ही है, साथ ही दया करनेवाला मनुष्य भी सुखी होता है । ऋग्वेदमें एक स्थानपर कहा है कि जो मनुष्य दूसरोंपर दया नहीं करता, स्वयं उसपर भी कोई दया नहीं करता । प्रत्येक मनुष्यका यह परम कर्त्तव्य है कि वह जिस मनुष्यको दुःखपूर्ण अवस्थामें देखे, यथासाध्य उसे सहायता दे और उसका दुःख दूर करनेका प्रयत्न करे । संसारमें बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जो स्वभावतः दूसरेका उपकार करने और दुःख निवारण करनेके प्रयत्नमें लगे रहते हैं । इस काममें यदि उन्हें किसी प्रकारका कष्ट या हानि भी पहुँचे, तो वे उसकी परवा नहीं करते । दूसरोंका दुःख दूर करनेके समय यदि स्वयं उन्हें दुःखी होना पड़े तो वे बहुत प्रसन्नतापूर्वक वह दुःख सह लेते हैं । ऐसे ही मनुष्योंको लोग महात्मा कहते हैं ।

संसारमें दया और परोपकारसे बढ़कर न तो कोई पुण्य है और न सुखका साधन । यदि आप सदा परम सन्तुष्ट और प्रसन्न रहना चाहते

हों, तो दीन-दुखियोंपर दया कीजिए और जहाँतक हो सके दूसरोंका उपकार कीजिए। यदि आप मनुष्य होकर संसारमें सबसे अच्छा कोई कार्य्य कर सकते हैं तो वह परोपकार ही है। दयालु अथवा परोपकारी होनेके लिए यह बात आवश्यक नहीं है कि आप धनवान और सम्पन्न हों अथवा किसीको कुछ दें ही। धनसे इन बातोंका उतना अधिक सम्बन्ध नहीं है। ये तो मनकी उदारतासे सम्बन्ध और उन्हींके परिणाम-स्वरूप हैं। दरिद्रसे दरिद्र मनुष्य भी यदि चाहे तो अच्छे अच्छे धनवानोंसे बढ़कर परोपकार कर सकता है। परोपकार एक ऐसा मनोधर्म्म है जिससे स्वयं मनुष्यकी भी योग्यता बढ़ती है और दूसरोंका भी उपकार होता है।

दयालु और परोपकारी होनेके लिए कई बातोंकी आवश्यकता होती है। सबसे पहली बात तो यह है कि जो मनुष्य दया और उपकार करना चाहता हो वह अपने सुखका ध्यान बिलकुल छोड़ दे। अपने सुखका ध्यान दया और परोपकारके कामोंमें बहुत बाधक होता है। जिस मनुष्यका ध्यान सदा अपने सुखकी ओर रहता है उसमें दया और भक्ति आदि गुण रह ही नहीं सकते। ऐसे मनुष्यको सदा अपने सुखकी चिन्ता लगी रहती है और जब स्वयं उसका मन ही कभी शान्त और सन्तुष्ट नहीं होता, तब भला वह दूसरोंका क्या उपकार करेगा? दूसरी बात यह है कि दया या परोपकार करते समय हमें कभी यश अथवा कीर्तिकी आकांक्षा न रखनी चाहिए और न किये हुए उपकारका बदला पानेकी। उच्च कोटिके महात्माओंके यही लक्षण हैं। यश, कीर्त्ति अथवा बदला पानेकी इच्छासे किया हुआ उपकार वृथा ही होता है। एक अँगरेज कविका मत है कि जो मनुष्य पूर्ण महात्मा बनना चाहता हो—वास्तविक मनुष्यत्वकी चरम सीमातक पहुँचना चाहता हो—उसे उचित है कि वह फूलसे शिक्षा ग्रहण करे। फूल सुगन्धि देकर हमारा उपकार करता है। पर इस उपकारके बदलेमें वह हमसे किसी प्रकारके प्रति-फलकी आशा नहीं रखता। इसके अतिरिक्त हम उसे चाहे जिस दशामें रक्खें वह अपना परोपकारगुण नहीं त्यागता। ठीक इसी प्रकार मनुष्यको

भी अपना व्यवहार रखना चाहिए। उसे सदा दूसरोंका उपकार करते रहना चाहिए और जिनके साथ वह उपकार करे उनसे किसी प्रकारके प्रतिफलकी आशा न रखनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे सभी दशाओंमें और सभी अवसरोंपर दूसरोंका उपकार करते रहना चाहिए। सच्चे महात्माओंके ये ही लक्षण हैं। इस अवसरपर हमें महात्मा प्लेटोका एक वचन स्मरण आता है। उसने एक स्थलपर कहा है,—"जो मनुष्य दूसरोंका उपकार करने जाता है वह स्वयं अपना ही उपकार कर लेता है।" और वास्तवमें यह बात अक्षरशः सत्य है।

प्रत्येक मनुष्य सुखी होना चाहता है; और अपनी इस इच्छाकी पूर्त्तिके लिए वह अपने आपको ही सुख देनेका प्रयत्न करता है। लेकिन जिस प्रकार बहुतसे हिंसक जन्तु अपनी सन्तानको आप ही खा जाते हैं, उसी प्रकार यह प्रयत्न भी प्रायः अपने कर्त्ता मनुष्यको नष्ट कर देता है। प्रायः अपने आपको सुखी करनेकी जो चेष्टा हुआ करती है वह या तो मनुष्यको दुःखी कर देती है और या कमसे कम व्यर्थ होती है। मनुष्यको सबसे अधिक और वास्तविक सुख दूसरोंको सुखी करनेसे ही मिल सकता है। स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायने अपने मेवाड़-पतन*नामक प्रसिद्ध नाटकमें अपने एक पात्रसे एक स्थानपर कहलवाया है—"पृथ्वीमें दो राज्य हैं—एक स्वार्थका और दूसरा त्यागका। पहलेका जन्मस्थान है नरक और दूसरेका स्वर्ग। पहलेका देवता है शैतान और दूसरेका ईश्वर। × × × × (दूसरे राज्यके) राजाकी राजनीति है स्नेह दया और भक्ति। राज्यका शासन है सेवा, दण्ड है अनुकम्पा और आत्मोत्सर्ग या बलिदान है पुरस्कार।" कैसे अच्छे विचार हैं! कितनी उत्तम शिक्षा है! जो मनुष्य इन विचारोंके अनुसार कुछ भी कार्य कर सके, वह सचमुच धन्य और महात्मा है।

* इस नाटकका अनुवाद मैंने हिन्दीमें किया है और वह इसी 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज'में प्रकाशित हुआ है।—रा० चं० वर्मा।

परोपकारी बननेके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी है कि मनुष्यके मनमें दया या करुणा उत्पन्न हो; और इसी लिए हमने दया और परोपकारको एक साथ ही रक्खा है। दूसरोंका दुःख देखकर दुःखी होना दया या करुणा है और उस दुःखको दूर करनेका प्रयत्न परोपकार है। मनुष्यकी प्रकृतिमें शील और सात्विकताकी सबसे पहले इसी मनोविकारके कारण स्थापना होती है। संसारमें सभी लोग दुःख दूर करने और सुख बढ़ानेका प्रयत्न करते हैं। और यदि इस उद्देशकी पूर्त्तिमें सब लोग मिल जायँ तो वह सहजमें सिद्ध हो सकता है। अब जिन कार्य्योंसे इस उद्देश्यकी पूर्त्ति हो सकती हो निस्सन्देह उनकी गणना संसारके सर्वोत्तम कार्य्योंमें की जायगी। इसी लिए व्यासदेवने कहा है—"परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्"। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है,—

पर-उपकारसरिस न भलाई।
पर-पीड़ासम नहिं अधमाई॥

"सामाजिक जीवनकी स्थिति और पुष्टिके लिए करुणाका प्रसार आवश्यक है। समाजशास्त्रके पश्चिमी ग्रन्थकार कहा करें कि समाजमें एक दूसरेकी सहायता अपनी अपनी रक्षाके विचारसे की जाती है; पर यदि ध्यानसे देखा जाय तो कर्म्मक्षेत्रमें परस्पर सहायताकी सच्ची उत्तेजना देनेवाली किसी न किसी रूपमें करुणा ही दिखाई देगी। मेरा यह कहना नहीं है कि परस्परकी सहायताका परिणाम प्रत्येकका कल्याण नहीं है, मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि संसारमें एक दूसरेकी सहायता विवेचनाद्वारा' निश्चित इस प्रकारके दूरस्थ परिणामपर दृष्टि रखकर नहीं की जाती, बल्कि मनकी प्रवृत्तिकारिणी प्रेरणासे की जाती है। दूसरेकी सहायता करनेसे अपनी रक्षाकी भी सम्भावना है, इस बात या उद्देश्यका ध्यान प्रत्येक, विशेषकर सच्चे सहायकको तो नहीं रहता। ऐसे विस्तृत उद्देश्योंका ध्यान तो विश्वात्मा स्वयं रखती है। वह उसे प्राणियोंकी बुद्धि ऐसी चंचल और परस्पर भिन्न वस्तुके भरोसे नहीं छोड़ती।"* इन

* पंडित रामचंद्र शुक्ल लिखित—'मनोवृत्तियोंका विकाश।'

वाक्योंसे यह तो सिद्ध होता ही है कि समाजकी रक्षाकी दृष्टिसे करुणा बहुत ही आवश्यक है; पर साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि करुणाका भाव मनुष्यमें प्राकृतिक होता है। पर तो भी जिस प्रकार लोग अपनी अनेक सुन्दर वृत्तियोंको नष्ट या कुण्ठित कर देते हैं, उसी प्रकार प्रायः इसे भी नष्ट कर देते हैं। लेकिन वास्तवमें ऐसा होना बहुत ही हानिकारक होता है। प्रकृति या स्वभावके इस परम आवश्यक और महान् उपयोगी गुणको कभी नष्ट न होने देना चाहिए और प्रत्येक मनुष्यको सदा दयालु रहकर परोपकार करते रहना चाहिए।

दूसरोंके दुःखसे तो बहुतसे लोग दुःखी होते हैं, पर कुछ दुष्ट स्वभावके ऐसे लोग भी होते हैं जो दूसरोंको सुखी देखकर भी दुःखी होते हैं। ऐसे लोगोंको ईर्ष्यालु कहते हैं। स्वभावका यह दुर्गुण विचारोंको भी नष्ट करता है और शरीरको भी। ईर्ष्यालु मनुष्य प्रायः दूसरेको सुखी, सम्पन्न या सफल-मनोरथ देखकर मन ही मन जलते हैं और जहाँतक हो सकता है उसका सुख या सम्पन्नता नष्ट करनेका प्रयत्न करते हैं। ऐसे मनुष्य व्यर्थ ही दूसरोंसे शत्रुता भी मोल ले बैठते हैं और अपने शरीरमें एक रोग भी लगा लेते हैं। एक कहानी है कि एक बार कुछ लोग एक बहुत ही दुबले पतले और रोगी मनुष्यको राजा भोजके पास पकड़कर लाये। जब राजाने उससे पूछा कि तुम्हारी यह दशा क्यों है, तो उसने उत्तर दिया कि बाल्यावस्थामें मैं आपका सहपाठी था। आपकी बुद्धिमत्ता और योग्यता आदिके कारण उस समय मैं आपसे ईर्ष्या करता था। इसके उपरान्त जब आपको सिंहासन मिला तब मेरी ईर्ष्या और भी बढ़ गई। जब मैं आपका इतना वैभव देखता हूँ तब मेरे शरीरमें आगसी लग जाती है। आपका दान और यश आदि देखकर मुझे और भी वेदना होती है। मुझे संसारमें कुछ भी अच्छा नहीं लगता। इसी कारण मेरी यह दुर्दशा हुई है। यह सुनकर राजाने उसे एक बहुत बढ़िया मकान रहनेके लिए दिया, उसकी सेवाके लिए सेवक रख दिये और उसे बहुतसा धन दिया। उसे बहुतसे हाथी घोड़े भी मिल गये और एक सुन्दरीसे उसका विवाह भी हो गया।

राजाने उससे यह भी कह दिया कि तुम कभी किसी प्रकारकी चिन्ता न करना और जिस चीजकी आवश्यकता हो मुझसे मँगा लेना। कुछ दिनोंके उपरान्त राजाने उसे बुलवाकर देखा तो उस समय भी उसकी दशा पहलेकी सी ही थी। इस बार राजाके कारण पूछनेपर उसने कहा कि और सब सुखसामग्री तो मेरे पास है, पर अधिकार नहीं है। राजाने उसे एक प्रतिष्ठित पदपर नियुक्त करके उसकी वह कामना भी पूरी कर दी। पर इससे भी उसकी दशा न बदली। अन्तमें जागीरें तक दी गई, पर वह ज्योंका त्यों रोगी और दुर्बल बना रहा। अंतमें उसने कहा कि मेरा हृदय उसी समय शान्त होगा जब मैं उज्जैनके सिंहासनपर बैठूँगा। राजाने समझ लिया कि इस ईर्ष्याके कारण यह अवश्य मर जायगा; इसकी रक्षाका अब और कोई उपाय नहीं है। और अन्तमें हुआ भी वही, वह मनुष्य ईर्ष्याके कारण कुढ़ कुढ़कर मर ही गया!

ईर्ष्यालु मनुष्य सदा दूसरोंकी प्रतिष्ठा या वैभव आदि नष्ट करनेके प्रयत्नमें ही लगा रहता है। वह दूसरोंकी प्रत्येक बातका बुरा ही अर्थ निकालता है और उनके कार्य्योंका अभिप्राय उसकी समझमें बुरा और दुष्ट ही होता है। जहाँतक हो सकता है वह दूसरोंका अपकार करनेका अवसर ढूँढ़ा करता है। ऐसा मनुष्य स्वयं कितना बुरा होता है और कितनी बुराई कर सकता है, उसके बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। इससे सदा बचना चाहिए। हाँ, इसका एक सात्विक रूप होता है जिसे स्पर्द्धा कहते हैं और जो बहुत ही श्रेष्ठ और लाभदायक होती है। अपने गुणों आदिका अपनेसे श्रेष्ठ किसी गुणीके गुणोंके साथ मिलान करना और अपने आपको उसके समान गुणी बनानेकी इच्छाका नाम ही स्पर्द्धा है। ईर्ष्याकी भाँति इसमें दूसरोंके गुणों या वैभव आदिके ह्रासका दुष्ट भाव मनमें नहीं होता, बल्कि साधु उपायोंसे उनके समकक्ष बननेकी सात्विक और प्रशंसनीय कामना होती है। इससे मनुष्यकी आत्मा उन्नत होती है और उसके गुणी और यशस्वी होनेमें उत्तेजना मिलती है। ऐसे मनुष्योंका लक्ष्य सदा महान् पुरुषोंपर ही रहता है और स्वयं उनके महान्

पुरुष बननेमें अधिक विलम्ब नहीं लगता। उनके उद्देश्य साधु और महत्त्वपूर्ण होते हैं और संसारमें उनके यशका अच्छा विस्तार होता है।

जिस प्रकार बड़ोंके साथ स्पर्द्धा करना उपयोगी और आवश्यक है, उसी प्रकार उनमें श्रद्धा और भक्ति रखना भी उपयोगी और आवश्यक है। श्रद्धा और कुछ नहीं दूसरेके अच्छे गुणोंकी स्वीकृति मात्र है। जो मनुष्य कोई ऐसा काम करता है जिससे मानव-जातिका कल्याण होता है, उसीके प्रति मनुष्यके मनमें श्रद्धा होती है। यदि हम किसी विद्वान्को स्वार्थत्यागपूर्वक लोगोंकी शिक्षामें दत्तचित्त देखें अथवा किसी धनवान्को दीन-दुखियोंके कष्ट दूर करते हुए देखें, तो हमारा परम कर्तव्य है कि हम उसके इन गुणोंको मुक्तकण्ठसे स्वीकार करें और हृदयसे उसकी प्रशंसा करें। ऐसा करनेसे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि हमारे हृदयसे मिथ्या अभिमान दूर होगा, निःस्वार्थ भावसे कार्य्य करनेकी ओर हमारी प्रवृत्ति होगी और साथ ही हममें नम्रता और विनयका संचार होगा। यह बात स्वतःसिद्ध है कि जो मनुष्य स्वार्थी, अभिमानी अथवा उद्दण्ड होगा, उसके मनमें श्रद्धा उत्पन्न ही न हो सकेगी। अतः प्रकारान्तरसे श्रद्धा इन दोषोंका नाश करती है। हमें अपने अन्तःकरणको इतना संकुचित और मलिन रखना ही न चाहिए कि वह दूसरोंके अच्छे कार्य्योंका मूल्य समझ ही न सके और गुण ग्रहण करनेके योग्य ही न रह जाय।

मनमें श्रद्धा-भाव उत्पन्न होनेके लिए मनुष्यमें विनय और नम्रताकी आवश्यकता होती है। इस विनय और नम्रताका उपयोग केवल गुण-ग्राहकतामें ही नहीं होता; बल्कि और भी अनेक सत्कृत्योंमें होता है। विनय या नम्रता एक ऐसी पालिश है जो सभी गुणोंपर बहुत अच्छी तरह चढ़ाई जा सकती है। जिस प्रकार टेबुल, कुरसी, तसबीर या गहनों आदिको तैयार करके उनपर पालिश करनेकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार धन, विद्या, बुद्धि, बल या अधिकार आदि प्राप्त कर लेने पर नम्र और विनयशील होनेकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता है। किसी मनुष्यके गुणोंका महत्त्व उस समय बहुत अधिक बढ़ जाता है, जब लोग

उसमें विनय या नम्रताकी मात्रा भी यथेष्ट पाते हैं। किसी उद्दण्ड दिग्गज पंडितके प्रति मनमें उतनी श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती, जितनी किसी नम्र, पर साधारण पढ़े लिखे, मनुष्यके प्रति होती है। उद्दण्ड मनुष्यसे लोग सदा भयभीत और सशंकित रहते हैं और बहुत ही आवश्यकता पड़ने पर उसके साथ व्यवहार या सम्बन्ध करते हैं। पर नम्र और विनयशील मनुष्यका साथ सब लोग सभी दशाओंमें करनेके लिए तैयार रहते हैं। इसके अतिरिक्त उद्दण्डता सदा हमारे ज्ञानार्जनमें बाधक होती है। उद्दण्डताके कारण मनुष्य कभी कभी अपनी भारी हानि कर बैठता है। मान लीजिए कि कोई विकट प्रसंग आ पड़ा और किसी भले आदमीने हमें कोई अच्छी युक्ति बतलाई। अब यदि हम उद्दण्ड हुए तो अवश्य ही उसकी सम्मतिकी अवहेला करेंगे जिसका फल हमारे लिए बहुत ही हानिकारक होगा। पर यदि हममें नम्रता होगी तो सहजमें ही उसकी बात मान लेंगे जिससे अनायास हमारा हित हो जायगा। गुण-ग्रहण और कार्य्य-साधन आदिके सम्बन्धमें भी यही बात समझनी चाहिए। नम्र मनुष्य अपेक्षाकृत बहुत ही थोड़े समयमें अच्छी अच्छी बातें सीख जाता है और बड़े बड़े काम कर लेता है। पर उद्दण्ड मनुष्य बहुधा विद्या और गुणों आदिसे कोरा ही रह जाता है और प्रायः कोई बड़ा काम करनेमें असमर्थ ही होता है।

प्रत्येक मनुष्यके लिए इस बातकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता है कि वह सदा संतुष्ट रहे और कभी निराश न हो। बहुतसे लोग ऐसे हुआ करते हैं जो अपनी वर्त्तमान अवस्थासे—चाहे वह कितनी ही अच्छी क्यों न हो—कभी संतुष्ट नहीं रहते और सदा ईश्वर, भाग्य और परिस्थिति आदिकी शिकायत करते रहते हैं। नैतिक दृष्टिसे ऐसे मनुष्य बिलकुल निकम्मे और प्रायः समाजके लिए बहुत ही हानिकारक प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार किसी कलमें वही पुरजा सबसे अधिक शब्द करता है जो सबसे ज्यादः खराब होता है, उसी प्रकार समाजमें वही मनुष्य सबसे अधिक शिकायत करता और असंतुष्ट रहता है—जो सबसे अधिक निकम्मा

होता है। असन्तोष हमें केवल अकर्मण्य ही नहीं बनाता बल्कि हमारे हृदयकी शान्तिमें भी बड़ा भारी बाधक होता है। जो मनुष्य अपनी वर्तमान निकृष्ट दशामें भी प्रसन्नतापूर्वक दिन बिता सकता है, वही उसे उत्कृष्ट बनानेमें भी समर्थ हो सकता है। और यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो मनुष्यकी सभी दशायें अपेक्षाकृत संतोषजनक ही हैं। इस अवसर पर हमें हजरत शेख सादीकी एक बात याद आ गई है। एक बार बहुत दिनों तक उन्हें पहननेके लिए जूता नहीं मिला। इससे एक दिन वे कुछ असन्तुष्ट हुए। थोड़ी देर बाद उन्हें एक ऐसा मनुष्य मिला जिसके दोनों पैर कटे हुए थे। उसकी दशा देखकर उन्होंने मनमें सोचा कि यदि मेरे पैरोंमें जूते नहीं हैं तो क्या चिन्ता है; ईश्वरकी कृपासे मेरे पैर तो सही सलामत हैं। तात्पर्य्य यह कि यदि हम कभी किसी प्रकार निकृष्ट अवस्थामें पहुँच जायँ, तो भी हमें कभी अधीर न होना चाहिए और जो लोग हमसे भी अधिक निकृष्ट दशामें हों उनका ध्यान करके सन्तुष्ट होना चाहिए। इससे हम व्यर्थकी चिन्ताओं और मानसिक कष्टोंसे बचे रहेंगे।

लेकिन हाँ, इस सन्तोषको हमें कभी अपने कर्त्तव्यपालनके काममें बाधक भी न होने देना चाहिए। नहीं तो हमपर–" आलसी गिरे कुएमें तो बोले हमें यहीं आराम है।" वाली कहावत चरितार्थ होगी। सन्तोषसे हमारा तात्पर्य्य केवल इतना ही है कि मनुष्य कभी व्यर्थकी चिन्तायें करके ही अपना अमूल्य समय नष्ट न करे और जिस अवस्थामें हो, उसमें प्रसन्नतापूर्वक रहे। केवल असन्तोष ही हमारी अवस्थाको कभी परिवर्त्तित नहीं कर सकता। हाँ, वह हमारे चित्तको दुःखी और क्षुब्ध अवश्य कर देगा।। बुरीसे अच्छा दशामें तो मनुष्य केवल कर्मण्यताकी सहायतासे ही जा सकता है; तब फिर क्यों न वह अपने चित्तको सन्तुष्ट होकर प्रसन्न रक्खे। असंतुष्ट होकर तो हम अपने लिए आनन्द और शान्तिका द्वार बिलकुल बंद ही कर लेते हैं। बीमार होनेपर बीमारीके लिए केवल रोना झींखना कभी उपकारी नहीं हो सकता; उससे बचनेके लिए योग्य उपायोंका अवलम्बन ही उपकारी होगा। सन्तोष और अस-

न्तोषमें भी यही अन्तर है। असन्तोषसे दूसरी बड़ी हानि यह होती है कि हमें अपनी दशा अपेक्षाकृत बुरी जान पड़ने लगती है और छोटी विपत्तियाँ या कठिनाईयाँ भी हमें बहुत बड़ी जान पड़ती हैं। असन्तुष्ट होकर हम मानों अपना दुःख आप ही बहुत बढ़ा लेते हैं। और बातोंके सम्बन्धमें तो यह असन्तोष उतना अधिक हानिकारक नहीं होता; पर धन-सम्बन्धी असन्तोष मनुष्यके लिए बहुत ही बुरा होता है। वह प्रायः मनुष्यको लोभी बना देता है और लोभी मनुष्य बहुधा विवेकहीन हो जाता है।

कुछ मनुष्योंका स्वभाव इतना दूषित होता है कि वे सदा निराश और फलतः दुखी ही रहते हैं। ऐसे लोगोंको जानना चाहिए कि निराश होना बड़ी भारी भूल और साथ ही अकर्म्मण्यता अथवा कायरताका चिह्न है। जो मनुष्य कर्मण्य, साहसी अथवा परिश्रमी होगा वह कभी निराश न होगा। इसके अतिरिक्त जो मनुष्य निराश होगा वह साथ ही निरुत्साह भी हो जायगा और उत्साहका भंग होना कार्य्यसिद्धि अथवा सफलतामें बड़ा भारी बाधक होता है। पर जिस मनुष्यके हृदयमें आशाका निवास होता है वह अपने उत्साह और साहसके बलपर आगे बढ़ता रहता है और अन्तमें सफल-मनोरथ होता है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो आशा ही बल है; निराश मनुष्यका हृदय तो टूट सा जाता है। आशा मनुष्यको विचारशील बनाती है और कार्य्यसिद्धिके अच्छे अच्छे मार्ग सुझाती है; पर निराश मनुष्यको भ्रममें डाल देती है और उससे अनेक भूलें करा देती है। मनुष्यके दूरदर्शी होनेमें भी आशासे ही विशेष सहायता मिलती है।

मनुष्यका आशावादी होना बड़े ही सौभाग्यकी बात है। आशाको ईश्वरकी सर्वोत्तम देन समझना चाहिए। अधिकांश मनुष्योंके हृदयमें अधिकांश अवसरोंपर आशाका ही निवास रहता है और इसीपर संसारके सारे काम होते हैं। जिन लोगोंके पास कुछ भी नहीं होता वे भी आशापर ही जीते हैं। दीन-दुःखियों और दरिद्रोंके लिए तो आशा

मानों ईश्वर ही होती है। संसारके जितने बड़े बड़े काम हैं वे सब आशापर ही होते है। पढ़ने, लिखने, धन कमाने, ब्याह शादी करने आदिके सब काम आशापर ही होते हैं। भविष्यमें लोगोंको सुख या लाभकी आशा होती है और उसी आशापर वे सब काम करते हैं। सारे परिश्रम और प्रयत्न आशा पर ही किये जाते हैं। सांसारिक कार्य्यका संचालन करनेवाली प्रधान शक्ति आशा ही है। यदि आशा न हो तो भविष्य नरक-तुल्य हो जाय। जिस आशाका इतना महत्त्व है उसे त्याग कर निराश होना बड़ी भारी मूर्खता और बहुतसे अंशोंमें अपने पैरोंमें आप कुल्हाड़ी मारनेके समान है।

आठवाँ प्रकरण।

ग्रन्थावलोकन और विद्याप्रेम।

[महत्त्व—उपयोग—साधनके मार्ग—शिक्षकों, मित्रों और संतान आदिके साथ पुस्तकोंकी तुलना—अच्छी पुस्तकोंका महत्त्व—अध्ययन किस प्रकार करना चाहिए—पढ़नेसे मानसिक शक्ति बढ़ती है—पढ़नेके लिए पुस्तकें कैसी होनी चाहिएँ—जीवनचरितोंका महत्त्व—इतिहासका अध्ययन—यूरोपियनोंसे मिलनेवाली शिक्षा ।]

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥—मनु ।

सदाचारी और सुशील बनने, सब प्रकारके दोषों और पापोंसे बचने, यथेष्ट यश और कीर्ति प्राप्त करने, प्रत्येक दशामें सन्तुष्ट और प्रसन्न रहने तथा इसी प्रकारकी सभी दूसरी अच्छी बातोंमें हमें जितनी अधिक सहायता ग्रन्थावलोकन और विद्याप्रेमसे मिल सकती है, उतनी कदाचित् ही किसी और कार्य्यसे मिल सकती हो । ग्रन्थावलोकन और विद्याप्रेमका महत्त्व तथा उनसे होनेवाले लाभ इतने सर्वमान्य और इतने अधिक हैं कि उनका उल्लेख करना एक प्रकार निरर्थक ही है और बहुत कुछ दुस्साध्य भी । लेकिन् भर्तृहरिने कहा है,—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं ।
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ॥
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता ।
विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः ॥

अतः यदि इस अवसरपर विद्याप्रेम और ग्रन्थावलोकनके सम्बन्धमें कुछ बातें न कही जायँगी तो यह पुस्तक बिलकुल अधूरी रह जायगी, क्योंकि विद्या ही मानव-जीवनका प्रधान अंग है और बिना उसके मनुष्य पूरा मनुष्य ही नहीं हो सकता ।

यदि हम किसी मनुष्यसे उसकी विद्या और उसका ज्ञान किसी प्रकार छीन लें और उसे मूर्ख तथा अज्ञान बना सकें तो फिर पशुओंकी कोटिमें ही वह रक्खा जा सकेगा; मनुष्य कोटिमें उसे स्थान न मिलेगा। यदि विद्या न हो तो मनुष्य अपनी इन्द्रियों और वासनाओंका दास हो जाय और उसका कोई पथ-प्रदर्शक या रक्षक न रह जाय। एक विद्वान्का मत है कि विद्याविहीन मनुष्य बालकोंकी तरह अज्ञान और राक्षसोंकी तरह पापी होता है। विद्या मनुष्यको बुद्धिमान बनाती है और सन्मार्ग दिखलाती है, तथा संसारकी सब बातें समझनेकी योग्यता प्रदान करती है। श्रेष्ठ जीवनका आरम्भ विद्यासे ही होता है। निर्बलोंके लिए विद्या शक्तिका काम देती और दरिद्रोंके लिए वह धनस्वरूप होती है। विद्यासे मनुष्यका ज्ञान बढ़ता है और वह ज्ञान सभी दशाओंमें उसके लिए परम उपयोगी और कल्याणकारी होता है। विना विद्याके मानव-जीवन सार्थक भी नहीं होता, क्योंकि जीवनका सच्चा सुख, वास्तविक आनन्द, विद्यासे ही प्राप्त होता है। जीवनका कर्त्तव्य और उद्देश्य भी विद्या ही बतलाती है और प्रकृतिकी जटिल समस्यायें भी वही समझाती है।

परन्तु और शक्तियोंकी तरह विद्या और शिक्षा आदिका भी आजकल बहुत दुरुपयोग हो रहा है और उसमें अनेक दोष आ गये हैं। जो विद्या मनुष्यको नीतिमान् न बना सके उसे वास्तवमें विद्या नहीं कहना चाहिए। विद्या अथवा शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसमें हमारे हृदयमें सद्भाव उत्पन्न हो सकें और जो हमें नीति-पथपर चला सके। यदि इन उद्देश्योंकी सिद्धि न हो सके तो यह न समझना चाहिए कि स्वयं विद्या या शिक्षा ही दूषित है, बल्कि यह समझना चाहिए कि उसकी प्रणाली ही दूषित है। यदि हृदयमें सद्भाव रखकर शिक्षा दी और ग्रहण की जाय तो उसका परिणाम सदा शुभ ही होगा। प्रसिद्ध विद्वान् बेकनने एक स्थलपर लिखा है—"मनुष्योंमें पढ़ने और ज्ञान प्राप्त करनेकी प्रवृत्ति या तो स्वाभाविक कुतूहलसे और सब बातोंका मर्म्म जाननेकी इच्छासे होती है और या मनोविनोद या कीर्त्ति आदिकी इच्छासे।

लेकिन मानव-जातिका कल्याण करनेके लिए और अपने विवेकका सदुपयोग करनेके उद्देश्यसे बहुत ही कम लोग विद्या अथवा ज्ञान प्राप्त करते हैं। मानों विद्या ईश्वरकी महिमा और संसारके कल्याणकारक साधनोंका भाण्डार नहीं है, बल्कि अशान्त और अन्वेषक आत्माके बैठनेका अड्डा है, चंचल मनके चढ़ने और उतरनेकी सीढ़ी है, अभिमानी मनके आराम करनेका बढ़िया कमरा है अथवा लाभ और विक्रय आदिके लिए कोई दूकान है।" बेकनके इस कथनसे यह बात सिद्ध होती है कि साधारणतः आजकल लोग विद्या और ज्ञान आदिका जो उपयोग करते हैं वह कभी यथार्थ और उचित नहीं है; बल्कि उसका यथार्थ उपयोग ईश्वरीय महिमाका ज्ञान प्राप्त करना और संसारका कल्याण करना है।

ज्ञान और विद्याका यथार्थ महत्त्व और उपयोग समझ चुकनेके उपरान्त यह जाननेका आवश्यकता होगी कि उनकी प्राप्तिके साधनके मार्ग कौन कौनसे हैं। प्रत्येक विषय या घटनाका भली भाँति निरीक्षण करनेसे हमारा ज्ञान बढ़ता है। संसारकी कोई घटना ऐसी तुच्छ नहीं है जिससे हम कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण न कर सकें। इसी प्रकार कोई मनुष्य भी ऐसा तुच्छ नहीं है जिसके जीवन-क्रमसे हम कोई बात न सीख सकें आवश्यकता केवल इसी बातकी है कि हम उससे शिक्षा अथवा भली बात ढूँढ़ निकालें। पर साधारणतः सब लोग ऐसा नहीं कर सकते। इस लिए प्राचीन ज्ञानियों तथा महात्माओंने एक साधन प्रस्तुत कर दिया है जिससे सब लोग सहजमें ज्ञान प्राप्त कर सकें। वह साधन है पुस्तक। समझदार, विद्वान् तथा अनुभवी लोग जिन बातोंको अच्छा समझते हैं उनका संग्रह करके ग्रन्थ तैयार कर देते हैं और उनमें अपनी सारी विद्या-बुद्धि भर देते हैं। प्रत्येक देश और जातिका साहित्य ऐसे ऐसे उत्तम ग्रन्थरत्नोंसे भरा पड़ा है, जिनमें हजारों वर्षोंके विद्वानों और महात्माओंके अच्छे अच्छे अनुभव और उपदेश भरे पड़े हैं और जिनमेंसे कुछका ही भली भाँति अध्ययन करके और उनके अनुसार आचरण करके मनुष्य अपना जीवन सार्थक कर सकता है।

ये ग्रन्थ हमारे लिए मित्रोंका भी काम देते हैं और गुरुओंका भी। एक अच्छी पुस्तक हमारे लिए एक बहुत अच्छे मित्रसे भी बढ़कर काम देती है। मित्रकी अपेक्षा उसमें बड़ी विशेषता यह है कि वह कभी हमसे अप्रसन्न या असन्तुष्ट नहीं होती और न कभी किसीसे हमारी निन्दा आदि करती है। मित्रके स्वभावमें अनेक प्रकारके परिवर्त्तनोंकी सम्भावना होती है, पर पुस्तक सदा ज्योंकी त्यों रहती है। यदि हमपर कभी कोई विपत्ति आ पड़े तो हमारे बहुतसे मित्र सम्भवतः हमारा साथ छोड़ देंगे, पर पुस्तक हमारा साथ कभी न छोड़ेगी। सदा और सब दशाओंमें वह हमें समान रूपसे उपदेश देगी; हमें कर्त्तव्य बतलायेगी और हमारा मनोविनोद करेगी। मित्र हमें विपत्तिमें डालकर अनुभव करा देंगे और पुस्तक हमें विपत्तिसे बचाकर अनुभवी बना देगी। मित्र हमें कुमार्गमें भी ले जा सकते हैं और हमारे आचरण तथा विचारोंको बिगाड़ भी सकते हैं, पर पुस्तकें सदा हमें सन्मार्ग ही दिखलावेंगी और हमारे आचरण तथा विचारोंको सुधारेंगी। अच्छे ग्रन्थोंमें हमें सदा अच्छे ही विचार मिलेंगे जो सदा हमारी आत्माको शुद्ध बनावेंगे और हमें पापोंसे बचावेंगे। प्रायः अच्छे अच्छे कार्य्य करनेके लिए भी वे हमें प्रेरित करेंगे। यदि सौभाग्य-वश हमारा कोई अच्छा मित्र मर गया तो उसके वियोगके कारण हमें बहुत अधिक दुःखी होना पड़ेगा और हम सदाके लिए उसके सदुपदेश और परामर्शोंसे वंचित हो जायँगे। पर ग्रन्थोंमें यह बात भी नहीं है। साधारणतः लोगोंका विश्वास है कि जो मनुष्य बहुत अच्छे और सदाचारी होते हैं उनकी मृत्यु भी बहुत शीघ्र होती है। पर ग्रन्थोंकी बात उलटी ही होती है। जो ग्रन्थ जितना ही अच्छा होता है, उसकी ... ही अधिक होती है। यहाँतक कि बहुत अच्छे अच्छे ... होते हैं और उनमेंके उत्तम विचारों तथा उपदेशोंका ... साहित्यके सम्बन्धमें यह नियम है कि ज्यों ज्यों त्यों रद्दी और निरर्थक पुस्तकें नष्ट होती रहती हैं। उन अच्छी पुस्तकोंके विचार ... उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

लेकिन मानव-जातिका कल्याण करनेके लिए और अपने विवेकका सदुपयोग करनेके उद्देश्यसे बहुत ही कम लोग विद्या अथवा ज्ञान प्राप्त करते हैं। मानों विद्या ईश्वरकी महिमा और संसारके कल्याणकारक साधनोंका भाण्डार नहीं है, बल्कि अशान्त और अन्वेषक आत्माके बैठनेका अड्डा है, चंचल मनके चढ़ने और उतरनेकी सीढ़ी है, अभिमानी मनके आराम करनेका बढ़िया कमरा है अथवा लाभ और विक्रय आदिके लिए कोई दूकान है।" बेकनके इस कथनसे यह बात सिद्ध होती है कि साधारणतः आजकल लोग विद्या और ज्ञान आदिका जो उपयोग करते हैं वह कभी यथार्थ और उचित नहीं है; बल्कि उसका यथार्थ उपयोग ईश्वरीय महिमाका ज्ञान प्राप्त करना और संसारका कल्याण करना है।

ज्ञान और विद्याका यथार्थ महत्त्व और उपयोग समझ चुकनेके उपरान्त यह जाननेका आवश्यकता होगी कि उनकी प्राप्तिके साधनके मार्ग कौन कौनसे हैं। प्रत्येक विषय या घटनाका भली भाँति निरीक्षण करनेसे हमारा ज्ञान बढ़ता है। संसारकी कोई घटना ऐसी तुच्छ नहीं है जिससे हम कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण न कर सकें। इसी प्रकार कोई मनुष्य भी ऐसा तुच्छ नहीं है जिसके जीवन-क्रमसे हम कोई बात न सीख सकें आवश्यकता केवल इसी बातकी है कि हम उससे शिक्षा अथवा भली बात ढूँढ़ निकालें। पर साधारणतः सब लोग ऐसा नहीं कर सकते। इस लिए प्राचीन ज्ञानियों तथा महात्माओंने एक साधन प्रस्तुत कर दिया है जिससे सब लोग सहजमें ज्ञान प्राप्त कर सकें। वह साधन है पुस्तक। समझदार, विद्वान् तथा अनुभवी लोग जिन बातोंको अच्छा समझते हैं उनका संग्रह करके ग्रन्थ तैयार कर देते हैं और उनमें अपनी सारी विद्या-बुद्धि भर देते हैं। प्रत्येक देश और जातिका साहित्य ऐसे ऐसे उत्तम ग्रन्थरत्नोंसे भरा पड़ा है, जिनमें हजारों वर्षोंके विद्वानों और महात्माओंके अच्छे अच्छे अनुभव और उपदेश भरे पड़े हैं और जिनमेंसे कुछका ही भली भाँति अध्ययन करके और उनके अनुसार आचरण करके मनुष्य अपना जीवन सार्थक कर सकता है।

ये ग्रन्थ हमारे लिए मित्रोंका भी काम देते हैं और गुरुओंका भी । एक अच्छी पुस्तक हमारे लिए एक बहुत अच्छे मित्रसे भी बढ़कर काम देती है । मित्रकी अपेक्षा उसमें बड़ी विशेषता यह है कि वह कभी हमसे अप्रसन्न या असन्तुष्ट नहीं होती और न कभी किसीसे हमारी निन्दा आदि करती है । मित्रके स्वभावमें अनेक प्रकारके परिवर्त्तनोंकी सम्भावना होती है, पर पुस्तक सदा ज्योंकी त्यों रहती है । यदि हमपर कभी कोई विपत्ति आ पड़े तो हमारे बहुतसे मित्र सम्भवतः हमारा साथ छोड़ देंगे, पर पुस्तक हमारा साथ कभी न छोड़ेगी । सदा और सब दशाओंमें वह हमें समान रूपसे उपदेश देगी; हमें कर्त्तव्य बतलायेगी और हमारा मनोविनोद करेगी । मित्र हमें विपत्तिमें डालकर अनुभव करा देंगे और पुस्तक हमें विपत्तिसे बचाकर अनुभवी बना देगी । मित्र हमें कुमार्गमें भी ले जा सकते हैं और हमारे आचरण तथा विचारोंको बिगाड़ भी सकते हैं, पर पुस्तकें सदा हमें सन्मार्ग ही दिखलावेंगी और हमारे आचरण तथा विचारोंको सुधारेंगी । अच्छे ग्रन्थोंमें हमें सदा अच्छे ही विचार मिलेंगे जो सदा हमारी आत्माको शुद्ध बनावेंगे और हमें पापोंसे बचावेंगे । प्रायः अच्छे अच्छे कार्य्य करनेके लिए भी वे हमें प्रेरित करेंगे । यदि सौभाग्यवश हमारा कोई अच्छा मित्र मर गया तो उसके वियोगके कारण हमें बहुत अधिक दुःखी होना पड़ेगा और हम सदाके लिए उसके सदुपदेश और परामर्शोंसे वंचित हो जायँगे । पर ग्रन्थोंमें यह बात भी नहीं है । साधारणतः लोगोंका विश्वास है कि जो मनुष्य बहुत अच्छे और सदाचारी होते हैं उनकी मृत्यु भी बहुत शीघ्र होती है । पर ग्रन्थोंकी बात इससे उलटी ही होती है । जो ग्रन्थ जितना ही अच्छा होता है, उसकी आयु भी उतनी ही अधिक होती है । यहाँतक कि बहुत अच्छे अच्छे ग्रन्थ प्रायः अमर होते हैं और उनमेंके उत्तम विचारों तथा उपदेशोंका कभी नाश नहीं होता । साहित्यके सम्बन्धमें यह नियम है कि ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों त्यों रद्दी और निरर्थक पुस्तकें नष्ट होती जाती हैं और अच्छी पुस्तकें बच रहती हैं । उन अच्छी पुस्तकोंके विचार सदा ज्योंके त्यों बने रहते हैं, समय उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता ।

ग्रन्थ सदा हमारे सामने उत्तम विचार और उत्तम आदर्श उपस्थित करते हैं। अच्छे ग्रन्थोंके अध्ययनसे असंख्य लोगोंका अनन्त उपकार हुआ है। रामायणका पाठ करके न जाने कितने लोगोंने रामचन्द्रकी तरह सदाचारी और धर्मपरायण बननेका प्रयत्न किया होगा और रावणकी तरह कुमार्गी होनेसे न जाने कितने लोग बच गये होंगे। गीताके पाठने अब तक लाखों करोड़ों मनुष्योंको कुमार्गसे बचाकर सन्मार्गमें लगाया होगा। अब तक करोड़ों मनुष्योंने महाभारतका पाठ किया होगा और उनमेंसे अधिकांशने अच्छी तरह समझ लिया होगा कि दुष्ट चाहे कितने ही बलवान् क्यों न हों, पर अन्तमें विजय सदा पूर्ण सदाचारी और सत्यनिष्ठ मनुष्यकी ही होती है। इसी प्रकार अन्यान्य उत्तम ग्रन्थोंके विषयमें भी समझ लीजिए।

अच्छे ग्रन्थ हमें अच्छी बातें भी बतलाते हैं और हमें अच्छे मनुष्योंके दर्शन भी कराते हैं। संसारमें ग्रन्थ ही एक ऐसा साधन है जो हमें अब-तकके सभी महापुरुषोंके समीप पहुँचा सकता है। वे हमें प्राचीन आर्य्य महर्षियोंके सद्वचन सुनाते और उनके सत्कार्य्योंका ज्ञान प्राप्त कराते हैं। त्रिपिटक हमें महात्मा बुद्धदेवके सदुपदेश सुनाते हैं, बाइबिल हमें महात्मा ईसाके उपदेश सुनाती है और कुरानमें हमें मुहम्मदके वचन मिलते हैं। ग्रन्थ मानों हमें अपने रचयिता महात्माओंके सामने उपस्थित कर देते हैं और उनके वाक्य हमें तद्वत् सुनाते हैं। ग्रन्थोंके द्वारा हम उनके विचार और अनुभवको सहजमें अपना कर सकते हैं। बहुत प्राचीन कालसे लेकर अबतककी सभी विद्या-बुद्धि और सभी अनुभव एक मात्र ग्रन्थोंमें ही एकत्र हैं। एक विद्वान्का मत है—"व्यक्तिके लिए जो काम उसकी स्मरणशक्ति देती है, मानवजातिके लिए वही काम पुस्तकें देती हैं। उनमें हमारी जातिका प्राचीन इतिहास भरा होता है, हमारे आविष्कारोंका उल्लेख होता है और युगोंके अनुभव और ज्ञानका संग्रह होता है। वे हमारे सामने प्रकृतिके सौन्दर्यका चित्र खींचकर रख देती हैं, दुःख और कष्टके समय हमें सान्त्वना देती हैं, हमारे खेद दूर करके हमें प्रसन्न

करती हैं और हमारा हृदय ऐसे सुन्दर विचारोंसे भर देती हैं जो हमें अपनी अवस्थासे ऊपर उठाकर बहुत उन्नत कर देते हैं।"

एक दूसरे अँगरेज विद्वान् पादरी रिचार्ड डी बरीका मत है—"ग्रन्थ हमारे ऐसे शिक्षक हैं जो हमें बिना मारे पीटे, बिना बिगड़े या क्रोध किये और वस्त्र या धन लिये हमें शिक्षा देते हैं। आप जब चाहे तब उनके पास जायँ वे कभी सोते हुए न मिलेंगे। यदि आप उनसे कोई बात पूछेंगे तो वे कभी कुछ न छिपायेंगे। यदि आप कोई भूल करेंगे तो वे कभी कुड़बुड़ायेंगे भी नहीं। यदि आप कुछ न जानते होंगे तो वे कभी आपपर न हँसेंगे। अतः पुस्तकोंसे बढ़कर बहुमूल्य पदार्थ संसारमें और कोई है ही नहीं और संसारका कोई वांछित पदार्थ उसका मुकाबला नहीं कर सकता। जो मनुष्य अपने आपको सत्य, आनन्द, ज्ञान, विज्ञान और यहाँतक कि धर्मका कट्टर अनुयायी और प्रेमी समझता हो उसे पुस्तकोंका प्रेमी अवश्य होना चाहिए।" प्रसिद्ध अँगरेज विद्वान् मेकाले बहुत बड़ा अमीर था और समाजमें उसकी बहुत प्रतिष्ठा थी। उसने अपने आत्म-चरितमें लिखा है कि उसे सबसे अधिक आनन्द पुस्तकावलोकनमें ही मिलता था। एक पत्रमें उसने एक वार लिखा था—"यदि कोई मुझे बहुत बड़ा बादशाह बनाकर मुझे रहनेके लिए अच्छे अच्छे महल और बाग दे, सुन्दर भोजनों, अच्छे वस्त्रों और बहुतसे नौकरों चाकरोंकी व्यवस्था कर दे, लेकिन यह कह दे कि तुम किताबें न पढ़ा करो तो मैं कभी बादशाह बनना स्वीकार न करूँगा। मैं बहुतसी किताबें लेकर गरीबोंकी तरह झोपड़ीमें रहना पसन्द करता हूँ, पर ऐसा बादशाह बनना पसन्द नहीं करता जिसे पुस्तकोंसे प्रेम न हो।"

जिस प्रकार पढ़नेवालोंके लिए ग्रन्थ मित्र और शिक्षकका काम देते हैं उसी प्रकार लिखनेवालोंके लिए वे सन्तानका काम देते हैं और उनकी कीर्ति सदा अजर तथा अमर रखते हैं। जिस प्रकार पढ़नेवालोंके लिए ग्रन्थोंमें मित्रों और शिक्षकोंकी अपेक्षा अनेक विशेषतायें हैं, उसी प्रकार

लिखनेवालोंके लिए ग्रन्थोंमें सन्तानकी अपेक्षा कहीं अधिक विशेषतायें हैं । यदि हम अपनी सन्तानकी सुशिक्षाके लिए बहुत अधिक प्रयत्न करें तो भी निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकते कि उसके द्वारा कभी कोई ऐसा काम नहीं होगा जिससे हमारी कीर्तिमें बट्टा लगे । पर ग्रन्थोंमें यह बात नहीं है । ग्रन्थको अच्छा बनानेमें हम जितना अधिक प्रयत्न करेंगे उसके द्वारा हमारी कीर्ति भी उतनी ही निश्चयात्मक होगी । सन्तानसे नाम दो ही चार पुश्त चलता है, पर ग्रन्थ हमारे नामको सैकड़ों और हजारों वर्षोंतक बनाये रख सकते हैं । व्यास, शंकराचार्य्य, वाल्मीकि, गौतम, जैमिनि, पाणिनि और कालिदास आदि सत्पुरुषोंकी कीर्ति उनके ग्रन्थोंके कारण ही संसारमें अमर हुई है; सन्तानके कारण नहीं । और अब संसारसे उनका नाम मिटनेकी कोई सम्भावना भी नहीं है । महाभारत या रामायणका जिक्र छिड़ते ही व्यास और वाल्मीकिका स्मरण आ जाता है । न्याय और मीमांसा आदिका प्रसंग छिड़ते ही गौतम, जैमिनि और शंकराचार्य्यका ध्यान आ जाता है । पाणिनिके विषयमें तो यह जान पड़ता है कि वे आज भी समस्त संसारको 'वृद्धिरादैच्' आदि सूत्रोंका पाठ सुना रहे हैं । शकुन्तला, रघुवंश और मेघदूत आदि काव्योंने अभीतक कालिदासका नाम विस्मृत नहीं होने दिया । मराठी साहित्यमें ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास, वामन, मोरोपंत और श्रीधर आदि ग्रन्थकारोंने, गुजरातीमें नरसीमेहता और प्रेमानन्दने और हिन्दीमें सूर तथा तुलसी आदिने जैसी कीर्ति अपनी पुस्तकोंके कारण पाई है, कदाचित् अच्छी सन्तानके कारण उसका शतांश यश भी उन्हें न मिलता ।

जिन पुस्तकोंका इतना महत्त्व है उनके पढ़नेके सम्बन्धमें भी कुछ बातोंका जानना आवश्यक है । सबसे पहली बात तो यह है कि मनुष्य जो कुछ पढ़े वह खूब सोच विचारकर और शान्त-चित्त होकर पढ़े । एक विद्वानका मत है कि अध्ययनका कार्य्य मनो-विनोदके रूपमें नहीं बल्कि कर्त्तव्यके रूपमें होना चाहिए । जिस प्रकार हम अपने कर्त्तव्योंका पालन दत्तचित्त होकर करते हैं ठीक उसी प्रकार खूब जी लगाकर हमें पढ़ना

भी चाहिए। केवल मनोविनोदके लिए रद्दी और रुचि बिगाड़नेवाले उपन्यासों और किस्से कहानियोंकी पुस्तकें पढ़नेसे न पढ़ना ही अच्छा है। सदा उत्तमोत्तम विषयोंके ग्रन्थ--जीवनचरित, इतिहास, निबन्ध, और नीति तथा विज्ञानके भिन्न भिन्न अंगोंके सम्बन्धके ग्रन्थ---पढ़ने चाहिए; और उनमेंके अच्छे विचारोंपर मनन करना चाहिए। हम जो कुछ पढ़ें उसका सर्वोत्तम अंश हमें सदा स्मरण रखना चाहिए, जिसमें समय पड़नेपर हम उससे काम ले सकें। अच्छे अच्छे उपदेशोंका स्मरण रखकर हम आपत्ति या दुःखके समय स्वयं अपने आपको तथा दूसरोंको धैर्य्य तथा सान्त्वना दे सकते हैं। ऐसे वचनोंकी सहायतासे हम समय पड़नेपर स्वयं भी कुमार्गसे बच सकते हैं और दूसरोंको भी बचा सकते हैं। विज्ञान आदिके सम्बन्धकी अच्छी अच्छी बातें स्मरण रखकर समयपर स्वयं बहुत कुछ लाभ उठाया जा सकता है और दूसरोंका भी उपकार किया जा सकता है। सन्ध्या समय चार आदमियोंमें बैठकर उन स्मरण की हुई बातोंके द्वारा हम पवित्र मनोविनोद भी कर सकते हैं। ग्रन्थोंमें दी हुई बातोंको ध्यानमें रखनेका अभ्यास करनेसे हम अपनी स्मरणशक्ति भी बढ़ा सकते हैं। इसके अतिरिक्त स्मरण रक्खी हुई बातोंसे और भी अनेक प्रकारके लाभ उठाये जा सकते हैं।

यदि हम बहुत अधिक स्मरण न रख सकें तो भी केवल पढ़नेसे ही हमारा बहुत कुछ लाभ हो सकता है। जिन लोगोंको किसी प्रकारका दुर्व्यसन लग गया हो उन्हें यदि किसी प्रकार पढ़नेका चसका लगा दिया जाय तो वे उस दुर्व्यसनसे बच जायँगे और कुमार्गसे हटकर सुमार्गमें लग जायँगे। यदि वे कोई नीति-विरुद्ध आचरण करते होंगे तो बहुत सम्भव है कि उसे भी छोड़ देंगे। शारीरिक परिश्रम करनेवाले यदि फ़ुरसतके समय पुस्तकें पढ़ने लगें तो उनकी बहुत कुछ थकावट दूर हो जायगी। यह एक अनुभवसिद्ध बात है कि यदि शारीरिक परिश्रम करनेके कारण मनुष्य बहुत अधिक थक गया हो तो थोड़ी देर तक जरा ज़ोर जोरसे कोई पुस्तक पढ़े; उसकी थकावट दूर हो जायगी। दिन रात

बही खाता लेकर बैठे रहनेवाले और सूद व्याज फैलानेवाले महाजन और मुनीम आदि यदि सन्ध्याके समय रामायण या महाभारतका पाठ करने लग जायँ, तो उनका दिमाग बहुत ही थोड़ी देरमें ठिकाने आ सकता है।

जिस प्रकार हमारे शरीरको भोजन और व्यायामकी आवश्यकता है, ठीक उसी प्रकार हमारे मस्तिष्कको भी है। अध्ययन हमारे मस्तिष्कका भोजन है और मनन या विचार उसका व्यायाम। जिस प्रकार हम अपने शरीरको ठीक दशामें रखनेके लिए नियमित रूपसे भोजन और व्यायाम करते हैं उसी प्रकार अपने मस्तिष्कको भी ठीक अवस्थामें रखनेके लिए हमें नियमित रूपसे अध्ययन और मनन करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्यको अपने सुभीतेके अनुसार नित्य पढ़नेके लिए कुछ समय नियत कर लेना चाहिए। पढ़नेके लिए या तो प्रातःकालका समय और या रातको सोनेसे पहलेका समय बहुत अच्छा होता है। इसमें प्रातःकालका समय सबसे अच्छा है, क्योंकि उस समय चित्त खूब शान्त रहता है। उस समय हम जो कुछ पढ़ेंगे उसपर विचार भी बहुत अच्छी तरह कर सकेंगे। रातको सोनेसे पहले यदि कुछ पढ़ा जाय तो शरीरकी थकावट भी उतर जाती है और रातको नींद भी अच्छी तरह आती है। तो भी पढ़नेके लिए हम जो समय नियत कर लें उस समय हम नियमित रूपसे अवश्य पढ़ें। यह पहले ही कहा जा चुका है कि जो कुछ हम पढ़ें वह खूब सोच समझकर पढ़ें और लेखकके विचारोंको अच्छी तरह समझते चलें। पढ़नेके समय हरएक बातपर अच्छी तरह विचार करना और मननपूर्वक उसकी उपयोगिताका विचार कर लेना बहुत ही लाभदायक और आवश्यक है। सरसरी तौरपर सौ दो सौ पुस्तकें पढ़ जानेकी अपेक्षा इस प्रकार विचारपूर्वक पढ़ी हुई दो चार पुस्तकें ही कहीं अधिक और अच्छा काम देती हैं। आजकल आपको अनेक युवक ऐसे मिलेंगे जो हरएक पुस्तकका नाम सुनकर कह बैठेंगे कि हाँ, हमने वह पुस्तक पढ़ी है; और वास्तवमें उन्होंने उसे पढ़ा भी अवश्य होगा। पर यदि कोई उनसे पूछे कि उस पुस्तकमें क्या है तो वे चट कह बैठेंगे

कि यह तो हमें स्मरण नहीं। उनमेंसे बहुतसे तो ऐसे धृष्ट भी निकलेंगे जो यहाँतक कहनेमें संकोच न करेंगे कि हमने हजारों पुस्तकें पढ़ी हैं, सबके विषय कहाँतक याद रक्खें ? कोई पूछे, ऐसी पढ़ाईसे लाभ ही क्या ? ऐसा पढ़ना और न पढ़ना दोनों बराबर हैं। जिस प्रकार किसी देशकी वास्तविक दशाका पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त करने, वहाँकी प्राकृतिक शोभायें आदि देखने और वहाँकी रीति-नीति आदिसे भली भाँति परिचित होनेके लिए केवल डाकगाड़ीपर सवार होकर उस देशके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक चला जाना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि सब स्थानों-पर दो दो चार दिन ठहरने, खूब घूमने फिरने, वहाँके निवासियोंसे मिलने जुलने तथा सब बातोंका भली भाँति निरीक्षण करनेकी आवश्यकता है, उसी प्रकार किसी पुस्तककी अच्छी बातोंकी जानकारी प्राप्त करनेके लिए सरसरी तौर पर आदिसे अन्ततक उसे एक बार पढ़ जाना ही आवश्यक नहीं है; बल्कि उसके प्रत्येक वाक्यपर भली भाँति विचार करना बहुत ही आवश्यक है। ज्ञानकी वृद्धि इसी प्रकार हो सकती है— पढ़नेका उद्देश्य इसी प्रकार सिद्ध हो सकता है। प्राचीन कालमें छापेकी कलाका आविष्कार नहीं हुआ था; उस समय न तो पुस्तकोंकी इतनी अधिक भरमार ही थी और न पुस्तकें आजकलकी तरह सहजमें मिल ही सकती थीं। उस समय लोग पुस्तकोंकी कमीके कारण ही जो पुस्तकें पाते थे, बहुत अच्छी तरह उनका अध्ययन करते थे; और इसी लिए वे जिस विषयका अध्ययन करते थे उसके प्रायः पूर्ण पण्डित होते थे। पर आजकलका पाण्डित्य तो केवल पुस्तकालयोंका है। जिसके पास जितना बड़ा पुस्तकालय है वह उतना ही बड़ा पंडित समझा जाता है। पर वास्तवमें ऐसा नहीं होना चाहिए। आजकल प्रत्येक विषयपर बहुतसी अच्छी अच्छी पुस्तकें और वह भी थोड़े दामपर मिलती हैं। ऐसी दशामें हमें उनकी सुलभताका सदुपयोग करना चाहिए, न कि दुरुपयोग। अच्छी पुस्तकोंका संग्रह करके खूब ध्यानसे उनका अध्ययन करना चाहिए और उनके विषयको भली भाँति हृदयङ्गम कर लेना चाहिए।

ज्ञान प्राप्त करनेका उचित उपाय यही है। नहीं तो अध्ययनका उद्देश्य ही सिद्ध न होगा।

यों तो धर्म्म, नीति और विज्ञान आदि सभी विषयोंकी पुस्तकें मनुष्यके लिए बहुत उपयोगी होती हैं और उत्तम श्रेणीके उपन्यासों, नाटकों और काव्यों आदिसे मनुष्योंको बहुत शिक्षा मिलती है; पर कुछ विद्वानोंका मत है कि सबसे अधिक उपादेय महान् पुरुषोंके जीवनचरित होते हैं, क्योंकि मनुष्यके सदाचारी बननेमें सबसे अधिक सहायता उन्हींसे मिलती है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि ध्यानपूर्वक मनुष्य किसी बड़े आदमीकी जीवनी पढ़े और उसके कार्य्यों, व्यवहारों तथा भोगे हुए दुःखों आदिपर भली भाँति विचार करे तो उसका बहुत कुछ लाभ हो सकता है। इसी लिए बहुत प्राचीन कालसे बराबर सब देशों और सब साहित्योंमें अच्छे अच्छे जीवनचरित लिखनेकी प्रथा है। भिन्न भिन्न देशों और साहित्योंमें उसके लिखनेकी प्रणाली भले ही एक दूसरेसे भिन्न हो, पर किसी न किसी रूपमें सब देशों और सब साहित्योंमें उसका अस्तित्व अवश्य है। नाटकों और उपन्यासों आदिकी गणना भी जीवनचरितमें ही होनी चाहिए, क्योंकि उनका उद्देश्य भी मनुष्योंके चरित्र ही दिखलाना है। लेकिन उनका अधिकांश कल्पित होता है, इस लिए सच्ची जीवनियोंके सामने उनका उतना महत्त्व या मूल्य नहीं है। इतिहासकी गणना भी एक प्रकारसे जीवनचरितमें ही होनी चाहिए, क्योंकि वह भी बहुतसे लोगोंको जीवनचरितोंका समूह ही होता है। इसके अतिरिक्त इतिहासोंमें यह भी दिखलाया जाता है कि महान् पुरुषोंके कार्यों और विचारोंका उनके देश या राष्ट्रपर कैसा प्रभाव पड़ा। जीवनचरित पढ़नेसे यह मालूम होता है कि संसारमें भिन्न भिन्न प्रसंगोंपर मनुष्यको किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए और इतिहास पढ़नेसे यह मालूम होता है कि देश या राष्ट्रके लिए जब कोई विकट प्रसंग आ पड़े तब क्या करना चाहिए। महाराणा प्रताप, महाराज शिवाजी और गुरु गोविन्दसिंहके जीवनचरितों और उनके समयके इतिहासोंको राजनीतिका

बड़ा भारी शिक्षक समझना चाहिए। उनके देखनेसे पता लगता है कि जिस समय देशपर विपत्ति आवे उस समय उसके निवारणके कौन कौनसे और कैसे कैसे उपाय करने चाहिए। पृथ्वीराज, संभाजी, बाजीराव, और वाजिद्अली शाह आदिकी जीवनियाँ और उनके समयके इतिहास देखनेसे यह शिक्षा मिलती है कि जो मनुष्य अपने कर्त्तव्योंका पालन नहीं करता और विषयवासनाओंमें फँसा रहता है उसकी सम्पत्ति चाहे कितनी ही विपुल और प्रतिष्ठा चाहे कितनी ही अधिक क्यों न हो, बहुत ही थोड़े समयमें और अवश्य नष्ट हो जाती है। साथ ही यह भी शिक्षा मिलती है कि जो लोग ऐसे अवसरोंपर परिश्रम और प्रयत्न करते हैं वे अपना बहुत कुछ लाभ भी कर लेते हैं। आजकलके यूरोपीय सभ्य देशोंका इतिहास मानों अन्य देशोंसे कहता है कि कीर्ति, वैभव और अधिकार प्राप्त करनेके लिए प्रत्येक मनुष्यको विद्या और ज्ञान सम्पादन करनेकी आवश्यकता है।

ग्रन्थावलोकन और विशेषतः इतिहासके अध्ययनमें हमें यूरोपियनोंसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। उनका अधिकांश वैभव और कीर्ति उनके विद्या-प्रेमके कारण ही है और अपना काम निकालनेमें इसी गुणसे उन्हें सबसे अधिक सहायता मिलती है। स्वार्थसाधनमें यूरोपियन जैसे दक्ष होते हैं वैसे और लोग नहीं होते। साथ ही वे परिश्रम भी खूब करते हैं। कार्य्य कितना ही कठिन और दुःसाध्य क्यों न हो, पर जबतक वे उसे पूरा नहीं कर लेते तबतक साँस नहीं लेते। अच्छी और बुरी सभी बातोंका वे पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त करते हैं। दूसरे देशोंपर अधिकार करके वे ऐशोआराममें नहीं फँस जाते; बल्कि विजित देशोंके निवासियोंके धर्म, व्यवहार, नीति, आचार और यहाँतक कि स्वभाव आदिका पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त करने लगते हैं; और यही ज्ञान उनके अधिकारको स्थायी बनानेमें बहुत कुछ सहायक होता है। ग्रीक और रोमन लोगोंके प्राचीन इतिहास पढ़कर वे इस बातका भी पता लगाते हैं कि किस देशसे उनका अधिकार क्यों और कैसे उठा; और जहाँतक हो

सकता है वे उनकी भूलें ढूँढ़कर भविष्यमें उनसे बचनेका प्रयत्न करते हैं। यूरोपियन लोग तो विजित देशके लोगोंका इतिहास जाननेके लिए इतना श्रम करते हैं और एक हम एशियावासी लोग हैं जो अपने विजेताओंका भी इतिहास जाननेकी आवश्यकता नहीं समझते। जिस प्रकार यूरोपियनोंने यहाँवालोंके आचार-विचार और रहन-सहन आदिका ज्ञान प्राप्त करके अपना काम निकाला है, यदि उसी प्रकार हम लोग भी उनके आचार-विचार और इतिहास आदिका परिचय प्राप्त करते तो हमारा अनन्त उपकार होता। अन्य देशोंमें जहाँ कोई सुधार होता है अथवा कोई अच्छी बात निकलती है, वे तुरन्त अपने देशमें उसकी परीक्षा और प्रचार आरम्भ कर देते हैं। उनमेंसे कोई कभी किसीसे पीछे रहना पसन्द नहीं करता। इससे दो लाभ होते हैं। एक तो प्रतिद्वन्द्विताके कारण अच्छी बातोंकी बहुत शीघ्र और यथेष्ट वृद्धि होती है और दूसरे कोई किसीको हानि नहीं पहुँचा सकता। जो देश उन्नतिके मार्गमें पीछे रह जाते हैं, उनसे वे लाभ उठानेका प्रयत्न करते हैं। जो चीज अपनी ही हो उसके बचाए रखनेके लिए भी शक्तिकी आवश्यकता होती है; और आजकल यह शक्ति विना विद्या और कला आदिके प्राप्त नहीं हो सकती। यूरोपमें ज्ञान प्राप्त करनेका मार्ग जितना सुलभ है उतना सुगम हमारे देशमें नहीं है; पर हमें प्रयत्न करके उसे सुगम बना लेना चाहिए।

नवाँ प्रकरण।

धन।

[धनका महत्त्व—धन क्यों और कितना संग्रह करना चाहिए—धनकी संघर्ष—धनके विषयमें दो मत—मीमांसा—धनका उपयोग—धनवानोंका समाजमें आदर—बेईमानीसे धन संग्रह करनेवाले लोग—धनका व्यय—आयसे व्यय सदा कम होना चाहिए—अपव्ययके मार्ग—शौकीनी और तड़क-भड़क—हैसियतसे बढ़कर खर्च करना—पश्चिमी सभ्यता और अपव्यय—कृपणताके दोष—किफायत और कंजूसीका अंतर—लेन-देनमें खरापन—धनकी पात्रता—धनवानको अभिमान न करना चाहिए—धनसे परोपकार करना चाहिए।]

मनुष्यके जीवनका धनके साथ बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है और ज्यों ज्यों सभ्यता, जन-संख्या और प्रतिद्वन्द्वता आदि बातें बढ़ती जाती हैं त्यों त्यों यह सम्बध भी घनिष्ठतर होता जाता है । संसारमें ऐसे मनुष्य तो बहुत मिल जायँगे जो कुछ भी पढ़े लिखे न होंगे, पर ऐसे लोग बहुत ही कम मिलेंगे जो जीविकाके लिए धन न कमाते हों। इसके अतिरिक्त आजकल यह भी देखा जाता है कि मनुष्यके चरित्र आदिपर द्रव्यका बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है; और लोकोपकार आदि-तकके बहुतसे कार्य द्रव्यकी सहायतासे ही बहुत उत्तमतापूर्वक तथा शीघ्र हो जाते हैं; अतः इसके संबंधमें भी यहाँ कुछ विचार प्रकट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है।

धनके सम्बन्धमें कुछ लोगोंका यह मत है कि उसका संग्रह—और विशेषतः बहुत अथवा व्यर्थ संग्रह—नहीं करना चाहिए। वे कहते हैं कि धन एक जंजाल है; उससे मनुष्यकी चिन्ता बढ़ती है, वह लालची हो जाता है और उससे इतना अधिक सुख नहीं मिलता जितने सुखकी लोग उससे आशा रखते हैं । अवश्य ही धन कमानेमें भी बहुत कष्ट उठाना पड़ता है और उसे संग्रह करके रखनेमें भी । लोग धन कमानेके लिए दिनरात घोर परिश्रम करते हैं, दिनको दिन और रातको रात नहीं

समझते और उसे संचित करने तथा बढ़ानेके लिए तरह तरहके शारीरिक कष्ट भोगते हैं। उनका सारा जीवन धनकी चिन्तामें ही बीतता है; जहाँ उनका धन रहता है वहाँ उनका जी भी टँगा रहता है। जिस धनको लोग प्रत्यक्ष ईश्वरतक समझते हैं, अनेक अवसरोंपर वही धन उनकी चिन्ता और मानसिक अथवा शारीरिक वेदना लेशमात्र भी कम नहीं कर सकता। बहुतसे लोग धन पाकर दुराचारी हो जाते हैं और बहुतसे लोग अनेक प्रकारके अन्याय और अत्याचार करने लग जाते हैं। बहुतसे लखपती और करोड़पती जिन्हें लोग धनका 'स्वामी' समझते हैं, वास्तवमें धनके 'दास' होते हैं। कभी कभी यही धन उनके जीका जंजाल और उनकी जानका गाहक हो जाता है। धनके नष्ट हो जानेपर मनुष्यकी चिन्ता और भी बढ़ जाती है। प्रायः ऐसे अवसरोंपर लोगोंको असह्य मानसिक वेदना होती है और कभी कभी उनके प्राणतक निकल जाते हैं। इत्यादि इत्यादि अनेक प्रकारके दोष धनमें बतलाये जाते हैं। इसी लिए कहा भी है—

जनयन्त्यर्जने दुःखं तापयन्ति विपत्तिषु।
मोहयन्ति समृद्धौ च कथमर्था सुखावहाः॥ —सुभाषित।

इसके विपरीत बहुतसे लोगोंका यह विश्वास है कि संसारके सब पदार्थोंमें धन ही श्रेष्ठ है और एक मात्र उसीका संग्रह मनुष्यको अभीष्ट होना चाहिए। 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति' के अनुसार वही सब प्रकारके गुणोंका आश्रयदाता है और उसके सामने संसारके समस्त गुण, सारी अच्छी बातें तुच्छ हैं। एक फारसी कहावतके अनुसार धन चाहे ईश्वर न हो, पर उसमें ईश्वरके सब गुण अवश्य हैं *। अतः हमें उसके उपार्जनके लिए प्राणतक दे देनेमें संकोच न करना चाहिए। इत्यादि इत्यादि।

---

* "ऐ ज़र तू ख़ुदा नई वले बख़ुदा सत्तार अयूब व काज़ी-उल-हाजाती॥" अर्थात् हे धन, तू ईश्वर तो नहीं है, पर मैं ईश्वरकी सौगंद खाकर कहता हूँ कि सब दोषोंको छिपानेवाला और सब आवश्यकताओंको पूर्ण करनेवाला है।

लेकिन दोनों पक्षोंमेंसे किसी एक पक्षकी सब बातें पूर्ण रूपसे ठीक नहीं मानी जा सकतीं। द्रव्य न तो नितान्त निरर्थक और तुच्छ पदार्थ है और न ईश्वरका अवतार। न तो यही कहा जा सकता है कि संसारके सब काम धनसे निकल सकते हैं और न यही माना जा सकता है कि मनुष्यके सब काम बिना धनके ही बहुत अच्छी तरह चल सकते हैं। द्रव्य यदि मनुष्यको दुराचारी अथवा अत्याचारी बना सकता है, तो वह उसके द्वारा बहुतसे दीन-दुखियोंका उपकार और कल्याण भी करा सकता है। वास्तवमें द्रव्य एक साधन है जिसका अच्छा या बुरा उपयोग प्रायः कर्त्ताके नैनिक गुणों आदिपर ही अवलंबित है।

यदि मनुष्य संसारके सब झगड़ोंको छोड़कर त्यागी बन जाय तब तो और बात है और नहीं तो अपनी मर्य्यादाकी रक्षा करने, दूसरोंका उपकार या सहायता करने और अनेक प्रकारकी आकस्मिक आपत्तियोंसे अपने आपको बचानेके लिए धनकी बहुत बड़ी आवश्यकता हुआ करती है। गृहस्थीमें अचानक अनेक ऐसे अवसर आ पड़ते हैं जिनमें यदि मनुष्य थोड़ा बहुत खर्च न करे तो उसकी प्रतिष्ठा नहीं बनी रह सकती। दीन-दुखी अथवा कष्टमें पड़े हुए किसी मनुष्यकी सहायताके लिए भी धनकी आवश्यकता होती है। अनेक अवसरोंपर साधारण लोग धनके अभावके कारण ही दूसरोंकी सहायता करनेमें असमर्थ होते हैं; पर जिसके पास धन होता है वह चटपट अपनी उदार और परोपकार वृत्तिका परिचय दे देता है और तुरन्त ही किसीके कष्ट भी दूर कर सकता है। यदि मनुष्य अचानक बीमार पड़ जाय और कुछ दिनों तक धन उपार्जन करनेके योग्य न रहे; तो उस दशामें उसका पूर्व-संचित धन ही उसके काम आ सकता है। शादी या गमीके मौके पर बिना रुपयेके काम ही नहीं चलता। ऐसे ऐसे अवसरोंपर यदि मनुष्य अपने पाससे रुपया न निकाल सके तो उसे लज्जित अथवा अपमानित होना पड़ेगा और दूसरोंके सामने हाथ पसारना पड़ेगा। यदि कभी कोई मनुष्य निर्धन अवस्थामें ही मर जाय तो उसके बालबच्चोंको बहुत ही कष्ट होता है।

परिवारके जिन लोगोंकी रक्षा और भरण-पोषण आदि करना उसका परम कर्त्तव्य होता है, उन्हींको दीन हीन और अनाथ छोड़कर मानों वह बड़ा भारी अपराध करता है। ऐसी दशामें यदि उसके पास पहलेसे संचित किया हुआ कुछ धन होता है तो वह उसके बालबच्चोंके सयाने होने तक काम आ सकता है। इसी प्रकार और भी अनेक ऐसे अवसर होते हैं जिनमें धनसे बहुत कुछ काम निकलता है। ऐसी दशामें प्रत्येक मनुष्यका यह परम कर्त्तव्य है कि वह सदा कुछ न कुछ संचय करता रहे।

पर इस संचयका यह तात्पर्य नहीं है कि मनुष्य संसारके समस्त सुन्दर विचारों और कार्योंको छोड़कर एक मात्र धनकी चिन्तामें ही लगा रहे। ऐसा मनुष्य लोभी कहलाता है और समय पड़नेपर अनेक प्रकारके पाप और अन्याय कर सकता है। बेकनका कथन है कि धनकी बहुत अधिक चिन्तामें उस सुन्दर समयका अधिकांश नष्ट हो जाता है जिसमें मनुष्य धनकी अपेक्षा अधिक उत्तम बातोंकी ओर ध्यान दे सकता है। अर्थात् मनुष्य जितनी अच्छी बातोंका चिंतन कर सकता है, धन उनमेंसे एक होने पर भी सर्वश्रेष्ठ नहीं है। उसकी आवश्यकता कुछ विशिष्ट अवसरोंपर विपत्तिसे बचनेके लिए अथवा परोपकार आदिके उत्तम कार्य करनेके लिए ही होती है। धन वहीं तक अच्छा है जहाँतक उससे जीवनकी उपयोगिता बढ़े। जो जीवन केवल धन संग्रह करनेमें ही बीते, वह कभी उपयोगी और अच्छा नहीं है। मनुष्यको साधारणतः जितने धनकी आवश्यकता होती है वहींतक धनका संग्रह अच्छा है, क्योंकि उससे हमारे जीवनका निर्वाह होगा, उससे अधिक धन हमारे जीका जंजाल और बोझ हो जायगा। ऐसी दशामें जो मनुष्य दानी और परोपकारी न हो उसका धनसंग्रह करना, सच पूछिए तो बड़ा भारी पाप है। बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जो आजन्म अनेक प्रकारके छल कपट करके और गरीबोंको सताकर हजारों लाखों रुपये जमा करते हैं और न तो उन रुपयोंसे स्वयं किसी प्रकारका सुख उठाते हैं और न दूसरोंको ही कुछ लाभ पहुँचाते हैं। बहुधा ऐसे ही लोगोंकी सन्तान बहुत

हीं थोड़े समयमें वह सारा धन नष्ट कर देती है और उनका कुल फिर पहलेकी तरह दरिद्री हो जाता है । धनसंग्रह करनेवाला मनुष्य यह नहीं जानता कि इस धनको कौन भोगेगा और इसका परिणाम क्या होगा। पर हॉ, जो मनुष्य धनका सदुपयोग कर सकता है उसे अवश्य उसका संग्रह करना चाहिए। स्वर्गीय दानवीर टाटा, जस्टिस रानडे तथा पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि आदि इस विषयमें हमारे आदर्श होने चाहिए। टाटाके दानसे भारतकी आर्थिक और व्यापारिक दशाके उन्नत होनेमें जो भारी सहायता पहुँची है वह किसीसे छिपी नहीं है। जस्टिस रानडेकी आयका बहुत बड़ा अंश सदा सार्वजनिक कार्योंमें ही लगता था; और विद्यासागरके धनसे सदा सैकड़ों अनाथ विद्यार्थियों और विधवाओंका भरण पोषण होता था।

धन केवल एकत्र करके चूल्हेके नीचे गाड़ने या आजकलके समान बंकोंमें जमा करके रखनेकी ही चीज नहीं है। यह तो सभी लोग जानते हैं कि लक्ष्मी बड़ी ही चंचला है, वह कभी एक स्थानपर नहीं ठहरती। तब उसके निकलने या जानेके हितोपदेशके अनुसार तीन मार्ग हैं–दान, भोग और नाश। हितोपदेशमें ही यह भी कहा है कि जब धनका व्यय पहले दो मार्गोंसे नहीं होता तब वह आप ही आप तीसरे मार्गसे निकल जाता है। अर्थात् जो मनुष्य न तो अपने धनका व्यय दानमें करता है और न स्वयं उसका भोग करता है, उसका धन अवश्य नष्ट हो जाता है। या तो उसे चोर ले जाते हैं, या उसमें आग लग जाती है और या उसे सन्तान फूक कर ताप डालती है । प्रत्येक मनुष्यको सदा नीच और घृणित कार्योंसे बचना चाहिए और केवल जोड़नेके विचारसे ही धनके कमानेको बड़ा ही नीच, घृणित और निन्दनीय कर्म्म समझना चाहिए।

धनके सदुपयोग और दुरुपयोगके उपरान्त उसके साधारण उपार्जन और व्ययका प्रश्न आता है । आजकल जितनी बुरी तरहसे धन कमाया जाता है यदि उसपर थोड़ासा भी विचार किया जाय तो मनु-

परिवारके जिन लोगोंकी रक्षा और भरण-पोषण आदि करना उसका परम कर्त्तव्य होता है, उन्हींको दीन हीन और अनाथ छोड़कर मानों वह बड़ा भारी अपराध करता है। ऐसी दशामें यदि उसके पास पहलेसे संचित किया हुआ कुछ धन होता है तो वह उसके बालबच्चोंके सयाने होने तक काम आ सकता है। इसी प्रकार और भी अनेक ऐसे अवसर होते हैं जिनमें धनसे बहुत कुछ काम निकलता है। ऐसी दशामें प्रत्येक मनुष्यका यह परम कर्त्तव्य है कि वह सदा कुछ न कुछ संचय करता रहे।

पर इस संचयका यह तात्पर्य नहीं है कि मनुष्य संसारके समस्त सुन्दर विचारों और कार्योंको छोड़कर एक मात्र धनकी चिन्तामें ही लगा रहे। ऐसा मनुष्य लोभी कहलाता है और समय पड़नेपर अनेक प्रकारके पाप और अन्याय कर सकता है। बेकनका कथन है कि धनकी बहुत अधिक चिन्तामें उस सुन्दर समयका अधिकांश नष्ट हो जाता है जिसमें मनुष्य धनकी अपेक्षा अधिक उत्तम बातोंकी ओर ध्यान दे सकता है। अर्थात् मनुष्य जितनी अच्छी बातोंका चिंतन कर सकता है, धन उनमेंसे एक होने पर भी सर्वश्रेष्ठ नहीं है। उसकी आवश्यकता कुछ विशिष्ट अवसरोंपर विपित्तिसे बचनेके लिए अथवा परोपकार आदिके उत्तम कार्य करनेके लिए ही होती है। धन वहीं तक अच्छा है जहाँतक उससे जीवनकी उपयोगिता बढ़े। जो जीवन केवल धन संग्रह करनेमें ही बीते, वह कभी उपयोगी और अच्छा नहीं है। मनुष्यको साधारणतः जितने धनकी आवश्यकता होती है वहींतक धनका संग्रह अच्छा है, क्योंकि उससे हमारे जीवनका निर्वाह होगा, उससे अधिक धन हमारे जीका जंजाल और बोझ हो जायगा। ऐसी दशामें जो मनुष्य दानी और परोपकारी न हो उसका धनसंग्रह करना, सच पूछिए तो बड़ा भारी पाप है। बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जो आजन्म अनेक प्रकारके छल कपट करके और गरीबोंको सताकर हजारों लाखों रुपये जमा करते हैं और न तो उन रुपयोंसे स्वयं किसी प्रकारका सुख उठाते हैं और न दूसरोंको ही कुछ लाभ पहुँचाते हैं। बहुधा ऐसे ही लोगोंकी सन्तान बहुत

ही थोड़े समयमें वह सारा धन नष्ट कर देती है और उनका कुल फिर पहलेकी तरह दरिद्री हो जाता है । धनसंग्रह करनेवाला मनुष्य यह नहीं जानता कि इस धनको कौन भोगेगा और इसका परिणाम क्या होगा। पर हाँ, जो मनुष्य धनका सदुपयोग कर सकता है उसे अवश्य उसका संग्रह करना चाहिए। स्वर्गीय दानवीर टाटा, जस्टिस रानडे तथा पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि आदि इस विषयमें हमारे आदर्श होने चाहिए। टाटाके दानसे भारतकी आर्थिक और व्यापारिक दशाके उन्नत होनेमें जो भारी सहायता पहुँची है वह किसीसे छिपी नहीं है। जस्टिस रानडेकी आयका बहुत बड़ा अंश सदा सार्वजनिक कार्योंमें ही लगता था; और विद्यासागरके धनसे सदा सैकड़ों अनाथ विद्यार्थियों और विधवाओंका भरण पोषण होता था।

धन केवल एकत्र करके चूल्हेके नीचे गाड़ने या आजकलके समान बंकोंमें जमा करके रखनेकी ही चीज नहीं है। यह तो सभी लोग जानते हैं कि लक्ष्मी बड़ी ही चंचला है, वह कभी एक स्थानपर नहीं ठहरती। तब उसके निकलने या जानेके हितोपदेशके अनुसार तीन मार्ग हैं—दान, भोग और नाश। हितोपदेशमें ही यह भी कहा है कि जब धनका व्यय पहले दो मार्गोंसे नहीं होता तब वह आप ही आप तीसरे मार्गसे निकल जाता है। अर्थात् जो मनुष्य न तो अपने धनका व्यय दानमें करता है और न स्वयं उसका भोग करता है, उसका धन अवश्य नष्ट हो जाता है। या तो उसे चोर ले जाते हैं, या उसमें आग लग जाती है और या उसे सन्तान फूक कर ताप डालती है । प्रत्येक मनुष्यको सदा नीच और घृणित कार्योंसे बचना चाहिए और केवल जोड़नेके विचारसे ही धनके कमानेको बड़ा ही नीच, घृणित और निन्दनीय कर्म्म समझना चाहिए।

धनके सदुपयोग और दुरुपयोगके उपरान्त उसके साधारण उपार्जन और व्ययका प्रश्न आता है । आजकल जितनी बुरी तरहसे धन कमाया जाता है यदि उसपर थोड़ासा भी विचार किया जाय तो मनु-

परिवारके जिन लोगोंकी रक्षा और भरण-पोषण आदि करना उसका परम कर्त्तव्य होता है, उन्हींको दीन हीन और अनाथ छोड़कर मानों वह बड़ा भारी अपराध करता है। ऐसी दशामें यदि उसके पास पहलेसे संचित किया हुआ कुछ धन होता है तो वह उसके बालबच्चोंके सयाने होने तक काम आ सकता है। इसी प्रकार और भी अनेक ऐसे अवसर होते हैं जिनमें धनसे बहुत कुछ काम निकलता है। ऐसी दशामें प्रत्येक मनुष्यका यह परम कर्त्तव्य है कि वह सदा कुछ न कुछ संचय करता रहे।

पर इस संचयका यह तात्पर्य नहीं है कि मनुष्य संसारके समस्त सुन्दर विचारों और कार्योंको छोड़कर एक मात्र धनकी चिन्तामें ही लगा रहे। ऐसा मनुष्य लोभी कहलाता है और समय पड़नेपर अनेक प्रकारके पाप और अन्याय कर सकता है। बेकनका कथन है कि धनकी बहुत अधिक चिन्तामें उस सुन्दर समयका अधिकांश नष्ट हो जाता है जिसमें मनुष्य धनकी अपेक्षा अधिक उत्तम बातोंकी ओर ध्यान दे सकता है। अर्थात् मनुष्य जितनी अच्छी बातोंका चिंतन कर सकता है, धन उनमेंसे एक होने पर भी सर्वश्रेष्ठ नहीं है। उसकी आवश्यकता कुछ विशिष्ट अवसरोंपर विपत्तिसे बचनेके लिए अथवा परोपकार आदिके उत्तम कार्य करनेके लिए ही होती है। धन वहीं तक अच्छा है जहाँतक उससे जीवनकी उपयोगिता बढ़े। जो जीवन केवल धन संग्रह करनेमें ही बीते, वह कभी उपयोगी और अच्छा नहीं है। मनुष्यको साधारणतः जितने धनकी आवश्यकता होती है वहींतक धनका संग्रह अच्छा है, क्योंकि उससे हमारे जीवनका निर्वाह होगा, उससे अधिक धन हमारे जीका जंजाल और बोझ हो जायगा। ऐसी दशामें जो मनुष्य दानी और परोपकारी न हो उसका धनसंग्रह करना, सच पूछिए तो बड़ा भारी पाप है। बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जो आजन्म अनेक प्रकारके छल कपट करके और गरीबोंको सताकर हजारों लाखों रुपये जमा करते हैं और न तो उन रुपयोंसे स्वयं किसी प्रकारका सुख उठाते हैं और न दूसरोंको ही कुछ लाभ पहुँचाते हैं। बहुधा ऐसे ही लोगोंकी सन्तान बहुत

ही थोड़े समयमें वह सारा धन नष्ट कर देती है और उनका कुल फिर पहलेकी तरह दरिद्री हो जाता है । धनसंग्रह करनेवाला मनुष्य यह नहीं जानता कि इस धनको कौन भोगेगा और इसका परिणाम क्या होगा। पर हाँ, जो मनुष्य धनका सदुपयोग कर सकता है उसे अवश्य उसका संग्रह करना चाहिए। स्वर्गीय दानवीर टाटा, जस्टिस रानडे तथा पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि आदि इस विषयमें हमारे आदर्श होने चाहिए। टाटाके दानसे भारतकी आर्थिक और व्यापारिक दशाके उन्नत होनेमें जो भारी सहायता पहुँची है वह किसीसे छिपी नहीं है। जस्टिस रानडेकी आयका बहुत बड़ा अंश सदा सार्वजनिक कार्योंमें ही लगता था; और विद्यासागरके धनसे सदा सैकड़ों अनाथ विद्यार्थियों और विधवाओंका भरण पोषण होता था।

धन केवल एकत्र करके चूल्हेके नीचे गाड़ने या आजकलके समान बंकोंमें जमा करके रखनेकी ही चीज नहीं है। यह तो सभी लोग जानते हैं कि लक्ष्मी बड़ी ही चंचला है, वह कभी एक स्थानपर नहीं ठहरती। तब उसके निकलने या जानेके हितोपदेशके अनुसार तीन मार्ग हैं—दान, भोग और नाश। हितोपदेशमें ही यह भी कहा है कि जब धनका व्यय पहले दो मार्गोंसे नहीं होता तब वह आप ही आप तीसरे मार्गसे निकल जाता है। अर्थात् जो मनुष्य न तो अपने धनका व्यय दानमें करता है और न स्वयं उसका भोग करता है, उसका धन अवश्य नष्ट हो जाता है। या तो उसे चोर ले जाते हैं, या उसमें आग लग जाती है और या उसे सन्तान फूक कर ताप डालती है । प्रत्येक मनुष्यको सदा नीच और घृणित कार्योंसे बचना चाहिए और केवल जोड़नेके विचारसे ही धनके कमानेको बड़ा ही नीच, घृणित और निन्दनीय कर्म्म समझना चाहिए।

धनके सदुपयोग और दुरुपयोगके उपरान्त उसके साधारण उपार्जन और व्ययका प्रश्न आता है । आजकल जितनी बुरी तरहसे धन कमाया जाता है यदि उसपर थोड़ासा भी विचार किया जाय तो मनु-

ष्यके मनमें बड़ी ही घृणा और विरक्ति उत्पन्न हो सकती है । धन-संग्रह करनेके लिए और विशेषतः उत्तम उपायोंसे धन-संग्रह करनेके लिए बहुत कुछ परिश्रमकी आवश्यकता होती है । पर लोग न तो परिश्रम करना चाहते हैं और न उत्तम उपायोंका अवलंबन करते हैं । परिश्रमसे बचनेके लिए वे तरह तरहकी बुद्धिमानियाँ करते हैं, सीधे-सादे आदमियोंको धोखा देते हैं और उनकी मूर्खतासे लाभ उठाते हैं । कुछ लोग तो इन बातोंको रोजगारका 'कैंडा' बतलाकर अपनी परम नीचताका परिचय देनेमें भी संकोच नहीं करते । लेकिन जिन लोगोंमें कुछ भी मनुष्यत्व, कुछ भी विवेक होता है वे विना किसी प्रकारका आगापीछे किये कह सकते हैं कि बेईमानी करके करोड़पति और अरबपति बनने और सजे सजाये बढ़िया महलोंमें रहनेकी अपेक्षा बहुत ही दरिद्रावस्थामें एक झोपड़ीमें रहना और ईमानदारीसे अपने निर्वाहके लिए थोड़ी बहुत आय कर लेना लाख दरजे अच्छा है । बहुतसे मारवाड़ी, बनियें और महाजन गरीबोंको अनेक प्रकारके कष्ट पहुँचाकर और उनका सर्वस्व नष्ट करके अपनी दी हुई रकमका चौगुना और अठगुना तक वसूल करते और इस प्रकार धनवान् बनकर समाजमें आदर पाते और प्रतिष्ठित बनते हैं; पर वास्तवमें ऐसी प्रतिष्ठा और आदर कौड़ी कामका नहीं है । लेकिन इसमें उन लोगोंका भी उतना दोष नहीं है; सबसे बड़ा दोष तो समाजका है जो ऐसे लोगोंके दुष्कर्म्मोंकी ओर तो कुछ भी ध्यान नहीं देता और उनके धनवान् और सम्पन्न होनेपर उनका आदर करने लगता है । पिछले पृष्ठमें फारसीका जो एक शेर दिया गया है उसमें धनको सब दोषोंका छिपानेवाला बतलाया गया है । अँगरेजीकी एक कहावतका भी लगभग वही अभिप्राय है—'रुपया पैदा करो, सारी दुनिया तुम्हें भला आदमी कहेगी ।' इस प्रकारके विचार सभी देशों और समाजोंमें फैले हुए हैं और इसे लोग धनकी महिमा कहते हैं । कितने आश्चर्य, दुःख और लज्जाकी बात है कि लोग स्वयं अपनी नैतिक दुर्बलताके कारण तो धनवानों और लक्ष्मीपात्रोंकी प्रतिष्ठा करते हैं और स्वयं दोषसे बचनेके

लिए उसका कारण धनकी महिमा बतलाते हैं। होना तो यह चाहिए कि जो मनुष्य जितने ही नीच उपायोंसे और जितना ही अधिक धन कमावे वह समाजमें उतनी ही घृणाकी दृष्टिसे देखा जाय। पर न जाने क्यों लोग ऐसे अंधे और अविवेकी हो जाते हैं कि उन्हें दूसरोंका धन तो अवश्य और वह भी बहुत अधिक दिखाई देता है, पर जिन नीच उपायोंसे वह कमाया, बल्कि यों कहिए कि दूसरोंसे छीना जाता है, उसकी ओर उनकी दृष्टि ही नहीं जाती। लोगोंकी धन और प्रतिष्ठाको परस्पर सम्बद्ध रखनेकी दुष्ट धारणा बहुत प्राचीनकालसे चली आई है और ज्यों ज्यों यह धारणा बढ़ती गई है त्यों त्यों लोगोंको दुष्ट उपायोंसे धन-संग्रह करनेमें उत्तेजना मिलती गई है। इस धारणाका नाश होना चाहिए और मनुष्यकी प्रतिष्ठा करनेमें उसकी सदाचारशीलताका ध्यान मुख्य और सम्पन्नताका गौण होना चाहिए। कभी कभी ऐसे धनवान् लोग—विशेषतः ऐसे अवसरों पर जब कि वे बड़ी भारी बेईमानी करके बड़ी रकम मारते हैं—अपनी बदनामी दूर करने अथवा कमसे कम अपना नाम करनेके लिए धर्म्मशाला, गौशाला, अन्न-सत्र आदि स्थापित कर देते हैं। बस फिर क्या है, लोग उनकी वाहवाहीमें लग जाते हैं और समझने लग जाते हैं कि लाला साहब या सावजीको परमात्माने धनके साथ ही साथ सुबुद्धि और सुरुचि भी प्रदान कर दी है। पर वे ही सुबुद्धि या सुरुचिवाले लाला साहब या सावजी आगे चलकर अपनी उसी ढोंगवाली धार्मिकता और उदारता आदिकी ओटमें ऐसे ऐसे हाथ साफ करते हैं कि जिनसे ईश्वर ही बचा सकता है। आजकल संसारकी और विशेषतः व्यापारिक संसारकी जो दुर्दशा देखी जाती है, वह परम शोचनीय और लज्जास्पद है। प्रत्येक विचारशील और सत्यनिष्ठ मनुष्यका यह परम कर्त्तव्य है कि वह स्वयं सदा सत्यनिष्ठा-पूर्वक धन कमावे और उतना ही धन कमावे जितना उसके निर्वाह आदिके लिए यथेष्ट हो; और यदि वह इससे अधिक धन कमा सकता या कमाता हो, तो उसे लोकोपकारके कार्योंमें लगा दे और दूसरोंका भाग छीनकर

दबा बैठनेके पापका भागी न बने। साथ ही वह कभी ऐसे मनुष्यकी प्रतिष्ठा या आदर-सत्कार न करे जिसने बेईमानी और अनुचित उपायोंसे धन कमाया हो।

अब धनके व्ययको लीजिए। प्रत्येक मनुष्यका यह भी परम कर्तव्य होना चाहिए कि वह खूब सोच समझकर और सदा अपनी आयसे कम व्यय करे। जिस आदमीके पास दस बीस लाख रुपये हों वह बड़ा भारी अमीर समझा जाता है और जिसके पास हजार-पाँचसौ रुपये हों वह गरीब समझा जाता है। पर वास्तवमें अमीर और गरीबमें यह अन्तर नहीं है। जिस मनुष्यका व्यय उसकी आयसे कम हो वही अमीर और जिसका व्यय उसकी आयसे अधिक हो वही गरीब है। एक अच्छे समझदारका कहना है कि जिस मनुष्यकी आय १००) मासिक और व्यय ९९॥) मासिक है वही अमीर और सुखी है और जिसकी आय १००) मासिक और व्यय १००॥) मासिक है, वही दरिद्र और दुखी है। अब अमीर और सुखी तथा गरीब और दुखी होनेमें इसी एक रुपये महीनेकी करामात रह गई! आर्थिक दृष्टिसे सुखी रहनेका इससे अच्छा और कोई उपाय नहीं है कि व्यय सदा आयसे कम किया जाय।

आयसे व्यय इस लिए कम नहीं होना चाहिए कि उससे मनुष्य धनी हो जायगा, बल्कि अपनी आयका कुछ अंश कठिन समयके लिए बचा रखना परम आवश्यक है। प्रायः लोग अपनी इन्द्रियलोलुपता, शौकीनी नशे और व्यर्थकी चीजें मोल लेने आदिमें ही अधिक व्यय करते हैं और ये ही सब बातें ऐसी हैं जिनसे सिद्ध होता है कि मनुष्यमें आत्मवश-ताका अभाव है। इसके अतिरिक्त अधिक व्यय करना यह भी सिद्ध करता है कि मनुष्यमें दूरदर्शिता नहीं है। क्योंकि जो मनुष्य दूरदर्शी होगा, अपना भविष्य सोचेगा वह सदा अपनी आयका कुछ न कुछ अंश अवश्य बचावेगा। व्ययसंबंधी ये ही सब बातें ऐसी हैं जिनसे मनुष्यके चरित्रका भी बहुत कुछ पता चलता है। साथ ही आयकी अपेक्षा व्यय अधिक करनेमें सबसे बड़ा दोष यह है कि मनुष्य कर्ज-

दार हो जाता है और व्यापारसंबंधी आवश्यकताओंको छोड़कर शेष दशाओंमें ऋणी बनना बहुत ही बुरा है। मनुष्य जहाँ अपनी आयसे व्यय अधिक करने लगा वहाँ उसका काम बिना दूसरोंसे ऋण लिए चल ही नहीं सकता और ऋण एक ऐसा रोग है जो एक बार लगनेके उपरान्त फिर जल्दी कभी छूटना जानता ही नहीं। जो मनुष्य दूसरोंसे व्यर्थके व्ययके लिए ऋण लेता है वह कदापि सुखी नहीं रह सकता। ऋण लेना मानों अपने सिर आप आफत बुलाना है। एक विद्वानने तो ऋणको बड़ी भारी गुलामी कहा है। एक दूसरे विद्वान्का कथन है— "दरिद्रता और अपमान आदि तो बुरा है ही, पर ऋण सबसे अधिक बुरा है। कभी ऋणी मत बनो। अपव्यय और ऋण दोनोंका बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। अपव्ययी होते ही मनुष्य ऋणी होने लगता है और जब उसे ऋणका चसका लग जाता है तब उसका अपव्यय और भी बढ़ जाता है। इस प्रकार वह मानों दिन पर दिन दुःखी और दरिद्र होता जाता है। ऋण लेकर अपव्यय करना मानों दूसरोंका धन लुटाना है और इसकी गणना भी एक प्रकारसे चोरी या डाकेमें हो सकती है।"

अपव्ययके अनेक मार्ग हैं जिनमें इन्द्रियलोलुपता, नशों, शौकीनी और व्यर्थकी चीजें मोल लेना आदि प्रधान हैं। अपनी इन्द्रियोंको वशमें न रखनेसे जो जो हानियाँ होती हैं उनका दिग्दर्शन इस पुस्तकके आरम्भमें यथास्थान हो चुका है। नशेमें भी इतने अधिक दोष हैं कि उसके पक्षका समर्थन कभी किसी प्रकार हो ही नहीं सकता। नशेसे मनुष्यके शरीरमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं, बल और बुद्धि आदिका ह्रास होता है, और आर्थिक, धार्मिक तथा नैतिक दृष्टिसे वे बड़ी भारी हानि करते हैं। यह समझना बड़ी भारी भूल है कि नशेसे शरीरको कभी किसी प्रकारका लाभ पहुँच सकता है, उससे हमारी थकावट उतर सकती है अथवा शरीरमें फुरती आ सकती है। शरीरपर तो नशोंका प्रभाव इससे बिलकुल उलटा होता है। जितने मादक द्रव्य हैं वे सब विषके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। फिर भी न जाने क्यों संसारमें बहुत अधिक

संख्या ऐसे मनुष्योंकी है जो अपनी आयका अधिकांश मादक द्रव्योंमें ही व्यय करके सदा दीन, दुःखी और दरिद्र बने रहते हैं और आजन्म स्वयं कष्ट भोगते तथा अपने परिवारको कष्ट देते हैं। साधारणतः एक आदमी सुरती, तमाकू, भाँग, गाँजा, शराब, गाँजे और अफीम आदिमें जितना धन नष्ट करता है उतनेसे एक छोटे मोटे परिवारका भरण पोषण बहुत अच्छी तरह हो सकता है। जो लोग अपव्ययसे बचना और आर्थिक दृष्टिसे सुखी रहना चाहते हों, उन्हें कभी मादक द्रव्योंका व्यवहार न करना चाहिए।

अब शौकीनीको लीजिए, जो बराबर सभ्यताके साथ दिनपर दिन बढ़ती जाती है। संसारमें बहुत अधिक संख्या ऐसे ही लोगोंकी है जो आर्थिक दृष्टिसे कभी सुखी नहीं कहे जा सकते; पर वे ही लोग सदा अनेक ऐसे अपव्यय करते हैं जिनसे उनका आर्थिक कष्ट बराबर बढ़ता ही जाता है। बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जिनकी आर्थिक दशा बुरी होती है और उसी दुर्दशाको छिपानेके लिए वे लोग और भी अपव्यय करते और प्रकारान्तरसे अपनी वही दुर्दशा बढ़ानेके कारण होते हैं। बहुतसे युवक अपनी हैसियतको बहुत कुछ बढ़ाकर दिखलानेमें ही अपना सारा पुरुषार्थ खर्च कर देते हैं। इस दुष्ट प्रवृत्तिसे बहुतसे नैतिक दोषों और अपराधोंकी भी सृष्टि होती है। बहुतसे लोग केवल दूसरोंकी देखादेखी ही बहुत अच्छे कपड़े पहनते हैं, अपने कमरोंको खूब सजाते हैं और नाच तमाशे और दावतोंमें अपनी हैसियतसे बढ़कर खर्च करते हैं। उनकी आर्थिक अवस्थापर इस प्रवृत्तिका जो दुष्परिणाम होता है वह तो होता ही है, साथ ही समाजपर इसका और भी अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है। उनकी देखादेखी और भी बहुतसे लोग बिगड़ते हैं और स्वयं दुःखी होते और दूसरोंका कष्ट बढ़ाते हैं। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो इसमें मुख्य अपराध उन अमीरोंका ही है जो सीधी सादी चालसे नहीं रहते और केवल अपनी अमीरी दिखलानेके लिए बड़े ठाठ बाटसे बाहर निकलते हैं। उन्हींको देखकर साधा-

रण लोगोंके मनमें भी असंतोष और क्षोभ होता है और वे यथासाध्य उन्हींके दिखलाये हुए मार्गपर चलनेका प्रयत्न करते हैं। मनुष्यको केवल धनी हो जानेसे ही यह अधिकार नहीं मिल जाता कि वह दूसरोंके सामने बुरा आदर्श उपस्थित करे। इसके अतिरिक्त बहुत कुछ दोष उन लोगोंका भी है जो अमीरोंकी चाल-ढाल और रहन-सहनका अनुकरण करके अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ मोल लेते हैं। यदि अमीर लोग सीधी साधी चालसे रहने लगें और साधारण स्थितिके लोग अपने मनको वशमें रखना सीख जायँ, तो इस संबंधके बहुतसे दोष और दुःख सहजमें ही दूर हो सकते हैं।

पश्चिमी सभ्यताके साथ साथ शौकीनीका रोग और भी बढ़ता जाता है। फैशनकी वृद्धि लोगोंकी दरिद्रता और कष्टकी वृद्धिका कारण है। बहुतसे लोगोंको सदा इस बातका ध्यान रहता है कि हमारे फैशनमें किसी प्रकारकी कमी न आने पावे, हमें देखने सुननेवाले यह न समझें कि धनाभावके कारण ही हमारे फैशनमें कमी है। उस फैशनकी रक्षाके लिए उन्हें बहुत कुछ अपव्यय करना पड़ता है। केवल दूसरोंको दिखाने सुनानेके लिए ही वे एक भारी आफत मोल लेते हैं। यदि सच पूछिए तो अपनी स्थितिको बढ़ाकर लोगोंपर प्रकट करना एक प्रकारसे उन्हें धोखा देना है और इसलिए नैतिक दृष्टिसे यह परम निन्दनीय है। अतः प्रत्येक मनुष्यको चाहिए कि वह सदा अपनी आयसे कम व्यय करे और कुछ न कुछ धन भविष्यके लिए बचा रक्खे। व्ययके विषयमें प्रत्येक मनुष्यको बहुत ही सावधान रहना चाहिए और केवल बहुत ही आवश्यक और उपयोगी कामोंमें व्यय करना चाहिए।

खर्चमें किफायत करना तो बहुत जरूरी और अच्छा है; पर इस किफायतको बढ़ाकर कंजूसीकी हद तक पहुँचाना बहुत ही बुरा और हानिकारक है। कुछ लोगोंकी यह प्रकृति होती है कि जबतक किसी बहुत भारी हानिकी संभावना न हो अथवा जबतक बहुत अधिक आवश्यकता न हो, तबतक एक पैसा खर्चनेमें भी मानों उनके प्राण निक-

लते हैं। ऐसे लोगोंकी आय अवश्य अच्छी होती है और उसे देखते हुए उनका व्यय कुछ भी नहीं होता। इसीसे थोड़े ही समयमें उनके पास अच्छी रकम जमा हो सकती है। पर इस रकमके जमा करनेके लिए उन्हें अपने शरीर और परिवार आदिको बहुत कष्ट देना पड़ता है। वे बहुत कुछ पैदा करते हैं और यदि चाहें तो अच्छी तरह और आरामसे रह सकते हैं। पर न तो वे स्वयं आराम करना जानते हैं और न अपने परिवारके लोगोंको कभी आराम करने देते हैं। ऐसे ही लोगोंकी संतान उनके आँखें बन्द करते ही उनकी सारी सम्पत्ति स्वाहा कर देती है। जो धन उन्होंने अपने जीवनमें बड़े ही कष्ट और कौड़ी कौड़ी करके जमा किया था, वही धन देखते देखते बिलकुल नष्ट हो जाता है। प्रायः यही देखा जाता है कि बहुत अधिक कृपणतापूर्वक जमा किया हुआ धन अधिक समय तक नहीं ठहरता।

कृपणतामें यह जो दोष है वह तो है ही; एक और बड़ा दोष यह है कि उससे स्वयं अपना ही उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। अर्थात् जो लोग कंजूसी करना चाहते हैं वे उसी कंजूसीकी चिन्तामें ही बहुधा अपनी भारी हानि कर बैठते हैं।

किफायत और कंजूसीमें बड़ा भारी अंतर है। किफायत बहुत ही आवश्यक और उपयोगी है और उसका परिणाम बहुत ही अच्छा होता है। बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्वक और समझ बूझकर व्यय करनेका नाम किफायत है। लेकिन कंजूसीकी सब बातें इससे उलटी हैं। किफायतसे मनुष्यका आर्थिक लाभ होता है; पर कंजूसीसे हानि होती है। बहुतसे लोग केवल अपनी कंजूसीके कारण ही अपने व्यापार या स्वास्थ्य आदिकी भारी हानि कर बैठते हैं। पर जो लोग समझदार होते हैं वे समयपर थोड़ासा खर्च करके अपना यथेष्ट लाभ कर लेते हैं। एक सज्जनने केवल अपनी कंजूसीके कारण ही १००–१५० रुपया खर्च करना उचित न समझा और इसी लिए अपने मुकदमेके सुबूतके कई आवश्यक कागज तलब नहीं कराये। फल यह हुआ कि वे अपना कई हजारका मुकदमा

हार गये। पीछे उसी मुकद्मेके लिए उन्होंने बड़ी अदालतमें फिरसे ५-६ सौ रुपये खर्च किये, पर फल कुछ भी नहीं हुआ। पीछे उन्होंने जो ५–६ सौ रुपये खर्च किये थे, यदि उनमेंसे वे केवल सौ डेढ़सौ रुपये पहले ही खर्च कर देते तो मुकद्मा भी जीत लेते और उनका खर्च भी बच जाता। पर बेचारे अपनी पुश्तैनी कंजूसीसे लाचार थे। एक और सज्जन थे जो सौदा खरीदनेके समय आने दो आनेकी बचत करनेके लिए घंटों इधरसे उधर मारे मारे फिरते थे; उतने समयमें यदि वे चाहते तो ठिकानेसे बैठकर रुपये दो रुपये पैदा कर सकते थे। एक और महाशय थे जिन्होंने मारे कंजूसीके अपने मकानकी एक फटी हुई दीवारकी दो सालतक मरम्मत न कराई। तीसरे वर्ष उनका सारा मकान गिर गया जिसमें उनके परिवारके कई आदमी दबकर मर गये। अमेरिकाके एक धनी सज्जनके विषयमें कहा जाता है कि वे मारे कंजूसीके सब कमरोंकी रोशनी इतनी कम कर देते थे कि लोगोंको चलने फिरनेमें कठिनता होती थी। कई बार उनके घरके लोगोंने ठोकर खाकर अपने हाथ पैर तोड़ लिये; और कुरसियाँ, गिलास, शीशे और गुलदान जो टूटे सो अलग। भला ऐसी कंजूसी किस कामकी? आजकलके जमानेमें तो बहुतसे अवसरोंपर उदारता ही अच्छा काम कर दिखलाती है। और किफायतका यह मतलब नहीं है कि आप आवश्यक व्यय भी न करें; उसका मतलब केवल इतना ही है कि अनावश्यक व्यय न हो। लेकिन किफायतके विचारसे आवश्यक और अनावश्यक व्ययका अंतर न समझने और सब जगह पैसा बचानेकी चिन्तामें ही लगे रहनेसे बहुधा बहुत कुछ आर्थिक हानि हो जाती है। एक किसानका उपदेश है,—" दुअन्नीको अपनी आँखके इतने पास मत ले जाओ कि उसकी ओटमेंका रुपया भी तुम्हें न दिखलाई पड़े। " अर्थात् जहाँ दो आने खर्च करनेसे एक रुपयेका लाभ हो सकता हो वहाँ दो आनेका मुँह मत देखो। बहुतसे दूकानदार दो चार पैसोंके पान या इलायची आदिसे ग्राहककी खातिर करके उन्हें सदाके लिए अपना चेला बना लेते हैं और बराबर उनसे खूब लाभ उठाते हैं।

पर कंजूसकी चाहे कितनी ही हानि क्यों न हो जाय, लेकिन वह कभी एक पैसेसे भी बल नहीं खाता।

न तो किसी मनुष्यको कंजूस होना चाहिए और न अपव्ययी। अपने खर्चको कभी आमदनीसे बढ़ने न देना चाहिए और सदा आवश्यक और अच्छे कामोंमें खर्च करना चाहिए। आय और व्ययका सदा हिसाब रखना चाहिए। बहुतसे लोग केवल हिसाब न रखनेके कारण ही अपव्यय करते हैं। उन्हें इस बातकी खबर तो होती ही नहीं कि हमारी आमदनी क्या है और खर्च क्या है। वे मनमाना खर्च कर चलते हैं। यदि ऐसे मनुष्य महीने दो महीने हिसाब रखकर खर्च किया करें तो बहुत शीघ्र उनका अपव्यय छूट जाय। अपव्यय करनेवालोंकी एक हानि यह भी होती है कि अनेक अवसरोंपर उन्हें अपनी इच्छाके विरुद्ध भी बहुत कुछ खर्च करना पड़ता है। पहले तो उनकी उदारताकी प्रसिद्धि हो जाती है और तब ऐरे गैरे लोग उनके पास माँगने-जाचनेके लिए पहुँचने लगते हैं। दोस्त लोग दावतें आदि भी ऐसे ही लोगोंसे माँगते हैं जो फजूलखर्च हुआ करते हैं। जिस मनुष्यके विषयमें सब लोग यह जानते हों कि यह खूब सोच समझकर खर्च करता है, उससे कभी किसीकी व्यर्थ खर्च करानेकी हिम्मत ही न पड़ेगी। केवल व्यापारिक आवश्यकताओंको छोड़कर शेष सब दशाओंके लिए यह यदि निश्चय कर लिया जाय कि हम कभी कोई चीज उधार न खरीदेंगे या किसीसे कर्ज न लेंगे, तो भी अपव्ययसे बहुत कुछ रक्षा हो जाती है। बहुतसे लोग और विशेषतः बड़े आदमी केवल इसी लिए बहुत अधिक अपव्ययी हो जाते हैं कि उन्हें बराबर कर्ज मिलता जाता है। यदि किसी प्रकार उन्हें कर्ज मिलना बंद हो जाय तो उनका अपव्यय सहजमें ही छूट जाय।

रुपयेके लेन-देनके संबंधमें मनुष्यको सदा बहुत खरा रहना चाहिए। हर एक आदमीको रुपया ठीक समयपर चुका देना चाहिए। व्यापारियोंके लिए तो यह बात और भी अधिक आवश्यक है, क्योंकि प्रायः अधिकांश व्यापार साखपर ही निर्भर करता है। और साख उसीकी बनी रहती है जो अपना ऋण ठीक समयपर अदा कर देता है। वही बाजा-

रसे हजारों–लाखों रुपयोंका माल ले सकता है और उससे अपना अच्छा लाभ कर सकता है। लेकिन जो व्यापारी अपने लेनदारोंको रुपयोंके लिए बीसियों बार दौड़ाता, बीसियों झूठे सच्चे वादे करता, या देना चुकानेके डरसे हिसाबमें झगड़े निकालता या किचकिच करता है, उसका विश्वास उठ जाता है और लोग उससे लेन देन करनेसे घबराते हैं। ऐसे मनुष्यकी कभी कभी आर्थिक और व्यापारिक दृष्टिसे बड़ी भारी हानि हो जाती है। व्यापारियोंको कभी बहुत अधिक नफेके लालचमें न पड़ना चाहिए। जो व्यापारी बहुत अधिक नफा लेगा उसकी विक्री अवश्य ही कम होगी। व्यापारका यह एक मुख्य सिद्धान्त है कि उसमें नफा जितना ही कम किया जाय, उसमें उतनी ही वृद्धि होती है। बहुतसे व्यापारी केवल अधिक नफेकी आशामें ही अपना माल रोक रखते हैं और यदि पीछे बाजार गिर जाय तो बहुत कुछ हानि उठाते हैं। धनका लालच सब दशाओंमें और विशेषतः व्यापारमें बहुत बुरा और हानिकारक होता है।

अपात्र या कुपात्रके पास कभी धन नहीं रहता; अतः जो लोग धनवान् बनना चाहते हों उन्हें सबसे पहले पात्रता सम्पादित करनी चाहिए। जबतक मनुष्यमें पात्रता न हो तब तक उसे धन मिल ही नहीं सकता; और यदि किसी प्रकार मिल भी जाय तो कदापि ठहर नहीं सकता। बहुतसे लोगोंको बड़ोंका कमाया हुआ द्रव्य मिलता है; पर उनमें पात्रताका अभाव होता है। इसी लिए बहुत थोड़े समयमें उनका वह धन नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार अयोग्य मनुष्य और कोई काम नहीं कर सकता उसी प्रकार वह धन भी नहीं रख सकता। पात्रता प्राप्त हो चुकनेपर यदि मनुष्यके पास धन आवे तो वह उसके पास अवश्य ठहरता है। उस समय उसे दो बातें करनी चाहिए। एक तो धन पाकर कभी अभिमान न करना चाहिए। यदि विद्या या बुद्धि आदिके लिए अभिमान किया जाय तो वह इतना निन्दनीय नहीं है; क्योंकि विद्या और बुद्धि जब एक बार प्राप्त की जा चुकती है तब उसका शीघ्र या सहजमें नाश नहीं होता। और इसी लिए उसे आगे चलकर कभी अपने अभिमानके कारण लज्जित नहीं होना पड़ता। पर धनके

सम्बन्धमें यह बात नहीं है। लक्ष्मी चंचल है। वह कभी एक स्थानपर नहीं ठहरती। विद्या या बुद्धिकी तरह वह स्थायी नहीं होती। जो मनुष्य आज लखपती है, सम्भव है कि वह कल दरिद्र हो जाय। इसलिए धन पाकर अभिमान करना बड़ी भारी मूर्खता है। किसीने कहा है,—

> आपद्गतं हससि किं द्रविणधान्मूढ,
> लक्ष्मी स्थिरा न भवतीति किमत्र चित्रं।
> एतान्न पश्यसि घटान् जलयंत्रचक्रे
> रिक्ता भवन्ति भरिता भरिताश्च रिक्ताः ॥

अर्थात्—रे धनके मदसे अंधे मूर्ख, तू दूसरोंको विपद्ग्रस्त देखकर मत हँस। लक्ष्मी कभी स्थिर नहीं रहती। इसमें कोई अनोखी बात नहीं है। रहँटपर बँधी हुई इन घड़ियोंकी ओर देख। भरी हुई घड़ियाँ खाली होती जाती हैं और खाली घड़ियाँ भरती जाती हैं।

दूसरी बात यह है कि धनका सदुपयोग होना चाहिए और परोपकारमें लगनेसे बढ़कर धनका और कोई सदुपयोग हो ही नहीं सकता। यदि सच पूछिए तो परोपकार करना प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है; और विशेषतः जिस मनुष्यके पास यथेष्ट धन हो उसके लिए तो परोपकार और भी परम कर्त्तव्य है। जिस मनुष्यके पास धन हो उसे उचित है कि वह भूखोंको अन्न दे, नंगोंको वस्त्र दे, रोगियोंको औषध दे और सबसे बढ़कर अशिक्षितोंको शिक्षा दे। संसारमें विद्या-दानसे बढ़कर और कोई दान नहीं है। किसीको आपत्ति या अप्रतिष्ठा आदिसे बचानेके लिए धन व्यय करना भी बड़े ही पुण्यका काम है। लेकिन परोपकार और दान मनुष्यको खूब सोच समझकर करना चाहिए। भारतवासियों और विशेषतः हिन्दुओंका दान और परोपकार प्रायः नाम मात्रका रह गया है। हम लोग दान और परोपकार करते समय पात्रापात्रका विचार नहीं करते। यह बड़ी भारी भूल है। दान और परोपकार जबतक खूब सोच समझकर और बुद्धिमत्तापूर्वक न किया जाय तबतक उससे कोई लाभ नहीं होता; उलटे बहुत कुछ हानि ही होती है। अतः इस संबंधमें धनवानोंको खूब सावधान रहना चाहिए।

दसवाँ प्रकरण।

सुख और शान्ति।

[सुखका महत्त्व—संसारमें सब लोग केवल सुख ही चाहते हैं—सुखके सम्बन्धमें लोगोंका भ्रम—वास्तविक सुखका स्वरूप—सुखका सम्बन्ध केवल मनसे है—सुखी रहनेके उपाय—भिन्न भिन्न पदार्थोंके साथ सुखका संबंध—प्रकृति-प्रेम—प्राप्त साधनोंसे सुखी होना—अपनी कामनायें और आवश्यकतायें कम करो।]

महाभारत शान्तिपर्वमें भृगुजीने भारतद्वाजसे कहा है—" इह खलु अमुष्मिंश्च लोके वस्तुप्रवृत्तयः सुखार्थमभिधीयन्ते । न ह्यतः परं त्रिवर्गफलं विशिष्टतामस्ति । " अर्थात्—इस लोक और परलोकमें सारी प्रवृत्ति केवल सुखके लिए ही है और धर्म्म अर्थ तथा कामका सुखके अतिरिक्त और कोई फल नहीं है । यह बात अक्षरशः सत्य है। संसारमें जितने काम होते हैं सब केवल सुखकी प्राप्तिके लिए ही होते हैं। धनोपार्जन, अध्ययन, अध्यापन, व्यापार, दान धर्म्म, विवाह, वेश्यागमन, मद्यपान, आत्महत्या, द्वेष, निन्दा आदि आदि सभी अच्छी और बुरी बातें एक मात्र सुखकी प्राप्तिके लिए ही की जाती हैं। लेकिन जिस सुखकी संसारके प्रत्येक मनुष्यको इतनी चाह है उसीके संबंधमें एक बात बड़ी ही विलक्षण है। वह यह कि सुखका स्वरूप बहुधा निश्चित और सर्वसम्मत नहीं है, सभी लोग उसके सम्बन्धमें बड़े ही भ्रममें पड़े रहते हैं। यह भ्रम केवल सुखका सच्चा स्वरूप न जाननेके कारण ही है। और इसी लिए यदि एक मनुष्यको कौड़ी कौड़ी जमा करके लखपती बननेमें सुख जान पड़ता है तो दूसरा अपने पूर्वजोंकी लाखोंकी सम्पत्ति बहुत ही थोड़े समयमें वेश्यागमन और मद्यपान आदिमें नष्ट कर देनेमें ही सुख समझता है। एक मनुष्य यदि पशु-पक्षियों और छोटे छोटे जीवोंतकपर दया करने और उनके प्राणोंकी रक्षा करनेमें सुख मानता

है तो दूसरा मनुष्य भाइयोंका खून बहानेमें ही सुखी होता है। यदि किसीको इन्द्रिय-तृप्तिमें सुख मिलता है तो किसीको इन्द्रिय-दमनमें। कोई बड़े बड़े महलोंमें रहनेसे ही सुखी होता है और कोई झोंपड़ीमें ही पड़े रहनेमें सुख मानता है।

लेकिन सुखका वास्तविक स्वरूप समझनेवाले लोग बहुत ही थोड़े हैं। सब लोग जिस बातमें सुख समझते हैं उसीमें लग जाते हैं। पर उनका समझना भ्रमात्मक होता है, इसी लिए अंतमें चलकर उन्हें दुःख मिलता है। धनको सुख समझनेवाला बहुतसा धन एकत्र करता है, पर अंतमें जब उसका जवान लड़का मर जाता है या वह स्वयं किसी भारी रोगसे पीड़ित होता है, तब वह धन उसे सुखी नहीं कर सकता। कभी कभी तो वह धन उसके लिए और भी दुःखका कारण हो जाता है। चोर या डाकू आकर उसी धनके लिए उसे अनेक प्रकारके कष्ट पहुँचाते हैं और उसे समझना पड़ता है कि यदि मेरे पास यह धन न होता तो मैं अपेक्षाकृत अधिक सुखी होता। इन्द्रिय-तृप्तिमें सुख समझनेवाला मनुष्य भी सदा दुखी ही रहता है, क्योंकि ज्यों ज्यों वह विषय-वासनाओंमें फँसता जाता है त्यों त्यों उन वासनाओंकी वृद्धि होती जाती है। वह सुख तो समझता है इन्द्रियोंकी तृप्तिमें; पर इन्द्रियोंकी तृप्ति होती नहीं, उलटे वासनायें बढ़ती जाती हैं, इस लिए उसे सुखके बदले दुःख ही मिलता है। इन्हीं सब विरोधों और कठिनाइयोंको देखकर विद्वानोंने चिन्तनपूर्वक निश्चय किया है कि संसारके बाह्यपदार्थोंके साथ वास्तविक सुखका कोई संबंध नहीं है। सुखका मुख्य सम्बन्ध मनसे ही है। इसी लिए भगवान् मनुने भी सुख और दुःखका लक्षण इस प्रकार लिखा है,—

> सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
> एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥

अर्थात्—जो दूसरों अर्थात् बाह्य पदार्थोंकी अधीनतामें है वह सब

दुःख है और जो अपने मनके अधिकारमें है वह सुख है । सुख और दुःखका संक्षेपमें यही लक्षण है ।

आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंने भी सुखका लक्षण कुछ इसीसे मिलता जुलता निश्चित किया है । उनके मतसे भी सुख बाह्य पदार्थोंपर अवलंबित नहीं है । वे तो सुखको एक मानसिक अवस्था मात्र मानते हैं। मनकी उपमा वे एक शीशेसे देते हैं। शीशा जब किसी खास रुखमें रक्खा जाय तब वह प्रकाशित होता है; और इसके विपरीत यदि दूसरे रुखमें रक्खा जाय तो वह अप्रकाशित रहता है। वही दशा मनकी भी है। उसे प्रकाशित या सुखी रखनेके लिए एक विशिष्ट दशामें रखनेकी आवश्यकता होती है। यदि उस दशासे भिन्न वह किसी और दशामें रक्खा जाय तो संसारका कोई बाह्य पदार्थ उसे सुखी या सन्तुष्ट नहीं कर सकता। यही कारण है कि बहुतसे लोग धन, बल, स्वास्थ्य, परिवार और सम्मान आदि सब कुछ प्राप्त करके भी सुखी नहीं होते—उनकी आत्माको कभी किसी दशामें शान्ति नहीं मिलती और इसी प्रकार बहुतसे लोग ऐसे भी होते हैं जो सभी दृष्टियोंसे बहुत ही नीची दशामें रहकर भी सदा सुखी रहते हैं। इस अवसरपर हमें फारसके एक बहुत बड़े बादशाहका किस्सा याद आ गया है । वह सुखी होना चाहता था और बड़े बड़े हकीमों और दानाओंसे उसने सुखकी प्राप्तिका उपाय पूछा था। सब हकीमों और दानाओंने परामर्श करके अंतमें कहा कि यदि किसी सुखी मनुष्यका कुरता मिल जाय तो उसे पहनकर आप भी सुखी हो सकते हैं। बादशाहने समझा, बस अब काम हो चला, जहाँ मुझे किसी सुखी मनुष्यका कुरता मिला, वहाँ मैं भी सुखी हो जाऊँगा। अब सुखी मनुष्यकी खोज होने लगी । सारा राज्य ढूँढ़ डाला गया, पर कहीं कोई सुखी मनुष्य न मिला । सब लोग अपना अपना दुखड़ा रोते थे; सुखी और उसका कुरता कहाँसे मिलता? अंतमें बहुत ढूँढ़नेपर एक खेतिहर मिला जो खेत जोतकर घर लौट रहा था । पूछनेपर मालूम हुआ कि उसे किसी प्रकारका दुःख या कष्ट नहीं है और वह सब प्रकारसे

सुखी है। बादशाहके नौकरोंने उससे कहा—भाई, तुम हमें अपना कोई फटा पुराना कुरता दे दो, हम उसे बादशाहको पहनाकर सुखी करेंगे। खेतिहरने उत्तर दिया—भाई, मैंने तो आजतक कभी कोई कुरता बनवाया या पहना ही नहीं; मैं कुरता कहाँसे दूँ?

कोई मनुष्य संसारको दुःखपूर्ण और विपत्तियोंका घर समझता है और कोई सुखपूर्ण तथा सब प्रकारकी सुविधाओंका केन्द्र मानता है। इसी प्रकारकी और भी अनेक ऐसी बातें हैं जिनसे सिद्ध होता है कि सुखका संबंध बहुतसे अंशोंमें केवल मनसे है; बाह्य पदार्थोंसे उसका कोई सरोकार नहीं है। जो मनुष्य अपने मन और विचारोंको वशमें रख सकता है वही सदा सुखी भी रह सकता है। इस प्रकार सुखी होना मानों एक तरहकी विद्या या कलापर निर्भर है। जो मनुष्य यह विद्या या कला जानते हैं, वे प्रायः सभी दशाओंमें परम प्रसन्न और संतुष्ट रहते हैं। उन्हें चारों ओर सुख और आनन्द ही दिखाई देता है। उनपर चाहे कैसी ही विपत्ति क्यों न आ पड़े वे सदा प्रसन्न ही रहते हैं। ऐसे मनुष्य वास्तवमें ईर्ष्याके पात्र होते हैं।

मनुष्यकी सदा प्रसन्न रहनेकी वृत्ति कुछ तो स्वाभाविक और जन्मतः होती है और कुछ सम्पादित भी होती है। किसी बातका अच्छा या बुरा परिणाम निकालना स्वयं हमारे हाथमें है। विशेषतः अपने जीवनको सुखपूर्ण या दुःखपूर्ण बनाना तो और भी हमारे ही अधिकारमें है। संसारमें सुख भी है और दुःख भी। उन दोनोंमेंसे किसी एकका ग्रहण और दूसरेका त्याग हमारे ही हाथमें है। हम अपनी मनोवृत्तिको सहनशील और सुखात्मक भी बना सकते हैं और असहनशील तथा दुःखात्मक भी। जो मनुष्य सदा प्रसन्न और सुखी रहना जानता है, कठिनसे कठिन विपत्तिके समय भी वह कभी नहीं घबराता। वह प्रसन्नता उसका बोझ हलका कर देती है और उसे विपत्तियोंका सामना करनेमें समर्थ बनाती है। लेकिन जो मनुष्य सदा उदास रहता है और जिसे संसारमें दुःख ही दुःख दिखाई देता है, परम उत्कृष्ट सुख भी उसे कभी प्रसन्न और संतुष्ट नहीं

कर सकता । इसके अतिरिक्त प्रसन्न-वृत्तिसे सदाचार और सद्गुणोंमें भी बहुत वृद्धि होती है। एक विद्वान्‌की सम्मति है कि जो मनुष्य सदा प्रसन्न रहेगा उसमें कुछ न कुछ गुण अवश्य होंगे । कार्लाइलका मत है कि जो मनुष्य प्रसन्नचित्त होता है उसमें किसी प्रकारका दोष नहीं होता। मनुष्यमें और चाहे कितने ही सद्गुण क्यों न हों, पर जबतक वह प्रसन्न और सुखी रहना न जानता हो तबतक वह पूर्ण सद्गुणी नहीं कहा सकता। मनुष्यमें जबतक सद्गुणोंके साथ सुस्वभाव न हो तबतक काम नहीं चल सकता और सुस्वभावकी सबसे अधिक उत्पत्ति प्रसन्न वृत्तिसे ही होती है । दुःखरूपी अंधकारका नाश करनेके लिए प्रसन्नवृत्ति मानों सूर्य्य है ।

दुःखके कारण मनुष्य रोगी रहता है और उसकी आयु घट जाती है। उसके चेहरेपर कान्ति नहीं रहती और प्रायः उसकी बुद्धि भी मारी जाती है, लेकिन प्रसन्नता या सुखका परिणाम इससे विपरीत होता है। जो मनुष्य सदा प्रसन्न और सुखी रहता है वह रोगोंसे भी बचा रहता है और उसकी आयु भी बढ़ती है । उसका मुख सदा प्रफुल्लित और कान्तिमान रहता है और उसे सदा अच्छी अच्छी बातें सूझती रहती हैं ।

जिस सुखकी संसारको इतनी अधिक आवश्यकता और खोज है वह सुख और कुछ नहीं, यही चित्तकी प्रसन्नता है । दुःखोंसे बचनेका सबसे अच्छा उपाय महाभारतमें दिया है । उसमें एक स्थान पर लिखा है,—

भैषज्यमेतद्दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ।

अर्थात् मनमें दुःखोंकी चिन्ता न करना ही उनके निवारणका सबसे अच्छा उपाय है । तात्पर्य यह कि जो मनुष्य दुःखोंको अपने चित्तसे भुला सकता है—प्रसन्न और आनान्दित हो सकता है—वही सुखी है। विपत्तियों और कष्टोंका सामना तो सभीको करना पड़ता है; उससे

कोई बच नहीं सकता। अब मनुष्य चाहे उसे प्रसन्नता और सुखपूर्वक झेले और चाहे खेद और दुःखपूर्वक। हमारा खिन्न मन हमें दुःखी बना देता है और प्रसन्न मन हमें सुखी कर देता है। सुखकी उत्पति हमारे मनसे ही होती है, वह बाहरसे हमारे शरीरमें भरा नहीं जा सकता। जो मनुष्य केवल अपने मनकी सहायतासे ही सुखी नहीं हो सकता वह और भी किसी उपायसे सुखी नहीं हो सकता। मनुष्य चाहे प्रसन्न हो या न हो, पर यदि वह दुःखोंका ध्यान छोड़ दे तो अवश्य सुखी रहता है। अध्यात्म रामायणमें लक्ष्मणजी कहते हैं,—

> सुखमध्ये स्थितं दुःखं दुःखमध्ये स्थितं सुखम्।
> द्वयमन्योऽन्यसंयुक्तं प्रोच्यते जलपंकवत्॥
> तस्माद्धैर्येण विद्वान्स इष्टानिष्टोपपत्तिषु।
> न हृष्यन्ति न मुह्यन्ति सर्वं मायेतिभावनात्॥

अर्थात जिसतरह पानी और कीचड़ दोनों एकमें मिले रहते हैं उसी तरह सुख और दुःख भी दोनों एक दूसरेमें मिले रहते हैं। इस लिए विद्वान् लोग सुख और दुःख दोनोंको मिथ्या समझकर धैर्य्य रखते हैं और न तो खेद करते हैं और न प्रसन्न होते हैं।

लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि मनको इतना उच्च बना लेना कि उसे सुख और दुःखका बोध ही न हो, सर्व साधारणके लिए बहुत ही कठिन है। उसके लिए बहुत ही उच्च शिक्षा और विचारों आदिकी आवश्यकता होती है। साथ ही अपने चित्तको भी सदा प्रसन्न ही रखना और उसपर दुःखकी कलुषित छाया न पड़ने देना भी सहज काम नहीं है। जो लोग सदा संसारकी झंझटों और बखेड़ोंमें फँसे रहते हों, उनके लिए तो सदा प्रसन्नचित्त और फलतः सुखी रहना और भी कठिन है। यद्यपि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो यही निश्चित होगा कि बाह्य पदार्थोंका सुखके साथ किसी प्रकारका संबंध नहीं है, पर तो भी कुछ बातें अवश्य ऐसी हैं जिनका साधारण रूपसे चित्तवृत्तिपर बहुत कुछ

प्रभाव पड़ता है और इसी लिए स्थूल दृष्टिसे जो हमारे सुख और दुःखका कारण कही जाती हैं। उन बातोंका इस स्थलपर संक्षेपमें वर्णन कर देना आवश्यक जान पड़ता है। सदाचार, परिस्थिति और कामना ये तीन बातें ऐसी हैं जिनका हमारे सुखके साथ बहुत कुछ संबंध है। सदाचारकी उपयोगिता और महत्ता आदिके संबंधमें इस पुस्तकके आरम्भमें ही बहुत कुछ कहा जा चुका है। लेकिन सदाचारका सबसे बड़ा गुण यह है कि वह मनुष्यको सदा सुखी रखता है और कभी उसे दुःखी नहीं होने देता। सदाचारका सुखके साथ जो घनिष्ठ संबंध है वह कभी विच्छिन्न ही नहीं हो सकता। जो मनुष्य सदा सत्कर्म्म करता है और जिसका अन्तःकरण सदा शुद्ध रहता है वह कभी दुःखी हो ही नहीं सकता। इसी प्रकार जो मनुष्य सदा निःस्वार्थभावसे परोपकारमें लगा रहता है अथवा जो कभी दूसरोंका बुरा नहीं चेतता है वह भी सदा सुखी ही रहता है। जो मनुष्य अपने विवेककी आज्ञाओं और अपने कर्तव्योंका पालन करता है वह भी कभी दुःखी नहीं रहता। जिसके आशय उदार और उच्च होते हैं और जो समदर्शी होता है उसके पास भी कभी दुःख फटकने नहीं पाता। लेकिन इसके विरुद्ध जो मनुष्य दुराचारी होता है, सदा कुकर्म्मोंमें फँसा रहता है, लोगोंके साथ ईर्ष्या करता और उन्हें हानि पहुँचानेके प्रयत्नमें लगा रहता है, अपने विवेककी हत्या करता और कर्तव्यपालनका ध्यान छोड़ देता है और अपने हृदय तथा विचारोंको सदा नीच और संकुचित बनाये रखता है वह सदा दुःखी बना रहता है, स्वप्नमें भी वह सुख या शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। इसी प्रकार जिस मनुष्यकी परिस्थिति अच्छी होती है वह भी बहुधा सुखी और संतुष्ट ही रहता है। परिस्थितिसे हमारा तात्पर्य आर्थिक तथा शारीरिक अवस्था, अच्छी आदतों, मित्रों, संबंधियों, विद्या और ज्ञान आदिसे है। जिस मनुष्यके पास उसकी आवश्यकताके अनुसार यथेष्ट धन होता है वह अपनी कामनाओंको यथेच्छ पूर्ण कर सकता है और फलतः सुखी हो सकता है। लेकिन यदि हमारे पास अपनी भोगेच्छाओंको तृप्त

करनेके लिए यथेष्ट धन न भी हो, पर हममें धैर्य्य और संतोप हो तो भी हम सुखी रह सकते हैं। इसी प्रकार शारीरिक आरोग्यतापर भी बहुतसे अंशोंमें सुख निर्भर करता है। एक कहावत है—' एक तन्दुरुस्ती हजार न्यामत है। ' यदि मनुष्यके पास बहुत कुछ धन सम्पत्ति हो, बहुतसे बाल-बच्चे भी हों, अच्छे अच्छे अनेक मित्र भी हों, पर वह स्वयं सदा रोगी रहता हो तो उसके सुखी होनेमें बहुत कुछ बाधा पड़ सकती है। जिस समय शरीरमें तीव्र वेदना हो उस समय उसे किसी पदार्थसे सुख नहीं मिल सकता। अच्छी आदतें सदाचारके ही अंतर्गत आ जाती हैं, अतः वे भी हमें सुखी बनानेमें बहुत कुछ सहायक होती हैं। कदाचित कोई बुद्धिमान् यह कहने या माननेके लिए तैयार न होगा कि बुरी आदतें रखकर भी कोई मनुष्य सुखी या प्रसन्न हो सकता है। अच्छे मित्रोंसे हमारा कितना कल्याण होता है और हमें कितना सुख मिल सकता है यह पहले किसी प्रकरणमें सत्संगतिका महत्त्व समझाते हुए बतलाया जा चुका है। अच्छे लोगोंका सहवास हमें सदा सुखी रक्खेगा। पर यदि हम बुरे लोगोंका साथ करेंगे तो चाहे स्वयं हमारा और कोई अपराध हो या न हो; पर केवल बुरोंकी संगतिके अपराधके कारण ही हम कभी न कभी भारी विपत्तिमें फँस जायँगे और हमें बहुत दुःख भोगना पड़ेगा। सुखी होनेके लिए अच्छे परिवारकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। यहाँ कदाचित् यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि अच्छे परिवारके सब लोग इसी संसारमें स्वर्गका सुख भोग लेते हैं और दुष्ट परिवारके लोग नरककी सारी यातनाओंका यहीं अनुभव कर लेते हैं। विद्या एक ऐसी चीज है जो और दशाओंमें तो हमें प्रसन्न तथा सुखी रखती है; पर साथ ही विपत्ति और कष्टके समय भी वह हमें सुख पहुँचा सकती है। और ज्ञान तो हमें दुःखका अनुभव ही नहीं होने देता। यदि हम चाहते हों कि संसारमें हमारे लिए दुःखका कहीं नाम भी न रह जाय, हमें चारों ओर केवल सुख ही सुख दिखाई दे, तो हमें चाहिए कि हम सब काम छोड़कर केवल ज्ञानार्जन करें। सुखी होनेका इससे अच्छा और कोई उपाय ही नहीं है।

ऊपर सुखके जितने साधनोंका वर्णन हो चुका है उन सबके विषयमें बहुतसी बातें पिछले प्रकरणोंमें यथास्थान दी जा चुकी हैं। यहाँ उनका दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। अब हम सुखके विषयमें थोड़ीसी ऐसी बातें बतलाकर, जिनका पिछले पृष्ठोंमें उल्लेख नहीं हुआ है, यह प्रकरण और साथ ही यह पुस्तक भी समाप्त करते हैं।

जो मनुष्य सदा अच्छी बातें सोचता रहता है और जिसके मनमें कभी बुरे विचार नहीं उठते, वह सदा प्रसन्न और सुखी रहता है। रस्किन-ने कहा है,—"हम लोग प्रायः यह शिकायत किया करते हैं कि हम स्वतंत्र नहीं हैं, हमारे पास सुखके साधन नहीं हैं, हमारे पास धन नहीं है, आदि आदि; लेकिन हम लोगोंमेंसे कौन मनुष्य ऐसा है जो यह समझता है कि मुझे शान्तिकी आवश्यकता है? यदि आप शान्ति प्राप्त करना चाहते हों तो उसके दो उपाय हैं; जिनमेंसे एक तो बिलकुल आपके हाथमें ही है। और वह उपाय है, सदा मनमें अच्छे विचार रखना। दरिद्रताके दुःखों आदिसे बचनेके लिए हम सुन्दर विचारोंके बड़े बड़े प्रासाद बना सकते हैं।" और वास्तवमें जो मनुष्य सदा अच्छी अच्छी बातें सोचा करता हो उसकी आत्मा सदा बहुत ही शान्त और प्रसन्न रहती है।

बुरे विचारोंसे बचने और सदा प्रसन्न रहनेमें मनुष्यको प्रकृतिप्रेमसे बड़ी भारी सहायता मिलती है। प्रकृतिकी शोभा निरखनेसे मनुष्यको शान्ति भी मिलती है और उसका ज्ञान भी बढ़ता है। एक विद्वान्का मत है—"हम प्रकृति और जीवन, मनुष्य और बालक, कार्य्य और विश्राम, सभी अवस्थाओं और स्थानोंमें जितना ही अधिक सौन्दर्य्य देखते हैं, उतना ही अधिक मानों हम ईश्वरको देखते हैं।" और यही ईश्वर-दर्शन परम सुख है। पर आजकल हम लोगोंमेंसे अधिकांश अपने काम-धन्धेमें इतने फँसे रहते हैं कि हमें कभी प्रकृतिकी शोभा देखनेका अवसर ही नहीं मिलता और इसी लिए हम लोग उसका महत्त्व भी भूल गये हैं। सूर्योदय और सूर्यास्तके दृश्य, फूल, पत्ते, पौधे, पेड़, मैदान, नदियाँ पहाड़, चिड़ियोंका मधुर गान आदि सब ऐसी बातें हैं जिनकी ओर

यदि हम कुछ भी ध्यान दें, तो हमारा मन आप ही आप उनकी ओर आकृष्ट होने लगता है और उनपर थोड़ासा विचार करके हम अनन्त सुख, शान्ति और साथ ही साथ शिक्षा भी प्राप्त कर सकते हैं। दुःखसे जर्जर मन और आत्माको सुखी और बलिष्ठ करनेमें प्राकृतिक शोभा अमृतका काम करती है।

बहुतसे लोग दिनरात सुख और आनन्दकी चिन्तामें ही पड़े रहते हैं और यथासाध्य उनकी प्राप्तिके प्रयत्नमें लगे रहते हैं। पर इसका परिणाम प्रायः उलटा ही होता है। वे लोग यह नहीं जानते कि जो मनुष्य सुखके बहुत पीछे पड़ता है, सुख प्रायः उससे दूर ही रहता है। लेकिन यदि हम सुख-प्राप्तिका ध्यान छोड़ दें तो प्रायः आप ही हमें सुख मिलने लगता है। सदा सुखकी चिन्तामें ही व्यग्र रहनेवाले मनुष्यकी अपेक्षा वह मनुष्य कहीं अधिक सुखी रहता है जो कभी सुखका ध्यान भी नहीं करता। जो मनुष्य सदा सुखकी चिन्तामें ही लगा रहता है वह प्रायः मोह, प्रपंच और लोभ आदिमें फँस जाता है और उसका उद्देश्य कभी सिद्ध नहीं होता। सुख ढूँढ़ते ढूँढ़ते वह ऐसे मार्गमें लग जाता है जिसमें केवल दुःखके अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। दूसरी बात यह है कि सुख ऐसी स्थितिमें नहीं मिलता जिसमें केवल बड़े बड़े धनवानों और बुद्धिमानोंकी ही पहुँच हो सकती है। जिस स्थिति तक साधारण मनुष्य बहुत ही सहजमें पहुँच सकते हैं, बल्कि यों कहिए कि प्रायः रहते हैं, उसी स्थितिमें सबसे अधिक सुख होता है। सुखके साधन तो प्रायः सभी लोगोंके पास होते हैं। उसके नये नये साधन ढूँढ़नेमें मनुष्यको व्यर्थ परिश्रम न करना चाहिए, बल्कि जो साधन उसे पहलेसे ही प्राप्त हों उन्हींसे लाभ उठाकर सुखी बनना चाहिए। बहुतसे लोग प्राप्त साधनोंका पूरा पूरा उपयोग नहीं करते और व्यर्थ नये नये साधन ढूँढ़ते फिरते हैं। ऐसे मनुष्योंको यदि सुखके बदले उलटे दुःख ही हो तो इसमें क्या आश्चर्य है? उचित तो यह है कि मनुष्य नये नये साधनोंकी प्राप्तिका ध्यान छोड़ दे और जो साधन उसे पहलेसे प्राप्त हों अथवा जो सामने

आजायँ उन्हींसे लाभ उठाकर वह सुखी बने। जंगलमें फँसी हुई चिड़ियोंको छोड़कर आकाशमें उड़ती हुई चिड़ियोंके पीछे दौड़ना मूर्खता नहीं तो और क्या है ? हमें सदा सब बातोंसे सुखी रहनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

सुखी होनेका सबसे अच्छा एक और उपाय है। वह उपाय है अपनी कामनाओं और आशा आदिको सदा वशमें रखना। जो मनुष्य बहुतसी कामनायें और आशायें करेगा उसे प्रायः दुखी ही रहना पड़ेगा। उसकी सभी कामनायें और आशायें तो पूरी होंगी नहीं, फलतः वह सदा चिन्तितः दुःखी और निराश ही रहेगा। एक विद्वान्के मतसे कामनायें तीन प्रकारकी होती हैं; एक तो प्राकृतिक और आवश्यक, दूसरी प्राकृतिक पर अनावश्यक और तीसरी अप्राकृतिक और अनावश्यक। जो कामनायें प्राकृतिक और आवश्यक होती हैं, उनकी पूर्ति विना किसी प्रकारके कष्ट या व्यय आदिके बहुत ही सहजमें हो जाती है। जो कामनायें अथवा आवश्यकतायें केवल प्राकृतिक होतीं हैं, पर आवश्यक नहीं होतीं उनकी पूर्तिके लिए भी विशेष कठिनता नहीं होती, क्योंकि वे प्राकृतिक होती हैं और उनकी पूर्ति स्वयं प्रकृति ही कर लेती है। ऐसी आवश्यकतायें बहुत ही परिमित होती हैं, सहजमें पूरी हो जाती हैं और मनुष्यको अच्छी तरह संतुष्ट भी कर देती हैं। लेकिन जो इच्छायें बिलकुल अस्वाभाविक और अनावश्यक या निरर्थक होती हैं उनकी न तो कोई हद होती है और न पूर्ति। और उन्हीं कामनाओंके कारण मनुष्य सदा दुःखी रहता है। जो मनुष्य सुखी होना चाहते हों उन्हें चाहिए कि ऐसी कामनाओंसे सदा बचे रहें, बल्कि जहाँ तक हो सके अपनी आवश्यकताओं और कामनाओं आदिको परिमित रखना चाहिए। एक महात्माका कथन है कि—" जिस मनुष्यकी आवश्यकतायें जितनी ही कम हों उसे ईश्वरके उतने ही समीप समझना चाहिए।" तब फिर ईश्वरकी समीपतासे बढ़कर सुख कहाँ मिल सकता है ? अपने मनको वशमें रखिए और अपनी आवश्यकताओंको घटाइए, आप ईश्वरके निकट और ऐसी स्थितिमें पहुँच जाइएगा जहाँ आपको परम सुख मिलेगा। एवमस्तु।

॥ समाप्त ॥